भारतीय अर्थव्यवस्था:- मुद्दे एवं वित्तीय सम्बन्ध

एम.ए.ई.सी. - 503

Indian Economy: –
Issues and Financial Relations
MAEC – 503

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी - 263139
फोन नं. 05946 - 261122, 261123 (अर्थशास्त्र विभाग 05946-286041)
टोल फ्री नम्बर - 18001804025
फैक्स नम्बर - 05946-264232,
ई-मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,
कुलपति,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

संयोजक
प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,
नैनीताल

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. **प्रोफेसर पी. एस. राणा**, अर्थशास्त्र विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) श्रीनगर गढ़वाल
2. **प्रोफेसर एच. सी. जोशी**, अर्थशास्त्र विभाग, एस. एस. जे. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
3. **प्रोफेसर एम. सी. सती**, (विशेष आमंत्रित सदस्य), अर्थशास्त्र विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) श्रीनगर गढ़वाल
4. **डॉ. शालिनी चौधरी**, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. शालिनी चौधरी,
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. राजीव कुमार असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र.	**1,2,3,4,5**
डॉ. यू. पी. सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ई.सी.सी. , इलाहाबाद, उ.प्र.	**6,7**
डॉ. अमितेन्द्र सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ 226017	**8,9,10**
प्रो. संदीप कुमार दीक्षित प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उ.प्र.	**11,12,13,14**

सम्पादन

डॉ. शालिनी चौधरी,
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

आई.एस.बी.एन. : **978-93-84632-98-4**
प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट) : **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**
प्रकाशन वर्ष : **2020**

Published By : **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139**
Printed at : **मै0 डायमण्ड प्रिन्टिग प्रेस, जयपुर प्रतियाँ: 888**

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

भारतीय अर्थव्यवस्था:- मुद्दे एवं वित्तीय सम्बन्ध **एमएईसी -503**
Indian Economy:- Issues and Financial Relations **MAEC-503**

विषय-सूची

खण्ड – 1 भारतीय अर्थव्यवस्था (Indian Economy)	**पृष्ठ संख्या 1-66**
इकाई 1- भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (Characteristics of Indian Economy)	1-11
इकाई 2- राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था (National Income and Indian Economy)	12-23
इकाई 3- जनसंख्या, मानवीय संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (Population, Human Resources and Indian Economy)	24-38
इकाई 4-प्राकृतिक संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (Natural Resources and Indian Economy)	39-50
इकाई 5- अधो-संरचना और भारतीय अर्थव्यवस्था (Infrastructure and Indian Economy)	51-66
खण्ड – 2 पंचवर्षीय योजनाएं एवं आर्थिक विकास की समस्याएं (Five Year Plans and Problems of Economic Development)	**पृष्ठ संख्या 67-174**
इकाई 6- आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रकिया (Relevance of Economic Planning and Process of Planning)	67-84
इकाई 7- आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तक) (Achievements of Economic Planning (Till the Eleventh Five Year Plan))	85-108
इकाई 8- गरीबी (Poverty)	109-129
इकाई 9- बेरोजगारी (Unemployment)	130-151
इकाई 10- समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy)	152-174

खण्ड – 3 वित्तीय सम्बन्ध **(Financial Relations)**	पृष्ठ संख्या **175-229**
इकाई 11- भारतीय लोक वित्त (Indian Public Finance)	175-190
इकाई 12- केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relations between Center and State)	191-203
इकाई 13- भारतीय मौद्रिक प्रणाली (Indian Monetary System)	204-217
इकाई 14- भारतीय मौद्रिक क्षेत्र संरचना (Structure of Indian Monetary Sector)	218-229

Suggested Readings:

1. Bhaduri, A, (2005) ***Development with Dignity*****,** Nation Book Trust, New Delhi
2. Bhalla, G.S. (2008) ***Indian Agriculture since Independence***, SAGE Publications Pvt. Ltd, New Delhi
3. Chakravariti, S. (1987) ***Development Planning: The Indian Experience***, Oxford University Press New Delhi
4. Datt, Gaurav and Ashwani Mahajan (2010) ***Indian Economy,*** S. Chand & Company Pvt. Ltd., New Delhi
5. Dhingra, I.C. ***The Indian Economy: Environment and Policy***, 23rd Ed. Sultan Chand & Sons, New Delhi
6. Gupta, S.P. (1989) ***Planning and Development in India :A Critique***, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
7. Krishnamachari, V.T. (1962) ***Fundamental of Planning in India***, Orient Longmans, Bombay.
8. Prakash, B.A. (Ed.) (2009), ***Indian Economy since 1991: Economic Reforms and Performance***, Sage Publications, New Delhi.

इकाई 1 : भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
(CHARACTERISTICS OF INDIAN ECONOMY)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अर्थव्यवस्था से आशय
1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना
1.4.1 प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र)
1.4.2 द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र)
1.4.3 तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र)
1.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन
1.6 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
1.6.1 परम्परागत विशेषताएं
1.6.2 नवीन विशेषताएं
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। इससे पूर्व आपने भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों को पढ़ा होगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की एक प्रमुख अर्थव्यवस्था है। इसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक है तथा इसकी विविध विशेषताएं है। प्रस्तुत इकाई में भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित इन बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना, स्वरूप, विशेषताओं एवं महत्व को समझ सकेंगें तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ✓ बता सकेंगे कि अर्थव्यस्था से क्या तात्पर्य है।
- ✓ बता सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना किस प्रकार की है और समय के साथ इसमें क्या परिवर्तन आ रहें हैं।
- ✓ समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में भारतीय अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत एवं नवीन विशेषताओं को श्रेणीबद्ध कर सकेंगे।

1.3 अर्थव्यवस्था से आशय (MEANING OF ECONOMY)

देश के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किया जाता है। वास्तव में, अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढ़ांचा है जिसके अन्तर्गत देश की आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। इसमें सभी क्षेत्रों द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना, देश के लोगों द्वारा इनका उपभोग करना, लोगों को रोजगार प्रदान करना, निर्यात करना आदि को सम्मिलित किया जाता है।

1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना (STRUCTURE OF INDIAN ECONOMY)

अर्थव्यवस्था की संरचना से आशय एक अर्थव्यवस्था का उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में वितरण से है। देश की अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों जैसे– कृषि, उद्योग, बैंक, बीमा, परिवहन एवं अन्य सेवाओ आदि से सम्बन्धित क्रियाओं का संचालन होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को अध्ययन की दृष्टि से क्रियाओं के आधार पर निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है :

1.4.1 प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्व क्षेत्र) (PRIMARY SECTOR (AGRICULTURE AND ALLIED SECTOR))

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे– पशुपालन, मछली पालन (मात्स्यिकी), वानिकी आदि।

1.4.2 द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र) (SECONDARY SECTOR (INDUSTRIAL SECTOR))

अर्थव्यवस्था के द्वितीयक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के उद्योग (निवेश के आधार पर – लघु, मध्यम एवं वृहद उद्योग; स्वामित्व के आधार पर – सार्वजनिक एवं निजी उद्योग), निर्माण, गैस तथा विद्युत उत्पादन आदि को शामिल किया जाता है।

1.4.3 तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) (TERTIARY SECTOR (SERVICE SECTOR))

तृतीयक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की सेवाओं जैसे– बैंक, बीमा, परिवहन, संचार, व्यापार, होटल, लोकप्रशासन, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएं आदि को सम्मिलित किया जाता है, इसी कारण से इसे सेवा क्षेत्र भी कहा जाता है। यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था के प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्र के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को निम्नलिखित चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

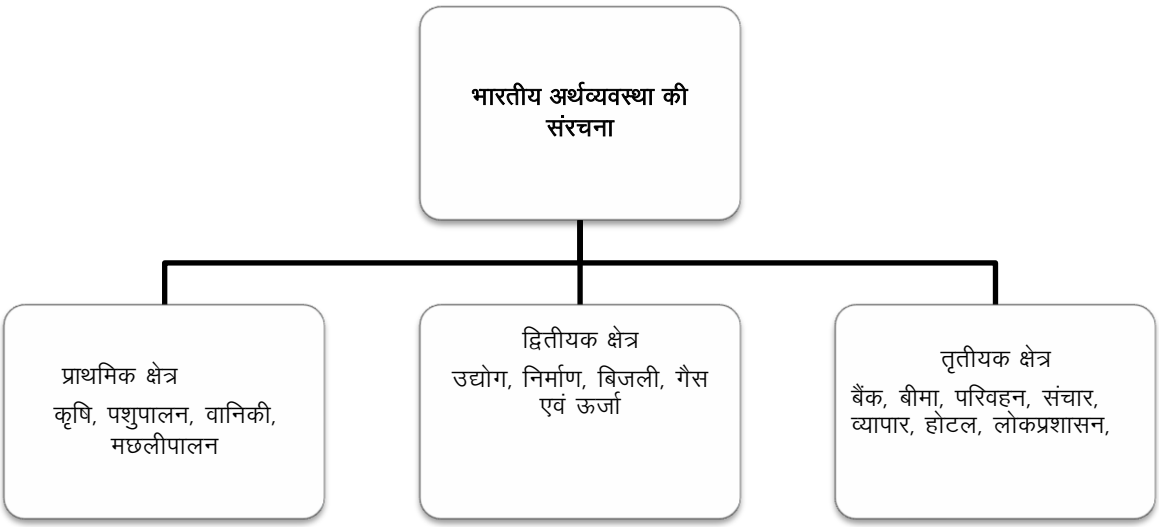

1.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन (STRUCTURAL CHANGES IN INDIAN ECONOMY)

जब देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया चलती है तो उसकी अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन आते हैं। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में देश की अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्र में कार्य करती रहती है। जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होने लगता है, वैसे–वैसे जनसंख्या का अनुपात प्राथमिक क्षेत्र में कम तथा द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में बढ़ने लगता है साथ ही राष्ट्रीय आय में द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान में वृद्धि होती जाती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक नियोजन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन आये हैं। इस काल में अर्थव्यवस्था के द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ है। देश की राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र के भाग में कमी हुई है जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र के भाग में बढ़ोत्तरी हुई है। इसे निम्नलिखित तालिका में देखा जा सकता हैं।

तालिका 1 : देश के सकल घरेलू उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान

(प्रतिशत में)

वर्ष	प्राथमिक क्षेत्र	द्वितीयक क्षेत्र	तृतीयक क्षेत्र
1950–51	56.5	13.6	29.9
1960–61	52.3	17.0	30.7
1970–71	45.9	20.4	33.7
1980–81	39.9	22.0	38.1
1990–91	34.0	23.2	42.8
2000–01	26.2	23.5	50.3
2006–07	20.5	24.7	54.8
2007–08	19.8	24.5	55.7

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 2008–09, पृ0 ए–5.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के समय देश के सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान अधिक था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र) का भाग घटता जा रहा है जबकि द्वितीयक (उद्योग) एवं तृतीयक क्षेत्र (सेवा) का भाग बढ़ता चला जा रहा है। वर्ष 1950–51 से 2007–08 की अवधि में देश के सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 56.5 प्रतिशत से कम होकर 19.8 प्रतिशत रह गया जबकि इसी अवधि में द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान क्रमशः 13. 6 प्रतिशत एवं 29.9 प्रतिशत से बढ़कर 24.5 प्रतिशत एवं 55.7 प्रतिशत हो गया। यह भारतीय अर्थव्यवस्था में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन को परिलक्षित करता है।

1.6 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (CHARACTERISTICS OF INDIAN ECONOMY)

विश्व के विभिन्न देशों में भारत का प्रमुख स्थान है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं जनसंख्या आदि की दृष्टि से यह एक विशिष्ट देश है। क्षेत्रफल के सम्बन्ध में यह प्रजातान्त्रिक देश विश्व का सातवां बड़ा देश है जिसका क्षेत्रफल (32,87,263 वर्ग किलोमीटर) सम्पूर्ण विश्व का 2.42 प्रतिशत है। जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत एक विशाल देश है जहां विश्व की 17.5 प्रतिशत (121.02 करोड़) जनसंख्या निवास करती है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टि डालने पर इसकी अनेक विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इन विशेषताओं को दो भागों में बांटा जा सकता है : प्रथम, परम्परागत विशेषताएं एवं द्वितीय, नवीन विशेषताएं। परम्परागत विशेषताओं के अन्तर्गत वे विशेषताएं आतीं हैं जो भारत को विरासत में मिलीं हैं एवं इसके अल्पविकसित स्वरूप को प्रकट करती हैं जबकि नवीन विशेषताओं के अन्तर्गत वे विशेषताएं आतीं हैं जो भारत को तेजी से विकास की ओर अग्रसर राष्ट्र के रूप में स्थापित करती हैं।

1.6.1 परम्परागत विशेषताएं (TRADITIONAL CHARACTERISTICS)

1. **कृषि की प्रधानता (DOMINANCE OF AGRICULTURE):** भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ पर कृषि की प्रधानता है। भारत में कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 64 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र में कार्य कर रहा है। देश की राष्ट्रीय आय का 20 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से ही आता है। निर्यात में भी इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। देश के कुल निर्यात में लगभग 10 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र का ही होता है।
2. **ग्रामीण अर्थव्यवस्था (RURAL ECONOMY):** भारत की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे देश भारत में अधिकतर जनसंख्या गांवों में निवासित है। यहाँ की 74.2 करोड़ जनसंख्या (सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 72.2 प्रतिशत) 6.41 लाख गांवों में निवास कर रही है जिसका अधिकांश भाग आजीविका हेतु कृषि पर निर्भर है।
3. **प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर (LOW LEVEL OF PER CAPITA INCOME):** भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ पर प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत निम्न है। भारत में प्रति व्यक्ति आय लगभग 750 डॉलर है जबकि भारत की तुलना में स्विटजरलैण्ड में प्रति व्यक्ति आय 35,370 डॉलर, अमेरिका में 39,710 डॉलर, स्वीडन में 29,770 डॉलर तथा जर्मनी में 27950 डॉलर है।
4. **पूँजी निर्माण की निम्न दर (LOW RATE OF CAPITAL FORMATION):** किसी भी देश में पूँजी निर्माण की दर पर निर्भर करता है कि वह देश कितनी तेजी से विकास करेगा। भारत में पूँजी निर्माण की दर भी निम्न है, जिसका मुख्य कारण देश में राष्ट्रीय आय कम होने एवं इसका बड़ा भाग उपभोग पर व्यय हो जाने से बचत का कम होना है। वर्ष 2007–08 में भारत में सकल घरेलू बचत की दर जीडीपी का 37.7 प्रतिशत तथा सकल घरेलू पूँजी निर्माण की दर 39.1 प्रतिशत थी।
5. **आर्थिक विषमता (ECONOMIC DISPARITY):** भारत में व्याप्त आर्थिक विषमता अर्थव्यवस्था के समुचित विकास में बाधा उत्पन्न करती है। यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओं में समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य स्वीकार किया गया था, तथापि इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। देश में 40 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का मात्र 19.7 प्रतिशत भाग ही मिल पाता है। यहाँ की 21.8 प्रतिशत (मिक्स्ड रिकॉल अवधि के आधार पर) जनसंख्या का गरीबी की रेखा के नीचे निवास करती है जिन्हे आवश्यक पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है।
6. **बेरोजगारी की अधिकता (EXCESS OF UNEMPLOYMENT):** भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ पर बेरोजगारी की अधिकता है। वर्तमान आँकड़ों पर गौर करें तो पायेंगें कि देश में लगभग 4 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं। यह ऐसे व्यक्ति हैं जो कार्य करने में सक्षम हैं और कार्य करने की इच्छा भी रखते हैं परन्तु उन्हें रोजगार नहीं मिल पाता

है। इनकी संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि होती जाती है। भारत में व्याप्त बेरोजगारी के विभिन्न रूपों में अदृश्य बेरोजगारी एवं मौसमी बेरोजगारी प्रमुख है।

7. **जनसंख्या का दबाव (PRESSURE OF POPULATION):** भारत एक विशाल देश है जहाँ की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। जनगणना 2011 के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार, 2001–2011 की अवधि में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत आंकलित की गयी है। वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है जो विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवासित है जबकि उसके पास विश्व क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत भाग ही है। भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण जन्मदर (22.22 प्रति हजार) एवं मृत्युदर (6.4 प्रति हजार) में पर्याप्त अन्तर होना भी है। उल्लेखनीय है कि विश्व में भारत की जनसंख्या चीन के पश्चात् दूसरे स्थान पर है।
8. **जीवन प्रत्याशा का निम्न स्तर (LOW LEVEL OF LIFE EXPECTANCY):** एक देश में लोगों की औसत आयु को विकास का पैमाना माना जाता है। जिस देश में लोग अधिक समय तक जीवित रहते हैं वहाँ माना जाता है कि जनता को आय एवं स्वास्थ्य की अधिक सुविधाएं प्राप्त हैं। भारत में नागरिकों की औसत आयु विकसित देश की तुलना में काफी कम है। भारत में वर्ष 2009 में यह 69.89 वर्ष आंकलित की गयी है, जबकि जापान में 81 वर्ष, स्विटजरलैण्ड में 80 वर्ष तथा अमेरिका एवं ब्रिटेन में 77 वर्ष है।
9. **तकनीकी कौशल एवं पिछड़ेपन की समस्या (TECHNICAL SKILLS AND BACKWARDNESS PROBLEM):** भारत में शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं अन्य आवश्यक सुविधाओं के अभाव के कारण तकनीकी कौशल का अभाव पाया जाता है। साथ ही उत्पादन इकाईयों में पुरानी विधियों एवं उपकरणों का उपयोग किया जाता है। जिनके परिणामस्वरूप यहाँ उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादकता अपनी क्षमता की तुलना में कम है।
10. **यातायात एवं संचार साधनों की कमी (LACK OF TRANSPORTION AND COMMUNICATION RESOURCES):** भारत जैसे विशाल देश में यातायात एवं संचार साधनों का बहुत महत्व है, परन्तु अभी तक यहाँ इन साधनों का उचित विकास नहीं हो पाया है। इन साधनों के अभाव में देश के अनेक भागों में उपलब्ध खनिज पदार्थ अप्रयुक्त स्थिति में हैं।
11. **प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण उपयोग (IMPERFECT USE OF NATURAL RESOURCES):** प्राकृतिक साधन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में हैं परन्तु तकनीकी ज्ञान एवं यन्त्रीकरण की कमी के कारण देश में प्राकृतिक साधनों का उचित प्रकार से उपयोग नहीं हो पाया है और यह अप्रयुक्त पड़े हुए हैं।
12. **साक्षरता की निम्न दर (LOW LEVEL OF LITERACY):** शिक्षा विकास की प्रथम सीढ़ी है। देश में साक्षरता दर एवं विकास की दर में सीधा धनात्मक सम्बन्ध होता है। भारत में साक्षरता की दर अभी भी काफी कम है। जनगणना 2011 के शुरूआती आँकड़ों के अनुसार भारत में साक्षरता की दर

74.04 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि देश की एक चौथाई जनसंख्या अभी निरक्षर है।

13. **रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं परम्परावादी समाज (CONSERVATIVE, FATALISTIC AND TRADITIONALIST SOCIETIES):** भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यहाँ का रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं परम्परावादी समाज भी है। भारत में शिक्षा के विस्तार के बाद भी यहाँ के लोग भाग्यवादी एवं रूढ़िवादी हैं। यहाँ के परम्परावादी समाज में विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रथाएं, कुरीतियां एवं अन्धविश्वास (जैसे– बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, स्त्रियों की निम्न दशा, मृत्युभोज आदि) व्याप्त हैं, जिनका अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

1.6.2 नवीन विशेषताएं (MODERN CHARACTERISTICS)

1. **नियोजित अर्थव्यवस्था (PLANNED ECONOMY):** स्वतन्त्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था थी। ऐसे में देश का तेजी से विकास करने के उद्देश्य से नियोजन को आधार बनाया गया। इसके अन्तर्गत भारत में 1 अप्रैल, 1951 से प्रथम पंचवर्षीय योजना को लागू किया गया। वर्तमान में ग्यारहवीं योजना लागू है जो 2007 से 2012 तक चलेगी। भारत में नियोजन को अपनाने के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के तीनों ही क्षेत्रों– कृषि, उद्योग एवं सेवा ने विकास किया है और भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित से विकासशील अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गयी है। इसके कारण गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या की वृद्धि दर आदि में कमी आई है जबकि आय, उत्पादन, रोजगार एवं बुनियादी सुविधाओं में वृद्धि हुई है। पिछले पांच वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर औसतन 8.2 प्रतिशत रही है जो वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में एक सराहनीय उपलब्धि है।
2. **समावेशी विकास की अवधारणा का पालन (ADHERING TO THE CONCEPT OF INCLUSIVE DEVELOPMENT):** भारत की सरकार ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) में समावेशी विकास की अवधारणा को स्वीकार कर लिया है। उल्लेखनीय है कि स्वतन्त्रता के बाद अपनायी गयी विकास प्रक्रिया के कारण देश में हुई आर्थिक प्रगति समावेशी नहीं थी क्योंकि इससे कुछ क्षेत्रों एवं वर्गों का तो तेजी से विकास हुआ परन्तु शेष को विकास का लाभ नहीं मिल पाया, जो देश के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा था। सरकार ने इस योजना में समावेशी विकास की अवधारणा को अपनाकर विकास के लाभ से वंचित क्षेत्रों एवं वर्गों (जैसे– कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसंरचना क्षेत्र एवं महिला, दलित/पिछड़े, गरीब वर्ग) को विशेष प्राथमिकता दी है जो निश्चित ही भारतीय अर्थव्यवस्था को अधिक सुदृढ़ता प्रदान करेगी।
3. **बुनियादी ढ़ाँचे का विकास (DEVELOPMENT OF BASIC INFRASTRUCTURE):** बुनियादी ढ़ांचे की सुदृढ़ता किसी भी विकास की धुरी होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था की एक नवीन विशेषता यह है कि इसने अपने बुनियादी ढ़ाँचे का तेजी से विकास किया है। भारत में जून 1969 में व्यापारिक बैंकों की 8,262 शाखाएं थीं जो जून 2008 में बढ़कर

76,885 हो गई। रेलमार्ग 1950–51 में 53,596 किलोमीटर की तुलना में बढ़कर 63,327 किलोमीटर हो गया है जबकि सड़कों की लम्बाई 4 लाख किलोमीटर से बढ़कर 33.4 लाख किलोमीटर हो गई है। विद्युत उत्पादन 1950–51 में 5 बिलियन किलोवाट से बढ़कर 2009–10 में 771.5 बिलियन किलोवाट हो गया है। ग्रामीण विद्युतीकरण की बात करें तो राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (आर.जी.जी.वी.वाई) के अन्तर्गत 30 नवम्बर 2010 तक देश के 87,791 गांवों में बिजली दी गई और गरीबी रेखा से नीचे के 135.31 लाख परिवारों को कनेक्शन दिए गए हैं। इसी प्रकार बीमा, कृषि यन्त्रीकरण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी तेजी से वृद्धि हुई है।

4. **नवीन उद्योगों की स्थापना (ESTABLISHMENT OF NEW INDUSTRIES):** भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता है कि नियोजन के प्रारम्भ हाने से यहाँ पर नये–नये उद्योगों की स्थापना हुई है। इन उद्योगों में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जा रहा है जिनका स्वतन्त्रता के समय विदेशों से आयात किया जाता था और भारत में इनके उत्पादन की कल्पना नहीं की जा सकती थी, जैसे– हवाई जहाज, मोटर गाड़ियाँ, पनडुब्बियाँ, दवाईयां आदि। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रगतिशील स्वरूप को प्रकट करता है।
5. **प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (RISE IN PER CAPITA INCOME):** देश में कुछ वर्षों से प्रति व्यक्ति आय में तेजी से वृद्धि हुई है जो देश के विकास को प्रदर्शित करता है। वर्तमान की कीमतों के आधार पर वर्ष 1950–51 में प्रति व्यक्ति आय 255 रूपये थी जो 1999–2000 में 15,881 रूपये, 2007–08 में 33,283 रूपये तथा वर्ष 2011 में बढ़कर 36,003 रूपये हो गई है।
6. **बचत एवं विनियोग की दर में वृद्धि (RISE IN RATE OF SAVINGS AND INVESTMENT):** भारत में बचत एवं पूँजी निर्माण की दर में भी तेजी आई है। वर्ष 1950–51 में सकल घरेलू बचत की दर एवं विनियोग की दर क्रमशः 8.6 प्रतिशत एवं 8.4 प्रतिशत थी। वर्ष 2007–08 में सकल घरेलू बचत की दर एवं विनियोग की दर बढ़कर क्रमशः 37.7 प्रतिशत एवं 39.1 प्रतिशत हो गई।
7. **समाजवादी समाज की स्थापना (ESTABLISHMENT OF SOCIALIST SOCIETY):** भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी समाज की स्थापना की ओर अग्रसर है जो इसकी प्रमुख नवीन विशेषता है। यहाँ पर सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किये गये हैं, जैसे– जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, बन्धुआ मजदूर प्रथा का उन्मूलन, भूमि पर कृषक को अधिकार दिलाना, किसानों को ऋण मुक्ति आदि के साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एवं सामाजिक सेवाओं का विस्तार। इनके फलस्वरूप देश में आर्थिक विषमता कम हुई है, गरीबों/किसानों के शोषण में कमी आई है और साथ ही देश की जनता को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं भी प्राप्त हुईं हैं। इस प्रकार, स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी समाज की स्थापना की ओर अग्रसर है।
8. **भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापीकरण (GLOBALIZATION OF INDIAN ECONOMY):** भारत की आर्थिक नीति में वर्ष 1991 में अपनाई

गई उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण भारत की अर्थव्यवस्था विश्वव्यापीकरण हुआ है। वैश्वीकरण से देश की अर्थव्यवस्था का जुड़ाव विश्व अर्थव्यस्था से हो गया है जबकि उदारीकरण के अन्तर्गत देश में नियमों को उदार बनाया गया है। इन सबके परिणामस्वरूप भारत के उद्योग पहले से अधिक सुदृढ़ हुए हैं, उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता दे पा रहे हैं, देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हुई है,विदेशों से पूंजी का निवेश बढ़ा है तथा साथ ही इससे सेवा क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। अर्थव्यवस्था का यह विश्वव्यापीकरण देश में रोजगार–सृजन, पूंजी की कमी दूर करना, संसाधनों का उचित उपयोग जैसे सकारात्मक परिवर्तन लाने में सफल हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था यद्यपि कुछ सन्दर्भ में पिछड़ी हुई है परन्तु वर्तमान में देश में चल रही विकास प्रक्रिया से अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार आया है। इसका जुड़ाव विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं से भी हुआ है। इसके ही कारण भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से विकास की ओर अग्रसर है और आज इसकी गणना विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में हो रही है।

1.7 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न 01 : अर्थव्यवस्था से क्या आशय है ?

प्रश्न 02 : योजनाकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में क्या परिवर्तन आये हैं ?

प्रश्न 03 : रिक्त स्थान भरिए।

(क) अध्ययन की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था को ..... भागों में बांटा जाता है।

(ख) वर्तमान में भारत के सकल घरेलू उत्पाद में सर्वाधिक योगदान ..... क्षेत्र का है।

(ग) भारत की सरकार ने ..... पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास की अवधारणा को स्वीकार किया है।

प्रश्न 04 : बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषता है :
   (अ) कृषि की प्रधानता, (ब) निम्न प्रति व्यक्ति आय,
   (स) जनसंख्या आधिक्य, (द) सभी।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र सम्बन्धित है :
   (अ) कृषि से, (ब) उद्योग से,
   (स) सेवाओं से, (द) किसी से नहीं।
3. जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में स्थान है :
   (अ) पहला, (ब) दूसरा,
   (स) तीसरा, (द) सातवां।
4. भारत में विश्व की कुल भूमि का –
   (अ) 4.24 प्रतिशत, (ब) 6.42 प्रतिशत,
   (स) 2.42 प्रतिशत है, (द) इसमें से कोई नहीं।

1.8 सारांश (SUMMARY)

भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की एक महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है। लगभग 36 खरब 66 अरब अमेरिकी डॉलर के समतुल्य सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के साथ क्रय शक्ति के सन्दर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था अमेरिका, चीन और जापान के बाद चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं जनसंख्या आदि की दृष्टि से यह एक विशिष्ट देश है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टि डालने पर इसकी विविध विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इन विशेषताओं को दो भागों में बांटा जा सकता है : प्रथम, परम्परागत विशेषताएं एवं द्वितीय, नवीन विशेषताएं। परम्परागत विशेषताएं वे हैं जो भारत को विरासत में मिलीं हैं एवं इसके अल्पविकसित स्वरूप को प्रकट करती हैं, जैसे– कृषि की प्रधानता, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, प्रति व्यक्ति निम्न आय–स्तर, पूँजी निर्माण की निम्न दर, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी की अधिकता, जनसंख्या का दबाव, निम्न औसत आयु, तकनीकी कौशल एवं पिछड़ेपन की समस्या, यातायात एवं संचार साधनों की कमी, प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण उपयोग, साक्षरता की निम्न दर, रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं परम्परावादी समाज अादि। नवीन विशेषताएं वे विशेषताएं हैं, जो भारत को तेजी से विकास की ओर अग्रसर कर उन्नत राष्ट्र के रूप में स्थापित करती हैं, जैसे– नियोजित अर्थव्यवस्था, समावेशी विकास की अवधारणा की पालन, बुनियादी ढ़ाँचे का विकास, नवीन उद्योगों की स्थापना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं विनियोग की दर में वृद्धि, समाजवादी समाज की स्थापना आदि।

1.9 शब्दावली (GLOSSARY)

- **सकल घरेलू उत्पाद (GROSS DOMESTIC PRODUCT):** सकल घरेलू उत्पाद राष्ट्रीय आय लेखांकन का एक रूप है। किसी देश में किसी वर्ष में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के योग को सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है। इसमें विदेशों से अर्जित आय शामिल नहीं है।
- **प्रति व्यक्ति आय (PER CAPITA INCOME):** प्रति व्यक्ति आय से अर्थ देश के लोगों की औसत आय से है। यह एक देश की राष्ट्रीय आय में उस देश की कुल जनसंख्या का भाग देकर निकाली जाती है। इसके आधार पर उस देश के लागों के जीवन–स्तर का अनुमान लगाया जाता है।
- **समावेशी विकास (INCLUSIVE DEVELOPMENT):** समावेशी विकास से आशय है कि देश की विकास प्रक्रिया में जो क्षेत्र एवं वर्ग छूट गये हैं, उन्हें प्राथमिकता देकर विकास की मुख्यधारा में लाना जिससे सभी क्षेत्रों एवं वर्गों का समान विकास सम्भव हो सके।
- **वैश्वीकरण (GLOBALIZATION):** वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का आपस में जुढ़ाव हो जाता है। इससे विश्व के विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं एवं सेवाओं, पूंजी, तकनीक एवं श्रम का निर्बाध प्रवाह होने लगता है।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर **01** : अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढ़ांचा है जिसके अन्तर्गत देश की आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है।

उत्तर **02 :** योजनाकाल में अर्थव्यवस्था में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान कम हुआ है जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान बढ़ा है।

उत्तर **03 :** रिक्त स्थान भरिए।

(क) तीन, (ख) तृतीयक, (ग) ग्यारहवीं।

उत्तर **04 :** बहुविकल्पीय प्रश्न।

उत्तर : 1. (द), 2. (अ), 3. (ब), 4. (स)

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006) : *भारतीय अर्थव्यवस्था,* एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- मामेरिया, डॉ0 चतुर्भज एवं जैन, डॉ0 एस0सी0 (1995) : *भारतीय अर्थशास्त्र,* साहित्य भवन, आगरा।
- *आर्थिक समीक्षा 2010–11,* भारत सरकार।
- *जनगणना 20011,* भारत सरकार (website:www.censusofindia.com)

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक परिर्वतन को समझाते हुए इसकी नवीन विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को स्पष्ट करते हुए इसके पिछड़ेपन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. ''भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था की मूल विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में क्या मूल परिवर्तन दिखाई देते हैं ?

इकाई 2 : राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था
(NATIONAL INCOME AND INDIAN ECONOMY)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषाएं
2.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएं
2.5 राष्ट्रीय आय की माप
2.5.1. उत्पादन गणना विधि
2.5.2. आय गणना विधि
2.5.3. व्यय गणना विधि
2.5.4. सामाजिक लेखांकन विधि
2.6 राष्ट्रीय आय को मापने में कठिनाईयां
2.7 राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां
2.8 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से क्या तात्पर्य है? इसकी विभिन्न विशेषताएं क्या हैं?

राष्ट्रीय आय किसी भी देश के विकास की प्रमुख माप होती है। राष्ट्रीय आय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न मत प्रकट किये हैं। प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय आय, इसकी विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना विधियों आदि के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था से इसके सम्बन्ध को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ✓ बता सकेंगे कि राष्ट्रीय आय से क्या आशय है एवं इसकी विभिन्न अवधारणाएं क्या हैं।
- ✓ बता सकेंगे कि राष्ट्रीय आय की गणना कैसे की जाती है और इसमें क्या कठिनाईयां आती हैं।
- ✓ बता सकेंगे कि भारत में राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां क्या हैं।
- ✓ समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में राष्ट्रीय आय का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।

2.3 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषाएं (MEANING AND DEFINITIONS OF NATIONAL INCOME)

राष्ट्रीय आय किसी देश की प्रगति का सूचक है। राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के जोड़ से है जिसे ह्रास को घटाकर एवं विदेशी लाभ को जोड़कर निकाला जाता है। वास्तव में, राष्ट्रीय आय एक दिए हुए समय में किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति को मापती है।

राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के मत भिन्न–भिन्न हैं। राष्ट्रीय आय की परिभाषाएं विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी है जो निम्नलिखित हैं :

प्रो. अल्फ्रेड मार्शल (Prof. Alfred Marshall) के अनुसार, *''देश के प्राकृतिक साधनों पर श्रम और पूंजी द्वारा कार्य करने पर प्रतिवर्ष विभिन्न भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं और सेवाओं का जो उत्पादन होता है... उन सभी के शुद्ध योग को देश की वास्तविक वार्षिक आय, आगम या राष्ट्रीय लाभांश कहते हैं।'' (The labour and capital of the country, acting on its natural resources, produce annually a certain net aggregate of commodities, material and immaterial, including services of all kinds…This is the true net annual income, or revenue, of the country; or the national dividend.)*

प्रो. ए. सी. पीगू (Prof. A.C. Pigou) के अनुसार, *''राष्ट्रीय आय किसी समाज की वह वास्तविक आय है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल है तथा जिसे मुद्रा में मापा जो*

सके।'' (The National Dividend is that part of the objective income of the community, including of course, income derived from abroad, which can be measured in money.)

भारतीय राष्ट्रीय आय समिति (1949) (NATIONAL INCOME COMMITTEE (1976)) के अनुसार, *''राष्ट्रीय आय के प्राक्कलन के लिए किसी अवधि विशेष में उत्पन्न वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को दुहरी बार गिने बिना मापा जाता है।'' (A National Income estimate measures the volume of commodities and services turned out during a given period counted without duplication.)*

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से बताया जा सकता है :

1. राष्ट्रीय आय वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का योग है,
2. राष्ट्रीय आय किसी एक देश की एक वर्ष की आय है,
3. राष्ट्रीय आय में पूंजी की घिसावट को घटाया एवं विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को जोड़ा जाता है।
4. राष्ट्रीय आय में एक साधन को एक बार ही गिना जाता है।
5. राष्ट्रीय आय एक माप है जो धन में नापा जाता है।

इस प्रकार, राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत कुल उपभोग व्यय (C), कुल विनियोग (I), कुल सार्वजनिक व्यय (G) तथा विदेशों से प्राप्त विशुद्ध आय (जो निर्यातों के मूल्य (E) से आयातों के मूल्य (M) को घटाने से प्राप्त होती है) शामिल है। इस प्राप्त राशि में से पूंजी ह्रास को घटा दिया जाता है।

संक्षेप में,

राष्ट्रीय आय = कुल उपभोग व्यय + कुल विनियोग + कुल सार्वजनिक व्यय + विदेशों से प्राप्त विशुद्ध आय **(** निर्यातों के मूल्य **-** आयातों के मूल्य **)**

$$\mathbf{Y = C + I + G + D\ (E - M)}$$

2.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएं (CONCEPTS OF NATIONAL INCOME)

राष्ट्रीय आय की माप करने के लिए विभिन्न अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। इन अलग–अलग अवधारणाओं का उपयोग इस बात पर निर्भर करता है कि राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का प्रयोग किस उद्देश्य हेतु किया जायेगा। यह अवधारणाएं निम्नलिखित हैं :

1. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GROSS NATIONAL PRODUCT - GNP) :** किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्य पर जोड़ को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय भी शामिल होती है।
   गणितीय रूप में,

सकल राष्ट्रीय उत्पाद = कुल उपभोग व्यय + कुल विनियोग + कुल सार्वजनिक व्यय + विदेशों से प्राप्त विशुद्ध आय **(** निर्यातों के मूल्य – आयातों के मूल्य **)**

$$\mathbf{GNP = C + I + G + (E - M)}$$

2. सकल घरेलू उत्पाद (GROSS DOMESTIC PRODUCT - GDP) : जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से विदेशों से प्राप्त आय को घटा दिया जाता है तो इस प्राप्त योग मूल्य को सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है।
गणितीय रूप में,

सकल घरेलू उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद – विदेशों से प्राप्त आय

GDP = GNP - INCOME FROM ABROAD

3. शुद्ध घरेलू उत्पाद (NET DOMESTIC PRODUCT - NDP) : शुद्ध घरेलू उत्पाद को सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य ह्रास को घटा कर (अथवा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से विदेशों आय को घटा कर) प्राप्त किया जाता है।
गणितीय रूप में,

शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद – मूल्य ह्रास

NDP = GDP - DEPRECIATION

4. बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NET NATIONAL PRODUCT AT MARKET PRICE - NNP_{MP}) : बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करने के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास को घटा दिया जाता है। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में उत्पादित वस्तुओं के बाजार मूल्य को लिया जाता है जिसमें अप्रत्यक्ष कर एवं सब्सिडी के प्रभाव सम्मिलित हैं अतः इसे बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है)
गणितीय रूप में,

बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद – मूल्य ह्रास

(NNP_{MP}) = GNP - DEPRECIATION

5. साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय (NET NATIONAL PRODUCT AT FACTOR COST - NNP_{FC} OR NATIONAL INCOME) : जब शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना साधन लागत पर की जाती है तो इसे ही राष्ट्रीय आय कहा जाता है। इसकी गणना बाजार मूल्य पर आंकलित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में अप्रत्यक्ष करों को घटाकर एवं सब्सिडी को जोड़कर की जाती है। इस प्रकार से ज्ञात मूल्य ही साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा **राष्ट्रीय आय** कहलाता है।
गणितीय रूप में,

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय = बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद – अप्रत्यक्ष कर + सब्सिडी

(NNP_{FC} OR NATIONAL INCOME) = NNP_{MP} - INDIRECT TAXES + SUBSIDIES

6. वैयक्तिक आय (PERSONAL INCOME - PI) : राष्ट्रीय आय की यह अवधारणा देश में क्रय–शक्ति की माप करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वैयक्तिक आय वह आय है जो वास्तव में देश की जनता द्वारा एक वित्तीय वर्ष में प्राप्त की जाती है।

वैयक्तिक आय = राष्ट्रीय आय – निगमों का अवितरित लाभांश – निगम कर – सामाजिक सुरक्षा योजना के लिए किए गए भुगतान + अन्य (सरकारी + व्यापारिक) हस्तान्तरण भुगतान

PERSONAL INCOME (PI) = NATIONAL INCOME – UNDISTRIBUTED INCOME OF CORPORATION – CORPORATION INCOME TAX – PAYMENTS MADE FOR SOCIAL SECURITY SCHEME + ANY (GOVERNMENT + BUSINESS) TRANSFER PAYMENTS

7. व्यय–योग्य वैयक्तिक आय (DISPOSABLE PERSONAL INCOME - DI) : व्यय–योग्य वैयक्तिक आय से तात्पर्य जनता के पास शुद्ध आय से है जिसे जनता व्यय कर सकती है। वैयक्तिक आय में से वैयक्तिक प्रत्यक्ष करों को घटाकर व्यय–योग्य वैयक्तिक आय को ज्ञात किया जाता है।

व्यय–योग्य वैयक्तिक आय = वैयक्तिक आय – वैयक्तिक प्रत्यक्ष कर

(DISPOSABLE PERSONAL INCOME - DI) = PERSONAL INCOME (PI) – PERSONAL DIRECT TAX

2.5 राष्ट्रीय आय की माप (MEASUREMENT OF NATIONAL INCOME)

राष्ट्रीय आय को मापने की चार विधियां हैं :

(1) उत्पादन गणना विधि (Production Method of Measurement),
(2) आय गणना विधि (Income Method of Measurement),
(3) व्यय गणना विधि (Expenditure Method of Measurement)
(4) सामाजिक लेखांकन विधि (Social Accounting Method)।

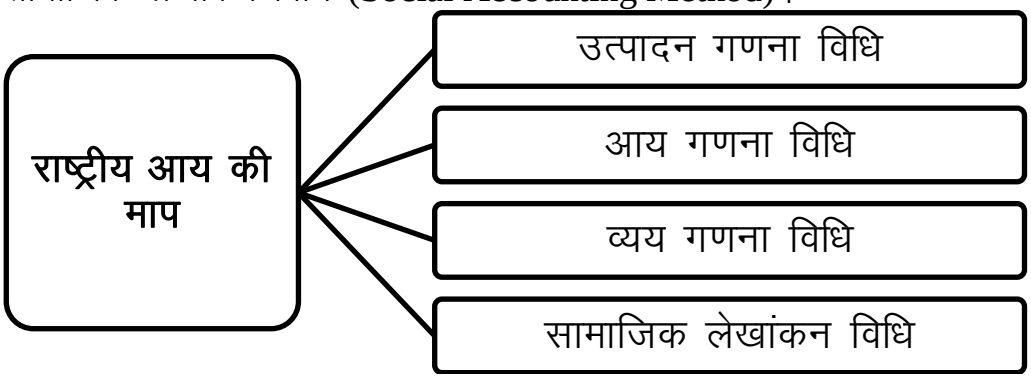

2.5.1. उत्पादन गणना विधि (PRODUCTION METHOD OF MEASUREMENT)

इस विधि में राष्ट्रीय आय की माप उत्पादन के आधार पर की जाती है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को विभिन्न भागों अथवा क्षेत्रों में बाँट लिया जाता है, जैसे– प्राथमिक क्षेत्र (कृषि, पशुपालन, मात्स्यिकी, वानिकी आदि), द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग, निर्माण, गैस तथा विद्युत उत्पादन आदि) तथा तृतीयक क्षेत्र (बैंक, बीमा, परिवहन, संचार, व्यापार, होटल, लोकप्रशासन, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएं आदि)। इसके बाद अर्थव्यवस्था के इन भागों एवं क्षेत्रों में एक वर्ष में उत्पादित होने वाली वस्तुओं

एवं सेवाओं का बाजार मूल्य पर योग कर लिया जाता है। इसी योग को राष्ट्रीय आय कहा जाता है।

उत्पादन गणना विधि से राष्ट्रीय आय की माप करने में इस बात को ध्यान में रखना होता है कि एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं की गणना बार–बार न की जाये। इस दुहरी गणना से बचने के लिए मध्यवर्ती पदार्थों के मूल्य को सम्मिलित न करके केवल अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों को ही शामिल किया जाता है। शुद्ध राष्ट्रीय आय को ज्ञात करने के लिए उत्पादन के मूल्य ह्रास को घटा दिया जाता है परन्तु विदेशी आय को जोड़ दिया जाता है।

2.5.2. आय गणना विधि (INCOME METHOD OF MEASUREMENT)

आय गणना विधि में राष्ट्रीय आय की गणना विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत् उत्पादन के साधनों को एक वर्ष में उनकी सेवाओं के बदले में प्राप्त होने प्रतिफल का योग करके की जाती है। इसके लिए आय के विभिन्न वर्ग किये जाते हैं, जैसे– मजदूरी एवं वेतन, व्यक्तियों की किराये की आय, कम्पनियों के लाभ, ब्याज की आय, गैर–कम्पनी व्यवसायों की आय आदि। इन सभी वर्गों को एक वर्ष में प्राप्त होने वाली आय–राशियों को जोड़कर राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है। आय विधि के प्रयोग का विशेष लाभ है कि इससे देश में विभिन्न वर्गों में आय के वितरण की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इस विधि को अपनाने में विभिन्न बातों का ध्यान रखना चाहिये, जैसे– गैर–उत्पादन कार्यों से सम्बन्धित भुगतान (उदाहरण– वृद्धावस्था पेन्शन, निर्धनों को सहायता भुगतान आदि) को इसमें न जोड़ा जाय, दोहरा मूल्यांकन न किया जाय, मुद्रा में भुगतान न की जाने वाली सेवाओं (उदाहरण– गृहणी की सेवाएं) को सम्मिलित न किया जाय, गैर–कानूनी रूप से प्राप्त आय को शामिल न किया जाय।

2.5.3. व्यय गणना विधि (EXPENDITURE METHOD OF MEASUREMENT)

व्यय गणना विधि को उपभोग बचत विधि भी कहा जाता है। इस विधि में राष्ट्रीय आय की माप करने के लिए देश द्वारा किये जाने वाले व्यय का योग करके उसमें बचत या निवेश की राशियों को जोड़ दिया जाता है। इन सबके योग से जो राशि प्राप्त होती है उसे राष्ट्रीय आय माना जाता है। यह विधि इस तथ्य पर आधारित है कि एक व्यक्ति अपनी कुल आय का कुछ भाग उपभोग पर व्यय करता है तथा शेष बचत (निवेश) करता है। अतः राष्ट्रीय आय कुल उपभोग और कुल बचतों का योग होती है। इस विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उपभोक्ताओं की आय तथा उनकी बचत से सम्बन्धित सही आंकड़े उपलब्ध होना आवश्यक है। सामान्यतः सही आंकड़े आसानी से प्राप्त न होने के कारण इस विधि का अधिक उपयोग नहीं किया जाता है।

2.5.4. सामाजिक लेखांकन विधि (SOCIAL ACCOUNTING METHOD)

राष्ट्रीय आय की माप की सामाजिक लेखांकन विधि का प्रतिपादन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रिचार्ड स्टोन ने किया था। इस विधि से राष्ट्रीय आय की माप के साथ ही देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना, क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध एवं आर्थिक क्रियाओं का विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस विधि में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को पांच भागों में विभाजित किया गया है – अन्तिम उपभोक्ता, उत्पादन संस्थान, वित्तीय संस्थान, बीमा एवं सामाजिक सुरक्षा संस्थान तथा अन्य। इन प्रत्येक भाग के लिए चार प्रकार के खाते रखने होते हैं – संचालन खाता, पूंजी खाता, संचित खाता एवं चालू खाता। इन सभी वर्गों के विभिन्न खातों का योग करने पर राष्ट्रीय आय प्राप्त हो जाती है। सामाजिक लेखांकन विधि का प्रयोग तभी सम्भव है जब सभी संस्थान, व्यक्ति एवं सरकार आने लेन–देन का सही हिसाब रखें। ऐसा न करने पर इस विधि का प्रयोग सीमित हो जाता है।

भारत जैसे विकासशील देश में राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उत्पादन गणना विधि एवं आय गणना विधि का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाता है।

2.6 राष्ट्रीय आय को मापने में कठिनाईयां DIFFICULTIES IN MEASUREMENT OF NATIONAL INCOME

राष्ट्रीय आय का प्रत्येक देश के लिए अत्यधिक महत्व है परन्तु इसको मापने में विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक कठिनाईयां आती हैं, यह कठिनाईयां निम्नलिखित हैं :

1. **मुद्रा में भुगतान न किया जाना (NON-PAYMENT IN CURRENCY):** राष्ट्रीय आय की गणना मुद्रा में की जाती है, परन्तु उत्पादित की जाने वाली अनेक वस्तुएं एवं सेवाएं इस प्रकार की होती हैं जिनका मूल्य मुद्रा में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक गृहणी द्वारा अपने परिवार के लिए दी गयी सेवाएं, कार के मालिक द्वारा स्वयं कार चलाना आदि। भारत में यह सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं की जाती, जिससे राष्ट्रीय आय के आंकड़े सही प्रतीत नहीं होते।
2. **अमौद्रिक विनिमय (NON-MONETARY EXCHANGE):** देश में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाने के लिए उस देश में अर्थव्यवस्था का संगठित होना एवं वस्तुओं एवं सेवाओं का मुद्रा में विनिमय आवश्यक है। परन्तु भारत में स्थिति भिन्न है। भारत एक ऐसा देश है जहां की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवासित है और गांव में क्रय–विक्रय में मुद्रा का प्रयोग सीमित मात्रा में होता है। अतः यह ज्ञात करना कठिन है कि कितने उत्पादन का इस प्रकार विनिमय हुआ है। ऐसे में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना कठिन है।
3. **विदेशी कम्पनियों द्वारा देश में उत्पादन करना (DOMESTIC PRODUCTION BY FOREIGN COMPANIES):** एक देश में विदेशी कम्पनियों द्वारा कार्य करने पर यह समस्या आती है कि इन कम्पनियों की आय को किस देश की राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाय। सामान्यतः तो विदेशी कम्पनियों की आय उस देश की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित की जाती है जिस देश में यह उत्पादन करती हैं, परन्तु व्यवहारिक रूप में यह विदेशी कम्पनियां उपार्जित लाभ को अपने देश में भेजने के लिए प्रयासरत रहती हैं।
4. **स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तुएं (SELF-CONTAINED GOODS):** स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तुएं भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई उत्पन्न करती

हैं। उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं का एक भाग ऐसा होता है जो विक्रय हेतु बाजार में नहीं जाता है बल्कि इसे उत्पादक अपने उपभोग के लिए रख लेता है। इससे इन वस्तुओं का बाजार मूल्य ज्ञात करने में कठिनाई होती है। कृषि उपज के सम्बन्ध में यह स्थिति अधिक देखने को मिलती है।

5. **सही एवं पर्याप्त आंकड़ों का अभाव (LACK OF ACCURATE AND ADEQUATE DATA):** राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए अनेक प्रकार के आंकड़ों की आवश्यकता होती है, जैसे– उत्पादन लागत, बचत, उपभोग व्यय, कार्यशील जनसंख्या, मजदूरी, लाभ आदि। परन्तु, भारत जैसे विशाल एवं विकासशील देश में आंकड़ों का संग्रह अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा न किये जाने के कारण सही एवं पर्याप्त आंकड़े प्राप्त नहीं हो पाते हैं।
6. **जनसहयोग की कमी (LACK OF PUBLIC COOPERATION):** जनसहयोग की कमी भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई उत्पन्न करती है। राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़ों के संग्रह के समय देश के लोगों द्वारा आयकर लगने के भय अथवा सही हिसाब न रखने के कारण सही सूचनाएं नहीं दी जाती हैं जिससे राष्ट्रीय आय के सही आंकड़े प्राप्त नहीं हो पाते हैं।
7. **मध्यवर्ती एवं अन्तिम पदार्थों का निर्धारण करना कठिन (DIFFICULT TO DETERMINE INTERMEDIATE AND FINAL GOODS):** राष्ट्रीय आय में मध्यवर्ती को शामिल न करके केवल अन्तिम वस्तुओं को ही शामिल किया जाता है। परन्तु, कभी–कभी मध्यवर्ती वस्तु अथवा अन्तिम वस्तु का निर्धारण करना कठिन हो जाता है। अनेक पदार्थ ऐसे होते हैं जो एक रूप में तो मध्यवर्ती है परन्तु दूसरे रूप में अन्तिम वस्तु हैं, जैसे– गैंहू का आटा आदि।

2.7 राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां (TRENDS OF NATIONAL INCOME)

भारत में सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने का श्रेय **दादाभाई नौरोजी (Dadabhai Naoroji)** को जाता है। उन्होने 1868 ई. में अपनी पुस्तक ***"Poverty and Un-British Rule in India"*** में प्रति व्यक्ति आय 20 रूपये बताई थी। बाद में, **फिण्डले शिराज (Findlay Shirras)** ने 1911 में प्रति व्यक्ति आय 49 रूपये, **वाडिया एवं जोशी (Wadia and Joshi)** ने 1913–14 में 44.30 रूपये, **डॉ. वी. के .आर. वी. राव (Dr. V. K. R. V. Rao)** ने 1925–1929 की अवधि में 76 रूपये प्रति व्यक्ति वार्षिक आय बताई।

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने देश में राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के उद्देश्य से 1949 ई. में **प्रो. पी. सी. महानोबिस (Prof P. C. Mahalanobis)** की अध्यक्षता में एक **राष्ट्रीय आय समिति (National Income Committee)** का गठन किया जिसमें प्रो. डी. आर. गाडगिल और **डॉ वी. के. आर. वी. राव (Prof. D. R. Gadgil and Dr. V. K. R. V. Rao)**। इस समिति ने अपनी प्रथम रिपोर्ट (1951) में 1948–49 के लिए देश की कुल राष्ट्रीय आय 8,650 करोड़ रूपये तथा प्रति व्यक्ति आय 246.9 रूपये आंकलित की। बाद में, राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का संकलन करने के लिए सरकार ने केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (Central Statistics Office) की स्थापना की। इस संगठन ने स्थापना के बाद नियमित रूप से भारत की राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य प्रारम्भ किया।

भारत में राष्ट्रीय आय की अद्यतन प्रवृत्तियों अथवा विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार से बताया जा सकता है :

1. भारत में शुद्ध राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष 1950–51 में चालू मूल्यों के आधार पर यह 9,152 करोड़ रूपये थी जो वर्ष 2007–08 में 414 गुना बढ़कर 37,87,596 करोड़ रूपये हो गई है।
2. देश में प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है। वर्ष 1950–51 में चालू मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति आय 255 रूपये थी जो वर्ष 2007–08 में 131 गुना बढ़कर 33,283 रूपये हो गई है।
3. भारत में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने की दरों में बहुत अन्तर है। देश में चालू मूल्यों के आधार वर्ष 1950–51 से 2007–08 की अवधि में शुद्ध राष्ट्रीय आय 414 गुना वृद्धि दर्ज की गई जबकि इसी अवधि में प्रति व्यक्ति आय केवल 131 गुना बढ़ी। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दरों में इस अन्तर का प्रमुख कारण भारत में तेजी से बढ़ती जनसंख्या है।
4. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय आय में अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र का योगदान कम हुआ है जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान में वृद्धि हुई है। वर्ष 1950–51 से 2007–08 की अवधि में देश के सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 56.5 प्रतिशत से कम होकर 19.8 प्रतिशत रह गया जबकि इसी अवधि में द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान क्रमशः 13.6 प्रतिशत एवं 29.9 प्रतिशत से बढ़कर 24.5 प्रतिशत एवं 55.7 प्रतिशत हो गया है।
5. भारत में बचत एवं पूँजी निर्माण की दर में भी तेजी आई है। वर्ष 1950–51 में सकल घरेलू बचत की दर एवं विनियोग की दर क्रमशः 8.6 प्रतिशत एवं 8.4 प्रतिशत थी जो वर्ष 2007–08 में बढ़कर क्रमशः 37.7 प्रतिशत एवं 39.1 प्रतिशत हो गई हैं।

2.8 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था (NATIONAL INCOME AND INDIAN ECONOMY)

भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का अत्यधिक महत्व है। यह देश के विकास का प्रमुख संकेतक है। अर्थव्यवस्था के सभी अंग किसी न किसी रूप में राष्ट्रीय आय का निरन्तर सृजन करते हैं और राष्ट्रीय आय देश की अर्थव्यवस्था का सूचक बनकर सामाजिक आय का लेखा–जोखा प्रस्तुत करती है। भारत की अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय निम्नलिखित प्रकार से महत्वपूर्ण है :

1. राष्ट्रीय आय देश की आर्थिक प्रगति की प्रमुख माप है। इसके आधार पर पता लगाया जा सकता है कि देश किस गति से विकास कर रहा है।
2. राष्ट्रीय आय अर्थव्यवस्था का सही एवं विस्तृत चित्र प्रस्तुत करती है। इससे देश में विभिन्न क्षेत्रों, संसाधनों आदि की दशा एवं दिशा का ज्ञान मिलता है।
3. राष्ट्रीय आय से देश के विभिन्न वर्गों में आय के वितरण का अनुमान लगाया जा सकता है। इससे प्रति व्यक्ति आय एवं लोगों के जीवन–स्तर का अनुमान मिल सकता है।
4. राष्ट्रीय आय के आंकड़ों द्वारा देश में आर्थिक नीतियों का निर्माण किया जाता है जिससे सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव होता है।

5. राष्ट्रीय आय के आंकड़ों की सहायता से विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों एवं राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2.9 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न 01 : राष्ट्रीय आय से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न 02 : राष्ट्रीय आय की अवधारणा 'साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद' को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 03 : बहुविकल्पीय प्रश्न।

क. ''राष्ट्रीय आय किसी समाज की वह वास्तविक आय है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल है तथा जिसे मुद्रा में मापा जो सके।'' यह परिभाषा है :

(अ) मार्शल की, (ब) पीगू की,

(स) कीन्स की, (द) इनमें से किसी की नहीं।

ख. बाजार मूल्य पर आंकलित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से अप्रत्यक्ष करों को घटाने एवं सब्सिडी को जोड़ने पर प्राप्त होने वाला मूल्य कहलाता है :

(अ) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद,

(ब) सकल राष्ट्रीय उत्पाद,

(स) बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद,

(द) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ।

प्रश्न 04 : राष्ट्रीय आय की गणना की कौन–कौन सी विधियां हैं ? भारत में राष्ट्रीय आय को मापने हेतु किस विधि का उपयोग किया जाता है ?

प्रश्न 05 : राष्ट्रीय आय को मापने में क्या कठिनाईयां आती हैं ?

प्रश्न 06 : रिक्त स्थान भरिए।

(क) भारत में राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए ..... विधि का प्रयोग किया जाता है।

(ख) ..... ने राष्ट्रीय आय की गणना की सामाजिक लेखांकन विधि का प्रतिपादन किया था।

2.10 सारांश (SUMMARY)

राष्ट्रीय आय किसी देश की प्रगति का सूचक है। यह एक दिए हुए समय में किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति को मापती है। प्रो. अल्फ्रेड मार्शल, प्रो. ए. सी. पीगू के साथ ही विभिन्न अर्थशास्त्रियों एवं समितियों ने राष्ट्रीय आय पर अपने–अपने मत दिये हैं। वास्तव में, राष्ट्रीय आय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का योग है जिसे मूल्य ह्रास को घटाकर एवं विदेशी लाभ को जोड़कर निकाला जाता है। राष्ट्रीय आय को मापने की चार विधियां हैं, जिनमें से भारत में उत्पादन गणना विधि एवं आय गणना विधि का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रीय आय को मापने में मुद्रा में भुगतान न किये जाने वाली सेवाएं, अमौद्रिक विनिमय, विदेशी कम्पनियों द्वारा देश में उत्पादन, स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तु, सही एवं पर्याप्त आंकड़ों का अभाव, जनसहयोग की कमी, मध्यवर्ती एवं अन्तिम पदार्थों का निर्धारण आदि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक कठिनाईयां आती हैं, जिन्हे सावधानी अपनाकर दूर किया जा सकता है। वर्तमान में, भारत में राष्ट्रीय आय के बढ़ने

की प्रवृत्ति पाई गई है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के तेजी से विकास करने को इंगित करती है।

2.10 शब्दावली (GLOSSARY)

- **मध्यवर्ती वस्तु (INTERMEDIATE GOODS):** वे उत्पादित वस्तुएं जिनका प्रयोग पुनः तैयार माल बनाने में किया जाता है, मध्यवर्ती वस्तुएं कहलाती हैं। अन्य शब्दों में, मध्यवर्ती वस्तुएं वे हैं जिन्हें एक उत्पादक अन्य फर्मों से खरीदता है जिससे इनका अपने उत्पादन में प्रयोग कर सके। उदाहरण के लिए, डबल रोटी के उत्पादक द्वारा अपने उत्पादन हेतु आटा खरीदना। यहां आटा मध्यवर्ती पदार्थ है।
- **प्रति व्यक्ति आय (PER CAPITA INCOME):** प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को ही प्रति व्यक्ति आय कहा जाता है। किसी देश की राष्ट्रीय आय को वहां की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय ज्ञात की जाती है।
- **दोहरी गणना (DOUBLE COUNTING):** जब एक उत्पादन का मूल्य राष्ट्रीय आय की गणना के समय मध्यवर्ती एवं अन्तिम उत्पादन के रूप में एक से अधिक बार गणना में शामिल कर लिया जाता है तो यह समस्या दोहरी गणना की समस्या कहलाती है।

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर 01 : राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के जोड़ से है जिसे ह्रास को घटाकर एवं विदेशी लाभ को जोड़कर निकाला जाता है।

उत्तर 02 : साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को ही राष्ट्रीय आय कहा जाता है। इसकी गणना बाजार मूल्य पर आंकलित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में अप्रत्यक्ष करों को घटाकर एवं सब्सिडी को जोड़कर की जाती है। इस प्रकार से ज्ञात मूल्य ही साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा **राष्ट्रीय आय** कहलाता है। गणितीय रूप में, साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय (NNP_{FC} or National Income) = NNP_{MP} - Indirect Taxes + Subsidies.

उत्तर 03 : **क.** (ब) पीगू की। **ख.** (अ) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद।

उत्तर 04 : राष्ट्रीय आय को मापने की चार विधियां हैं : (1) उत्पादन गणना विधि, (2) आय गणना विधि, (3) व्यय गणना विधि तथा (4) सामाजिक लेखांकन विधि। भारत में राष्ट्रीय आय को मापने हेतु उत्पादन गणना विधि एवं आय गणना विधि का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाता है।

उत्तर 05 : राष्ट्रीय आय को मापने में आने वाली कठिनाईयां हैं – मुद्रा में भुगतान न किया जाना, अमौद्रिक विनिमय, विदेशी कम्पनियों द्वारा देश में उत्पादन करना, स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तुएं, सही एवं पर्याप्त आंकड़ों का अभाव, जनसहयोग की कमी, मध्यवर्ती एवं अन्तिम पदार्थों का कठिन निर्धारण आदि।

उत्तर 06 : **(क)** उत्पादन एवं आय विधि दोनों का। **(ख)** प्रो. रिचार्ड स्टोन।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- Jhingan, M.L. (2009) : *Principles of Economics*, Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.
- Seth, M.L. (2009) : *Principles of Economics*, Laxmi Narain Agarwal, Agra.
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006) : *भारतीय अर्थव्यवस्था,* एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- सेठी, टी.टी. समष्टि (2010) : *समष्टि अर्थशास्त्र,* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- *आर्थिक समीक्षा 2010–11,* भारत सरकार।

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. राष्ट्रीय आय का अर्थ बताईये। राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं की व्याख्या करते हुए इनमें अन्तर स्पष्ट डालिए।
2. राष्ट्रीय आय की गणना की कौन–कौन सी विधियां हैं ? इसकी गणना में क्या कठिनाईयां आती हैं ?
3. राष्ट्रीय आय की विभिन्न संकल्पनाओं को बताते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में राष्ट्रीय आय की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए

इकाई 3: जनसंख्या, मानवीय संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (POPULATION, HUMAN RESOURCES AND INDIAN ECONOMY)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जनसंख्या : एक परिचय
3.4 विश्व एवं भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्तियां
3.5 भारतीय जनसंख्या के प्रमुख लक्षण
3.5.1 आयु संरचना
3.5.2 लिंग अनुपात
3.5.3 ग्रामीण–शहरी जनसंख्या
3.5.4 साक्षरता अनुपात
3.5.5 जीवन–प्रत्याशा
3.5.6 जन्म दर एवं मृत्यु दर
3.5.7 जनसंख्या घनत्व
3.5.8 जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण
3.6 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट की समस्या
3.6.1 भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण
3.6.2 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट के बुरे प्रभाव
3.6.3 जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय
3.7 जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध
3.7.1 जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव
3.7.2 आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव
3.8 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि राष्ट्रीय आय क्या है ?, इसकी गणना कैसे की जाती है ? एवं, भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का क्या महत्व है ?

एक देश में मानवीय संसाधन अर्थात् उपलब्ध जनसंख्या उस देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक विकास का प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में भारत की जनसंख्या की प्रवृत्तियों, प्रमुख लक्षणों, जनाधिक्य की समस्या/उपाय तथा जनसंख्या का आर्थिक विकास से सम्बन्ध, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों, इसकी समस्याओं, भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में जनसंख्या के महत्व को समझ सकेंगे तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ✓ बता सकेंगे कि भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियां क्या हैं।
- ✓ बता सकेंगे कि जनसंख्या वृद्धि की समस्याएं एवं इसके नियन्त्रण के क्या उपाय हैं।
- ✓ समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु मानवीय संसाधन क्यों महत्वपूर्ण हैं।

3.3 जनसंख्या : एक परिचय (POPULATION: AN INTRODUCTION)

विश्व का प्रत्येक देश आर्थिक दृष्टि से उन्नति का आकांक्षी है और देश का आर्थिक विकास मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर करता है : प्रथम, प्राकृतिक संसाधन एवं द्वितीय, मानवीय संसाधन। वास्तविक रूप में आर्थिक विकास में सबसे अधिक योगदान मानवीय संसाधन अर्थात् उस देश में उपलब्ध जनसंख्या का ही होता है। जनसंख्या के सक्रिय सहयोग के बिना आर्थिक उन्नति और विकास के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक साधन एवं पूंजी आदि को उत्पादन कार्य में लगाने के लिए मानवीय प्रयत्नों की ही आवश्यकता होती है। मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति से भौतिक साधनों का शोषण करता है, नवप्रवर्तनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया को विकसित करता है और इस प्रकार आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। स्पष्टतः जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन ही नहीं वरन् साध्य भी है और यह विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है परन्तु वर्तमान समय में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या विश्व की गम्भीरतम समस्याओं में एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है।

3.4 विश्व एवं भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्तियां (TRENDS OF WORLD AND INDIAN POPULATION)

- ➢ **विश्व जनसंख्या (WORLD POPULATION):** पृथ्वी पर मानव जाति का इतिहास बहुत पुराना है। विद्वानों का मानना है कि इस ग्रह पर मनुष्य का जन्म 20–30 लाख वर्ष पूर्व हुआ था। पृथ्वी पर तब से लेकर सन् 1800 तक मनुष्य जाति

की कुल संख्या बढ़कर 01 अरब हो गई। यह संख्या सन् 1930 में बढ़कर 02 अरब, सन् 1960 में 03 अरब, सन् 1975 में 04 अरब और 11 जुलाई 1987 को 05 अरब हो गई। 05 अरब के बिन्दु को प्राप्त करने के कारण ही 11 जुलाई को प्रतिवर्ष 'विश्व जनसंख्या दिवस' के रूप में मनाया जाता है। 12 अक्टूबर 1999 को विश्व की जनसंख्या बढ़कर 06 अरब हो गई। (12 अक्टूबर 1999 के दिन को संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने '06 अरब जनसंख्या के दिवस' के रूप में घोषित किया)। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी पर जनसंख्या को मानव के जन्म से 01 अरब होने में कई लाख वर्ष लगे, 02 अरब होने में 130 वर्ष, 03 अरब होने में 30 वर्ष, 04 अरब होने में 15 वर्ष, 05 अरब होने में 12 वर्ष और 06 अरब होने में भी मात्र 12 वर्षों का समय लगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाग के अनुसार वर्ष 2010 में विश्व की कुल अनुमानित जनसंख्या 6.9087 अरब थी। एक अनुमान के अनुसार, सन् 2050 तक यह 9.1 अरब हो जायेगी। इसी अवधि में जहाँ विकसित देशों की जनसंख्या 1.2 अरब के स्तर पर ही बने रहने का आंकलन है, वहीं विकासशील देशों में जनसंख्या का वर्तमान स्तर 5.3 अरब से बढ़कर 7.8 अरब तक पहुँचने का अनुमान है।

उल्लेखनीय है कि विश्व में जनसंख्या के मामले में पांच बड़े देश चीन, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, इण्डोनेशिया, एवं ब्राजील है जिनकी जनसंख्या क्रमशः 134.10 करोड़, 121.02 करोड़, 30.87 करोड़, 23.76 करोड़ एवं 19.07 करोड़ है।

- **भारतीय जनसंख्या (INDIAN POPULATION):** भारत में जनगणना का कार्य सर्वप्रथम 1872 में किया गया, परन्तु जनसंख्या की क्रमवार और व्यवस्थित गणना सन् 1881 से की जा रही है। सन् 1891 में भारत की कुल जनसंख्या 23.6 करोड़ थी, जो 1951 में 36.11 करोड़, 1991 में 84.64 करोड़ तथा 2001 में बढ़कर 102.87 करोड़ हो गई। जनगणना 2011 के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार, वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है जहां विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत भाग निवासित है जबकि उसके पास विश्व क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत भाग ही है। 2001–2011 की अवधि में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत आंकलित की गयी है। भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण जन्मदर (22.22 प्रति हजार) एवं मृत्युदर (6.4 प्रति हजार) में पर्याप्त अन्तर होना भी है।

विश्व में, भारत की जनसंख्या चीन के पश्चात् द्वितीय स्थान पर है और यह 1.41 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है। सम्भावना है कि सन् 2030 में भारत चीन को पीछे छोड़कर विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा। एक अनुमान के अनुसार, सन् 2030 में चीन की जनसंख्या 144.6 करोड़ होगी, जबकि उसी समय भारत की जनसंख्या 144.9 करोड़ हो जायेगी। इसके पश्चात् अगले दो दशकों में भारत में जनसंख्या वृद्धि होती रहेगी, वहीं चीन की जनसंख्या में कमी आने की सम्भावना है। सन् 2050 में भारत और चीन की जनसंख्या क्रमशः 159.3 करोड़ तथा 139.2 करोड़ हो जाने और सन् 2050 में ही दोनों की संयुक्त जनंसख्या (298.5 करोड़) विश्व की कुल अनुमानित जनसंख्या का एक तिहाई होने का अनुमान है।

3.5 भारतीय जनसंख्या के प्रमुख लक्षण (IMPORTANT CHARACTERISTICS OF INDIAN POPULATION)

भारतीय जनसंख्या से सम्बन्धित प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं :

3.5.1 आयु संरचना (AGE STRUCTURE)

आयु संरचना से तात्पर्य एक देश में विभिन्न आयु वर्गों में लोगों की संख्या से है। एक देश के लिए आयु संरचना का विशेष महत्व होता है क्योंकि यह देश की आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक ढ़ांचे पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। इस संरचना से अनेक जानकारियां प्राप्त होती हैं, जैसे– श्रम करने वाली जनसंख्या, विद्यालय जाने वाले बच्चों की संख्या, विवाह योग्य जनसंख्या, मतदाताओं की संख्या, आश्रितों की संख्या आदि। इन जानकारियों का उपयोग नीति–निर्माण में किया जाता है। सामान्यतः किसी देश की जनसंख्या को तीन बड़े आयु वर्गों में रखा जाता है : 0–14 वर्ष (बाल जनसंख्या का वर्ग), 15–64 वर्ष (प्रौढ़ जनसंख्या का वर्ग) तथा 65 वर्ष से अधिक (वृद्ध जनसंख्या का वर्ग)। वर्ष 2009 में भारत में कुल जनसंख्या का 31.1 प्रतिशत 0–14 वर्ष के आयु–वर्ग में, 63. 6 प्रतिशत 15–64 वर्ष के आयु–वर्ग में तथा 5.3 प्रतिशत 65 वर्ष से अधिक के आयु–वर्ग में है।

3.5.2 लिंग अनुपात (SEX RATIO)

लिंग अनुपात से आशय एक देश की जनसंख्या में पुरूषों के तुलना में स्त्रियों की संख्या है। इसे स्त्री–पुरूष अनुपात भी कहा जाता है। इस अनुपात की गणना में देखा जाता है कि देश की जनसंख्या में 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या कितनी है। भारत में वर्ष 1901 में लिंग अनुपात 972 था अर्थात् 1000 पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 972 थी जो 1951 में 946, 1991 में 927, 2001 में 933 तथा वर्ष 2011 में 940 है। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल 1,21,01,93,422 व्यक्तियों में 62,37,24,248 पुरूष तथा 58,64,69,174 महिलाएं हैं। वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में भारत के लिंग अनुपात में 7 अंकों की वृद्धि दर्ज की गई है।

भारत में लिंग अनुपात की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में दर्शाया जा सकता है :

1. **विश्व के विभिन्न देशों की तुलना भारत में लिंग अनुपात कम है।** रूस में यह अनुपात 1167, जापान में 1055, ब्राजील में 1042, श्रीलंका में 1034, संयुक्त राज्य अमेरिका में 1025 तथा सम्पूर्ण विश्व में लिंग अनुपात 984 है।
2. **भारत के विभिन्न राज्यों में लिंग अनुपात में भारी विषमताएं हैं।** भारत में सर्वाधिक लिंग अनुपात वाले तीन राज्य केरल (1084), तमिलनाडु (995) और आन्ध्र प्रदेश (992) हैं जबकि केन्द्र शासित प्रदेशों में पुण्डुचेरी (1038), लक्षद्वीप (946) तथा अण्डमान एण्ड निकोबार (878) सबसे ऊपर हैं। सबसे कम लिंग अनुपात वाले तीन राज्य हरियाणा (877), जम्मू एण्ड कश्मीर (833) और सिक्किम (889) हैं जबकि केन्द्र शासित प्रदेशों में दमन एण्ड द्वीव (618), दादरा एण्ड नागर हवेली (775) तथा चण्डीगढ़ (818) सबसे कम लिंग अनुपात वाले क्षेत्र हैं।

भारत में लिंग अनुपात कम होने के प्रमुख कारण हैं– निर्धनता, निम्न जीवन स्तर, दहेज प्रथा, बाल विवाह, प्रजनन काल में स्त्रियों की अधिक मृत्यु होना, महिलाओं को समाज में कम महत्व देना आदि।

3.5.3 ग्रामीण–शहरी जनसंख्या (RURAL-URBAN POPULATION)

एक देश में ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या का अनुपात उसकी आर्थिक प्रगति को दर्शाता है। जिस देश में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या समान होती है, वह देश सन्तुलित आर्थिक–व्यवस्था वाला देश माना जाता है। देश में नगरीय जनसंख्या अधिक होने पर माना जाता है कि उस देश के निवासियों को अधिक सुख–सुविधाएं उपलब्ध हैं तथा ग्रामीण जनसंख्या अधिक होने पर विपरीत स्थिति होती है। जनसंख्या का ग्रामीण तथा शहरी वर्गों में विभाजन, लोगों के निवास–स्थान के आधार पर किया जाता है। ग्रामीण–शहरी जनसंख्या की गणना हेतु नगर क्षेत्र वे माने गये हैं जो निम्नलिखित मानदण्डों को पूरा करते हैं :

(1) वे सभी क्षेत्र जहां नगर निगम, नगर पालिका, छावनी बोर्ड अथवा अधि सूचित नगरीय क्षेत्र हों,

(2) वे क्षेत्र जहां– न्यूनतम जनसंख्या 5000 हो, कार्यशील पुरूष जनसंख्या का न्यूनतम 75 प्रतिशत गैर–कृषि कार्यों में संलग्न हो तथा जनसंख्या का घनत्व न्यूनतम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो।

जनगणना 2001 के अनुसार, विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे देश भारत में कुल जनसंख्या का 72.2 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवासित है जबकि 27.78 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में। भारत में शहरी जनसंख्या का अनुपात बहुत धीमी गति से बढ़ा है। वर्ष 1901 में यह 11.8 प्रतिशत था जो 2001 में 27.78 प्रतिशत हो गया है। (तालिका संख्या 1 देखें)। भारत में सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या दिल्ली (93 प्रतिशत) में है।

तालिका 1 : भारत में ग्रामीण–शहरी जनसंख्या का अनुपात

वर्ष	कुल जनसंख्या (करोड़ में)	ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	शहरी जनसंख्या का प्रतिशत
1901	23.84	89.2	11.8
1951	36.11	82.7	17.3
1991	84.64	74.3	25.7
2001	102.7	72.22	27.78

3.5.4 साक्षरता अनुपात (LITERACY RATE)

शिक्षा को विकास की सीढ़ी, परिवर्तन का माध्यम एवं आशा का अग्रदूत माना जाता है। अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों को समाप्त करने, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने, महिलाओं के सशक्तिकरण, अल्पसंख्यकों एवं उपेक्षित वर्गों को उचित स्थान प्रदान करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत में साक्षरता की दर वर्ष 1951 में मात्र 18.3 प्रतिशत थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 64.83 प्रतिशत हो गई। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। देश में पुरूष साक्षरता दर वर्ष 2001 में 75.26 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 82.14 प्रतिशत हो गई है। इसी प्रकार, महिलाओं की साक्षरता दर वर्ष 2001 में 53.67 प्रतिशत की तुलना में 2011 में

बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई है। देश में शिक्षा सुविधाओं का विकास होने के साथ ही पुरूष–महिला की साक्षरता दर का अन्तर भी कम हुआ है। (तालिका संख्या 2 देखें)। भारत में केरल 93.91 प्रतिशत के साथ सर्वाधिक साक्षरता दर वाला राज्य है जबकि सबसे कम साक्षरता दर बिहार में है जहां यह दर मात्र 63.82 प्रतिशत है।

तालिका 2 : भारत में साक्षरता दर (1951–2011) (आंकड़े प्रतिशत में)

वर्ष	व्यक्ति	पुरूष	महिलाएं	पुरूष–महिला साक्षरता दर में अन्तर
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	64.83	75.26	53.67	21.59
2011	74.04	82.14	65.46	16.68

3.5.5 जीवन–प्रत्याशा (LIFE-EXPACENTCY)

जीवन–प्रत्याशा से आशय जीवित रहने की आयु से है। जब देश में एक शिशु जन्म लेता है तो उसके कितने वर्ष तक जीवित रहने की आशा की जाती है, इस जीवित रहने की आशा को ही जीवन–प्रत्याशा अथवा प्रत्याशित आयु अथवा औसत आयु कहा जाता है। देश मे मृत्यु दर के कम होने पर जीवन–प्रत्याशा अधिक होती है जबकि मृत्यु दर के अधिक होने पर जीवन–प्रत्याशा कम होती है।

भारत में जीवित रहने की आयु में निरन्तर वृद्धि हुई है परन्तु यह गति बहुत धीमी रही है। देश में लोगों की जीवन–प्रत्याशा 1911 में 22.9 वर्ष थी जो 1951 में 32.1 वर्ष तथा 1991 में बढ़कर 59.9 वर्ष हो गयी। वर्ष 2009 में यह 69.89 वर्ष आंकलित की गई है। इसी वर्ष पुरूषों की जीवन–प्रत्याशा 67.46 वर्ष तथा महिलाओं की 72. 61 वर्ष रही। विकसित देशों की तुलना में भी भारत में जीवन–प्रत्याशा कम है। उदाहरण के लिए, जापान में जीवन–प्रत्याशा 81 वर्ष, कनाडा में 79 वर्ष, आस्ट्रेलिया में 78 वर्ष तथा अमेरिका एवं इंग्लैण्ड में 77 वर्ष है।

3.5.6 जन्म दर एवं मृत्यु दर (BIRTH RATE AND MORTALITY RATE)

1. **जन्म दर (BIRTH RATE):** जन्म दर से अर्थ एक वर्ष में एक हजार जनसंख्या पर जन्म लेने वाले शिशुओं की कुल संख्या से है। इसे निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है :

$$\text{जन्म दर} = \frac{\text{एक वर्ष में जन्मे जीवित शिशुओं की कुल संख्या}}{\text{उस वर्ष में देश की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

एक देश की जनसंख्या का आकार बहुत हद तक उस देश की जन्म दर पर निर्भर करता है। यदि जन्म दर अधिक है तो जनसंख्या अधिक गति से बढ़ेगी। भारत में 70 के दशक तक जन्म दर में वृद्धि दर्ज की गई थी परन्तु अब इसमें लगातार कमी आ रही है। भारत में 1901–10 में यह 49.2 प्रति हजार थी जो 1951–60 में 41.7

प्रति हजार हो गयी। इसके पश्चात् जनसंख्या के नियोजन पर ध्यान देने के कारण यह वर्ष 1991 में कम होकर 29.5 प्रति हजार हो गयी। वर्तमान में यह 22.22 प्रति हजार है। भारत में जन्म दर के अधिक होने के कारण हैं– बाल विवाह, निर्धनता, विवाह की अनिवार्यता, संयुक्त परिवार प्रणाली, रूढ़िवादिता, मनोरंजन की सुविधाओं का कम होना, ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन का पूर्ण रूप से सफल न होना आदि।

2. मृत्यु दर (MORTALITY RATE): मृत्यु दर से आशय एक वर्ष में एक हजार जनसंख्या पर मृत्युओं की संख्या से है। इसे निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है :

$$\text{मृत्यु दर} = \frac{\text{एक वर्ष में मृतकों की कुल संख्या}}{\text{उस वर्ष में देश की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

एक देश की जनसंख्या को जन्म दर के साथ ही मृत्यु दर भी महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करती है। मृत्युदर के अधिक होने की स्थिति में देश के लोग अधिक मृत्यु की क्षतिपूर्ति हेतु जन्म दर को बढ़ा देते हैं, जिससे जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है। भारत में विकास प्रक्रिया के कारण मृत्यु दर में कमी आ रही है। 1911–20 की अवधि में यह 47.2 प्रति हजार थी। इसके बाद भारत में मृत्यु दर में निरन्तर गिरावट आयी है। 1941–50 में यह 27.4 थी जो वर्तमान में घटकर 6.4 प्रति हजार हो गयी।

भारत की मृत्यु दर में कमी के कारण हैं– (Causes of decrease in mortality of India)

शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, बीमारियों एवं महामारियों में कमी, अन्धविश्वास में कमी, जीवन स्तर का ऊँचा होना, मनोरंजन के साधनों का विस्तार, महिलाओं की स्थिति में सुधार होना आदि।

3.5.7 जनसंख्या घनत्व (POPULATION DENSITY)

जनसंख्या घनत्व से आशय प्रति वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या से है। इसे 'व्यक्ति–भूमि अनुपात' भी कहा जाता है। यह किसी विशेष क्षेत्र में जनसंख्या के केन्द्रीयकरण को दर्शाने का प्रमुख सूचक है। जनसंख्या घनत्व को निकालने के लिए एक देश की कुल जनसंख्या में उस देश के कुल क्षेत्रफल का भाग दे दिया जाता है। भारत में जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण जनसंख्या घनत्व में भी वृद्धि होती जा रही है। वर्ष 1901 में यह 77 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी था जो 2001 में बढ़कर 325 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी हो गया। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत का जनसंख्या घनत्व 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी है, जिसमें पिछले दशक की तुलना में प्रति वर्ग किमी 57 व्यक्तियों की वृद्धि हुई है।

उल्लेखनीय है कि भारत में विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है जबकि यहां विश्व जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवासित है। संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व क्षेत्रफल का 7.2 प्रतिशत तथा विश्व जनसंख्या का मात्र 4.5 प्रतिशत है। विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले कुल दस देशों में जनसंख्या घनत्व के मामले में बांग्लादेश

के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। भारत में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व बिहार में (1102 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) तथा सबसे कम अरूणाचल प्रदेश में (17 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) है; जबकि केन्द्रशासित प्रदेशों में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व दिल्ली में (11297 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) तथा सबसे कम अण्डमान एण्ड निकोबार में (46 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) है।

3.5.8 जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण (OCCUPATIONAL DISTRIBUTION OF POPULATION)

जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण से अर्थ देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न उत्पादन क्रियाओं में वितरण से है अर्थात् इसमें देखा जाता है कि कार्यशील जनसंख्या का कितना भाग जीविकोपार्जन हेतु किस क्षेत्र में संलग्न है। सामान्यतः इस वितरण को अर्थव्यवस्था के तीन भागों– प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्व क्षेत्र), द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र) एवं तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) से सम्बद्ध करके देखा जाता है। कम विकसित देशों में अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्र में संलग्न होती है, जबकि विकसित देशों में जनसंख्या द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में अधिक संलग्न रहती है। पिछड़े देशों में विकास होने के साथ ही वहां प्राथमिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ने लगता है जिससे इस क्षेत्र में लगे श्रमिक द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र की ओर जाने लगते हैं।

भारत में 1901 में कार्यशील जनसंख्या का 71.8 प्रतिशत भाग प्राथमिक क्षेत्र में तथा 12.6 प्रतिशत एवं 15.6 प्रतिशत भाग क्रमशः द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में संलग्न था। वर्ष 2011 में प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 64.9, 13.6 एवं 21.5 था। स्पष्ट है कि आर्थिक विकास के साथ ही भारत में जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण में परिवर्तन हुआ है परन्तु इस परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही है।

3.6 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट की समस्या (PROBLEMS OF OVER-POPULATION OR POPULATION EXPLOSION IN INDIA)

प्राचीन समय में अधिक जनसंख्या को कोई समस्या नहीं माना जाता था वरन् विभिन्न विचारक अधिक जनसंख्या को 'प्रगति एवं सम्पन्नता का सूचक' मानते थे, परन्तु वर्तमान में जनसंख्या की समस्या मानव की सबसे जटिल समस्या बन गई है। विशेषकर, अल्पविकसित एवं विकासशील देशों के लिए अति जनसंख्या एक गम्भीर समस्या का रूप लेती जा रही है जो इन देशों के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न कर रही है। हर्षमैन के अनुसार, 'जनसंख्या का दबाव विकास के लिए एक बेढंगा और निष्ठुर प्रोत्साहन है।' वास्तव में, पूर्व में जनसंख्या का उचित नियन्त्रण एवं नियोजन न होने के कारण ही आज समस्याएँ उग्र रूप ले रहीं हैं। भारत, जो जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में चीन के बाद दूसरा बड़ा देश है, की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या भी विभिन्न समस्याएं उत्पन्न कर रही है। जनगणना 2011 के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार, वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है जो विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवासित है जबकि उसके पास विश्व क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत भाग ही है। 2001–2011 की अवधि में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत आंकलित की गयी है। भारत में यह जनाधिक्य

(जनसंख्या–विस्फोट) रोजगार, ऊर्जा–पूर्ति, पर्यावरण–प्रदूषण आदि की समस्याओं को बढ़ा रहा है। इतनी तेजी से बढ़ती जनसंख्या का समाधान करने के लिए समुचित और प्रभावशाली व्यवस्था तैयार करना सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है।
(नोट : भारत में जनाधिक्य (अथवा जनसंख्या विस्फोट) की समस्या को बताने के लिए यहां पर इसी इकाई के बिन्दु संख्या 3.4 में दिये गये भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्तियों से सम्बन्धित आंकड़ों का उपयोग किया जाना चाहिये।)

3.6.1 भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण (THE CAUSES OF POPULATION GROWTH IN INDIA)

पूर्व में बताया चुका है कि भारत में किसी प्रकार से जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

1. जन्म दर का ऊँचा एवं मृत्यु दर का नीचा होना,
2. जन्म एवं मृत्यु दरों में पर्याप्त अन्तर होना,
3. विवाह योग्य युवा जनसंख्या का अधिक होना,
4. साक्षरता दर की दर कम होना,
5. लोगों का भाग्यवादी एवं अन्धविश्वासी होना,
6. संयुक्त परिवार प्रणाली का चलन में होना,
7. ऊष्ण जलवायु का होना,
8. निर्धनता की अधिकता होना,
9. निरोधक उपायों का सीमित प्रयोग किया जाना,
10. सामाजिक सुरक्षा का अभाव होना,
11. स्त्रियों को निर्णय में भागीदारी न देना,
12. शरणार्थियों का विदेशों से आगमन आदि।

3.6.2 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट के बुरे प्रभाव (NEGATIVE EFFECTS OF OVER-POPULATION OR POPULATION EXPLOSION IN INDIA)

देश में जनाधिक्य की स्थिति होने पर इसके विभिन्न बुरे प्रभाव पड़ते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

1. मनुष्य की मूलभूत सुविधाओं (भोजन, वस्त्र एवं आवास) की व्यवस्था सम्बन्धी समस्या,
2. कृषि योग्य भूमि में कमी,
3. आवश्यक जल संसाधनों में कमी,
4. ऊर्जा–संकट एवं विद्युतीकरण का अभाव,
5. बेरोजगारी एवं प्रदूषण की समस्या,
6. गरीबी और विषमता में वृद्धि,
7. आश्रितता–अनुपात में वृद्धि
8. उच्च प्रशिक्षित जनसंख्या की उपलब्धता में कमी,
9. अति–नगरीकरण और नगरों की ओर पलायन की समस्याएं,
10. भविष्य में अधिक जनंसख्या हेतु आवश्यक सुविधाओं की अनुपलब्धता,
11. पर्याप्त विकास हेतु आवश्यक पूंजी निर्माण में कमी,

12. कानून और व्यवस्था की समस्या आदि।

3.6.3 जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय (MEASURES FOR POPULATION CONTROL)

भारत में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित करने एवं इसके स्थिरीकरण हेतु विभिन्न उपाय अपनाये जा सकते हैं :

1. बाल उत्तरजीविता, मातृ स्वास्थ्य एवं गर्भ निरोधक मामलों पर निरन्तर एवं . प्रभावी ढ़ंग से ध्यान देना;
2. विभिन्न समुदायों के नेताओं द्वारा इसको सार्वजनिक रूप में समर्थन देना;
3. परिवार कल्याण कार्यक्रम हेतु संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना;
4. राज्य स्वास्थ्य प्रणाली में कार्यकुशलता एवं जबावदेही लाना;
5. महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि करने एवं परिवार तथा समाज में उनकी स्थिति सुधारना;
6. विभिन्न सरकारी, गैर–सरकारी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्वैच्छिक संस्थाओं की सहायता लेना आदि।

3.7 जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध (RELATIONSHIP BETWEEN POPULATION GROWTH AND ECONOMIC DEVELOPMENT)

आज के इस अति गत्यात्मक विश्व में सभी देश विकसित देश बनने की आकांक्षा रखते हैं। भारत भी एक ऐसा ही देश है जो अपने प्रयासों से शीघ्र विकसित राष्ट्र बनना चाहता है। एक देश के विकास में वहां के उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन एवं मानवीय संसाधन अर्थात् जनसंख्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इनमें भी मानवीय संसाधन अर्थात् जनसंख्या अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह उपलब्ध जनसंख्या ही है जो अन्य संसाधनों का उपयोग कर देश के विकास को आगे बढ़ाती है। मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति से भौतिक साधनों का शोषण करता है, नवप्रवर्तनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया को विकसित करता है और इस प्रकार आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। **रिचर्ड टी. गिल** (Richard T. Gill) ने भी कहा है कि ***'आर्थिक विकास एक यान्त्रिक प्रक्रिया ही नहीं है बल्कि एक मानवीय उद्यम भी है। इसका प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।'*** वास्तव में, जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और यह दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव को दो प्रकार से देखा जा सकता है : प्रथम, जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव तथा द्वितीय, आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव।

3.7.1 जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव (THE EFFECT OF POPULATION GROWTH ON ECONOMIC DEVELOPMENT)

देश में जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि जनसंख्या स्थिर गति से बढ़ती है तो यह आर्थिक विकास में सहयोग देती है परन्तु

यदि जनसंख्या में तीव्र एवं असन्तुलित वृद्धि होती है तो यह आर्थिक विकास निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती है :

1. तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पादन वृद्धि का प्रभाव नगण्य हो जाता है।
2. जनसंख्या में अधिक वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय में कमी आती है।
3. अधिक जनसंख्या हेतु अधिक उपभोग पर व्यय करने के कारण बचत एवं विनियोग कम हो जाता है।
4. उपभोग पर अधिक व्यय से विकास हेतु आवश्यक पूंजी–निर्माण कम हो जाता है।
5. जनसंख्या वृद्धि के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी सुविधाओं में कमी आती है।
6. जनसंख्या बढ़ने से श्रम–शक्ति में वृद्धि होती है परन्तु रोजगार के अवसर उस अनुपात में न बढ़ पाने से बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है।
7. अति जनसंख्या से अपराध जैसी विभिन्न समस्याओं का उदय होता है।
8. जनसंख्या वृद्धि से उत्पादक जनसंख्या पर आश्रितों का भार बढ़ता है।
9. अधिक जनसंख्या से होने वाली समस्याओं के कारण कुशल जनसंख्या अन्य देशों में प्रवास कर जाती है।
10. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि से कृषि जोतों का आकार छोटा हो जाता है जिससे खेतों की उत्पादकता घटती है।

3.7.2 आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव (THE EFFECT OF ECONOMIC DEVELOPMENT ON POPULATION GROWTH)

देश में आर्थिक विकास देश की जनसंख्या को भी महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करता है जो निम्नलिखित हैं :

1. आर्थिक विकास होने से जन्मदर में कमी आती है।
2. विकास के कारण शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधाएं बढ़ने से मृत्युदर में कमी आती है।
3. विकास प्रक्रिया से लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है। वे बच्चों को सम्पत्ति न मानकर दायित्व मानने लगते हैं।
4. विकास के कारण लोगों की आय में वृद्धि तथा जीवन स्तर में सुधार होता है जिससे वे छोटे परिवार की ओर आकृषित होते हैं।
5. शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं के विकास होने से लड़का एवं लड़की का भेद कम होता है जिससे लोग कम सन्तानोत्पत्ति करते हैं।
6. आर्थिक विकास के प्रभाव से जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी आती है।

3.8 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (NATIONAL POPULATION POLICY)

जनसंख्या नीति के माध्यम से किसी देश में जनसंख्या का नियोजन किया जाता है। इस नीति में जनसंख्या के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या नीति के परिमाणात्मक पहलु के अन्तर्गत जनसंख्या के आकार एवं संरचना को देश के राष्ट्रीय साधनों के अनुपात में नियन्त्रित किया जाता है, जबकि गुणात्मक पहलू के अन्तर्गत जनसंख्या के गुणों (जैसे– स्वास्थ्य स्तर, जीवन प्रत्याशा, शिक्षा आदि) में वृद्धि

करने का प्रयास किया जाता है। भारत में जनसंख्या नीति प्रारम्भ स्वतन्त्रता के बाद से ही हो गया था परन्तु पूर्व में जनसंख्या को कोई समस्या नहीं मानने के कारण इस नीति पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना के समय जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने के कारण इस ओर अधिक ध्यान दिया गया। चौथी योजना में तो इस नीति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई जबकि पांचवी योजना में आपातकाल के समय 16 अप्रैल, 1976 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की गई। इसमें राज्य सरकारों को जनसंख्या नियन्त्रण हेतु 'अनिवार्य बन्ध्याकरण' का कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। इस अनिवार्यता के कारण सरकार का पतन हो गया तथा अगली सरकार ने 1977 में नई जनसंख्या नीति की घोषणा की जिसमें अनिवार्यता के स्थान पर स्वेच्छा के सिद्धान्त को महत्व प्रदान किया गया साथ ही 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' का नाम बदलकर 'परिवार कल्याण कार्यक्रम' कर दिया गया। इसके पश्चात् जून 1981 में भी सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में संशोधन किया।

नवीन जनसंख्या नीति : 2000 (NEW POPULATION POLICY: 2000)

केन्द्र सरकार ने 15 फरवरी, 2000 को नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। इस नीति में जनसंख्या के परिमाण को राष्ट्रीय साधनों के अनुरूप नियन्त्रित करने एवं जीवन–स्तर में गुणात्मक सुधार लाने के लिए तीन उद्देश्य निश्चित किये गये :

1. **तात्कालिक उद्देश्य (IMMEDIATE OBJECTIVES):** पर्याप्त मात्रा में गर्भ निरोधक उपायों का विस्तार करने के लिए स्वास्थ्य के बुनियादी ढ़ांचे का विकास करना।
2. **मध्यमकालीन उद्देश्य (MEDIUM-TERM OBJECTIVES):** कुल प्रजनन दर को सन् 2010 तक 2.1 के प्रतिस्थापन स्तर तक लाना।
3. **दीर्घकालीन उद्देश्य (LONG-TERM OBJECTIVES):** सन् 2045 तक जनसंख्या ऐसे स्तर पर स्थिर करना जो आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विस्तार तथा पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अनुकूल हो।

इस नीति में छोटे परिवार के प्रोत्साहन हेतु विभिन्न प्रेरक उपायों की घोषणा की गई, जिनमें प्रमुख हैं : छोटे परिवार को बढ़ावा देने वाली पंचायतों एवं जिला परिषदों को केन्द्र सरकार द्वारा पुरष्कृत करना, गरीबी रेखा से नीचे के उन परिवारों को 5000 रूपये की स्वास्थ्य बीमा की सुविधा देना जिनके केवल दो बच्चे हैं और उन्होने बन्ध्याकरण करवा लिया है, बाल–विवाह निरोधक अधिनियम तथा प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण तकनीकी निरोधक अधिनियम को कड़ाई से लागू किया जाना, गर्भपात सुविधा योजना को मजबूत करना, ग्रामीण क्षेत्रों में बन्ध्याकरण की सुविधा हेतु सहायता देना आदि। इसके साथ ही देश में राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग, राज्य जनसंख्या आयोग एवं योजना आयोग में समन्वय प्रकोष्ठ का गठन भी किया गया है।

3.9 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न 01 : भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 02 : भारत में साक्षरता अनुपात की विशेषताएं बताईये।

प्रश्न 03 : बहुविकल्पीय प्रश्न।

क. भारत में जनसंख्या घनत्व है :

(अ) 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी, (ब) 340 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी,
(स) 329 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी, (द) इनमें से कोई नहीं।

ख. भारत में सर्वाधिक लिंग अनुपात वाला राज्य है :

(अ) तमिलनाडु, (ब) केरल,

(स) आन्ध्र प्रदेश, (द) दिल्ली।

प्रश्न 04 : भारत में जनसंख्या वृद्धि के क्या कारण हैं ?

प्रश्न 05 : जनसंख्या नीति से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न 06 : निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताईये।

क. भारत में नवीन जनसंख्या नीति की घोषणा 15 फरवरी, 2000 को की गई।

ख. 1976 की जनसंख्या नीति में 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' का नाम बदलकर 'परिवार कल्याण कार्यक्रम' कर दिया गया।

3.10 सारांश (SUMMARY)

जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यदि देश में राष्ट्रीय साधन तथा जनसंख्या का एक उचित संयोग हो तो देश तीव्रता से आर्थिक विकास करता है। यदि इस संयोग में असन्तुलन आ जाये अर्थात् जनसंख्या, राष्ट्रीय साधनों की तुलना में तीव्र गति से बढ़े तो देश में विभिन्न प्रकार की सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ जन्म लेने लगती हैं। भारत आज इसी अवस्था में है। यहाँ विभिन्न योजनाओं के माध्यम से आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है, परन्तु 1.41 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ती जनसंख्या इन प्रयासों के सकारात्मक प्रभाव को समाप्त कर रही है। अतिशय जनसंख्या के कारण मनुष्य की मूलभूत सुविधाओं (भोजन, वस्त्र एवं आवास) की व्यवस्था सम्बन्धी समस्या, बेरोजगारी एवं प्रदूषण की समस्या, ऊर्जा–संकट, विद्युतीकरण का अभाव, मन्द विकास गति, कानून और व्यवस्था की समस्या, अति–नगरीकरण और नगरों की ओर पलायन की समस्या बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप भविष्य में भी अधिक जनंसख्या हेतु आवश्यक सुविधाओं की अनुपलब्धता, कृषि योग्य भूमि में कमी, आवश्यक जल संसाधनों में कमी, पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि, पर्याप्त रोजगार की अनुपलब्धता, गरीबी और विषमता में वृद्धि, उच्च प्रशिक्षित जनसंख्या की उपलब्धता में कमी, प्रति व्यक्ति आय में कमी, पर्याप्त विकास हेतु आवश्यक पूंजी निर्माण में कमी, आश्रितता–अनुपात में वृद्धि जैसी विभिन्न समस्याएँ आवश्यक रूप से उत्पन्न होगीं। देश में स्वतन्त्रता के बाद से ही जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं परन्तु इसमें अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी है। भारत में नवीन जनसंख्या नीति 2000 के द्वारा तात्कालिक, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्य बनाकर आर्थिक विकास हेतु आवश्यक स्थिर एवं गुणवान जनसंख्या प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

3.11 शब्दावली (GLOSSARY)

- **कार्यशील जनसंख्या (WORKING POPULATION):** कुल जनसंख्या में से बाल जनसंख्या (0–14 वर्ष) एवं वृद्ध जनसंख्या (65+ वर्ष) को घटा देने पर जो जनसंख्या शेष रहती है, उसे कार्यशील जनसंख्या अथवा उत्पादक जनसंख्या कहा जाता है।
- **जनसंख्या–विस्फोट (POPULATION EXPLOSION):** जनसंख्या–विस्फोट एक ऐसी स्थिति है जिसमें जनसंख्या अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ती है जिसे

थोड़े समय में नियन्त्रित नहीं जा सकता है। भारत में 70 के दशक में यह स्थिति व्याप्त थी।

3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर 01 : भारत की जनसंख्या चीन के पश्चात् विश्व में द्वितीय स्थान पर है और इसमें तेजी से वृद्धि हो रही है। सन् 1951 में देश की कुल जनसंख्या 36.11 करोड़ जो 2001 में बढ़कर 102.87 करोड़ हो गई। वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121. 02 करोड़ है जो विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत है। भारत की जनसंख्या 1.41 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है। सम्भावना है कि सन् 2030 में भारत चीन को पीछे छोड़कर विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा।

उत्तर 02 : भारत में साक्षरता अनुपात में निरन्तर वृद्धि हो रही है। वर्ष 1951 में यह अनुपात मात्र 18.3 प्रतिशत था जो वर्तमान में बढ़कर 74.04 प्रतिशत हो गया है। देश में पुरूष एवं महिला साक्षरता अनुपात वर्ष 2001 में क्रमशः 75.26 प्रतिशत एवं 53.67 प्रतिशत था जो 2011 में बढ़कर क्रमशः 82.14 प्रतिशत एवं 65.46 प्रतिशत हो गया है। भारत में सर्वाधिक साक्षरता अनुपात केरल (93.91 प्रतिशत) में है जबकि सबसे कम बिहार (63.82 प्रतिशत) में है।

उत्तर 03 : क. (अ) 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी।
ख. (ब) केरल ।

उत्तर 04 : भारत में जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारण हैं : जन्म दर का ऊँचा एवं मृत्यु दर का नीचा होने के साथ ही इनमें पर्याप्त अन्तर, युवा जनसंख्या की अधिकता, अशिक्षा, भाग्यवादिता, अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार प्रणाली, गर्म जलवायु, निर्धनता, निरोधक उपायों का सीमित प्रयोग, सामाजिक सुरक्षा का अभाव, स्त्रियों की खराब दशा, शरणार्थियों का विदेशों से आगमन आदि।

उत्तर 05 : जनसंख्या नीति के माध्यम से एक देश में जनसंख्या का नियोजन किया जाता है। इस नीति में जनसंख्या के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। परिमाणात्मक पहलु के अन्तर्गत जनसंख्या के आकार एवं संरचना को देश के राष्ट्रीय साधनों के अनुपात में नियन्त्रित किया जाता है, जबकि गुणात्मक पहलू के अन्तर्गत जनसंख्या के गुणों (जैसे– स्वास्थ्य स्तर, जीवन प्रत्याशा, शिक्षा आदि) में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है।

उत्तर 06 : (क) सत्य।
(ख) असत्य।

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Dhar, P.K. (2003): *Indian Economy : Its Growing Dimensions*, Kalyani Publishers, Ludhiana.
- Dutt, Rudra & Sundram, K.P.M. (2006): *Indian Economy*, S. Chand and Company Ltd., New Delhi.
- GOI : *Census of India, 2011*, Office of the Registrar General and Census Commissioner, India. (www.censusindia.gov.in).

- कुमार, वी. (2007) : *जनांकिकी,* साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लि. , आगरा।
- पन्त, जे.सी. (2006) : *जनांकिकी,* विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. 'भारतीय जनसंख्या में तीव्र वृद्धि देश की आर्थिक प्रगति में बाधक है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
2. भारत में जनसंख्या–विस्फोट की समस्या पर एक निबन्ध लिखिए।
3. भारत में जनसंख्या की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ? भारत की नवीन जनसंख्या नीति को स्पष्ट कीजिए।
4. 'आर्थिक विकास का प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।' विवेचना कीजिए।

इकाई 4 : प्राकृतिक संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था
(NATURAL RESOURCES AND INDIAN ECONOMY)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्राकृतिक संसाधनों का अर्थ एवं महत्व
4.4 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण
4.4.1 भूमि संसाधन
4.4.1.1 भारत में भूमि की उपलब्धता
4.4.1.2 भारत में भूमि का उपयोग
4.4.2 वन संसाधन
4.4.2.1 भारत में वन क्षेत्र
4.4.2.2 भारत में वनों का वर्गीकरण
4.4.2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का महत्व अथवा लाभ
4.4.3 जल संसाधन
4.4.3.1 भारत में जल संसाधनों के प्रकार एवं जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता
4.4.3.2 जल संसाधनों का महत्व
4.4.4 खनिज संसाधन
4.4.4.1 भारत के प्रमुख खनिज संसाधन
4.4.4.2 भारत में खनिज संसाधनों की क्षेत्रवार उपलब्धता
4.5 अभ्यास प्रश्न
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय में जनसंख्या की क्या विशेषताएं हैं ? मानवीय संसाधन एवं आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध होता है ?

प्राकृतिक संसाधन एक देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संसाधनों पर मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इनके महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की भारत में उपलब्धता, इनके उपयोग एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ✓ बता सकेंगे कि प्राकृतिक संसाधनों से क्या तात्पर्य है।
- ✓ बता सकेंगे कि विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की देश में क्या स्थिति है।
- ✓ समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था हेतु प्राकृतिक संसाधन क्यों महत्वपूर्ण हैं।

4.3 प्राकृतिक संसाधनों का अर्थ एवं महत्व ()

प्राकृतिक संसाधनों से तात्पर्य उन निशुल्क उपहारों से है जो प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदान किये गये हैं। प्राकृतिक साधनो में भूमि, मिट्टी, जल, वन, खनिज, समुद्री साधन, जलवायु, वर्षा आदि का समावेश किया जाता है। इन साधनों को मनुष्य अपने प्रयत्नों से उत्पन्न नहीं कर सकता। अन्य शब्दों में, प्राकृतिक संसाधन भौतिक पर्यावरण का वह भाग है जिन पर मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर रहता है।

प्राकृतिक संसाधन एक देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों की सामूहिक शक्ति ही देश की अर्थिक प्रगति को निर्धारित करती है। जो देश इन संसाधनों का उपयोग उचित प्रकार से करते हैं वे तीव्र गति से विकास करने में सफल होते हैं जबकि जिन देशों में विभिन्न कारणों से प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग नहीं हो पाता है, वे देश तेजी से उन्नति नहीं कर पाते हैं। स्पष्टतः प्राकृतिक संसाधन एक देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. **रिचार्ड टी0 गिल** का भी मानना है कि ***"प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास को सीमित करने या प्रोत्साहित करने में निर्णायक महत्व है। आर्थिक विकास के उच्च स्तर पर पहुँचे हुए अमेरिका व कनाडा आदि देश प्राकृतिक साधनों में भी सम्पन्न हैं।"*** वास्तव में, विश्व के जिन देशों में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, उन देशों में आर्थिक विकास की सम्भावनाएं अधिक तीव्र हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनों का प्रचुर मात्रा में पाया जाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित तकनीक एवं कुशल मानव शक्ति द्वारा उपयोग किया जाना भी आवश्यक है।

4.4 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण (CLASSIFICATIONS OF NATURAL RESOURCES)

भारत में बहु प्रकार के प्राकृतिक संसाधन पाये जाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :

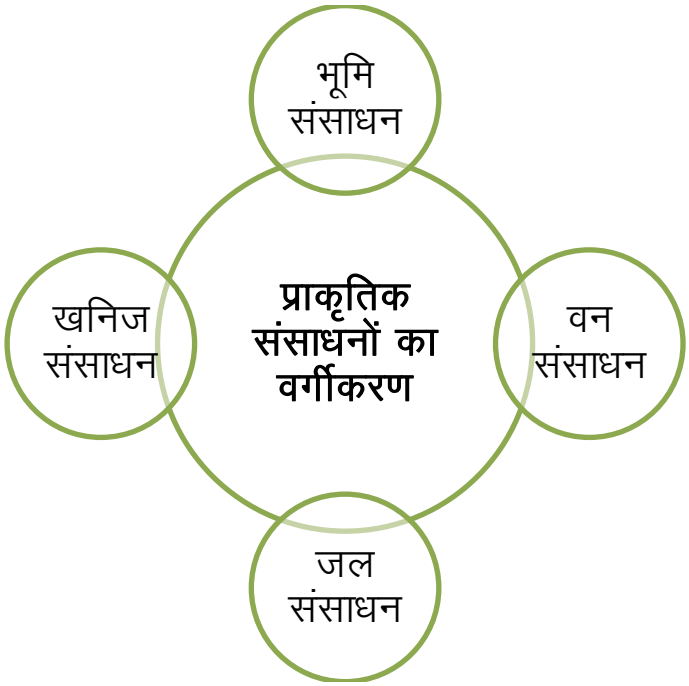

4.4.1 भूमि संसाधन (LAND RESOURCES)

प्राकृतिक संसाधनो में भूमि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य एवं समाज का सारा अस्तित्व और विकास इसी पर आश्रित है। देश की विभिन्न आर्थिक क्रियाएं भूमि पर ही संचालित की जाती हैं। एक देश में भूमि की उपलब्धता, उसकी भौगोलिक स्थिति एवं उसका उपयोग बहुत महत्व रखता है।

4.4.1.1 भारत में भूमि की उपलब्धता (AVAILABILITY OF LAND IN IN IN INDIA)

भूमि की उपलब्धता के दृष्टिकोण से भारत एक विशाल देश है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण 3,214 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम 2,933 किलोमीटर है। इसकी स्थल–सीमा की लम्बाई 15,200 किलोमीटर तथा समुद्र–तट की लम्बाई 6,100 किलोमीटर है। इसका कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्रफल सम्पूर्ण विश्व का 2.42 प्रतिशत है जबकि यहां विश्व की 17.5 प्रतिशत (121.02 करोड़) जनसंख्या निवास करती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है। भारत का भूमि क्षेत्रफल ब्रिटेन की तुलना में 13 गुना तथा जापान की तुलना में 8 गुना अधिक है। भारत से बड़े छः देश क्रमश : रूस, कनाडा, अमेरिका, चीन, ब्राजील और आस्ट्रेलिया हैं।

4.4.1.2 भारत में भूमि का उपयोग (LAND USES IN INDIA)

देश में भूमि के आकार के साथ ही भूमि की संरचना एवं उसका उपयोग भी महत्वपूर्ण होता है। भारत में कुल भैगोलिक क्षेत्रफल के 92.8 प्रतिशत भू–भाग के प्रयोग सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त होते हैं, शेष 7.2 प्रतिशत भू–भाग के विषय में कोई लिखित रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। भारत में 3,06.1 मिलियन हेक्टेअर भूमि

में से केवल 1,41.2 मिलियन हेक्टेअर भूमि पर ही खेती होती है जो कुल ज्ञात स्रोतों का लगभग 46 प्रतिशत है। 69.0 मिलियन हेक्टेअर भू–भाग पर वन सम्पदा।

भारत में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि 0.3 हेक्टेअर है जबकि यह आस्ट्रेलिया में 3 हेक्टेअर, कनाडा में 1.9 हेक्टेअर तथा अमेरिका में 0.8 हेक्टेअर है। भारत में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि कम होने को प्रमुख कारण यहां पर तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है। वर्तमान परिस्थितियों में भूमि की कम उपलब्धता एवं बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखकर अप्रयुक्त भूमि के उपयोग हेतु सिंचाई एवं नवीन तकनीक जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिये तथा साथ ही गैर–कृषि कार्यों (जैसे– सड़क, मकान, पार्क आदि) के लिए भूमि प्रयोग की संरचना में बदलाव लाया जाना चाहिये।

4.4.2 वन संसाधन (FOREST RESOURCES)

प्राकृतिक संसाधनों की श्रृंखला में वन संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। वन संसाधन एक राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति होते हैं जो इसके विकास को आगे बढ़ाने में योगदान करते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए तो यह संसाधन विशेष महत्व रखते हैं। वन संसाधनों के महत्व के सम्बन्ध में **श्री के0 एम0 मुन्शी** ने लिखा है कि *'वृक्षों का अर्थ है जल, जल का अर्थ है रोटी और रोटी से हम जीवित रहते हैं।'* **पं0 जवाहरलाल नेहरू** का कहना है कि *'एक उगता हुआ वृक्ष राष्ट्र की प्रगति का जीवित प्रतीक होता है।'* **भगवद्गीता** में भी लिखा है कि *'वृक्ष हम सब लोगों को जीवन प्रदान करते हैं, इसलिए वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए।'*

4.4.2.1 भारत में वन क्षेत्र (FOREST AREA IN INDIA)

भारत में वन क्षेत्रफल 6,77,088 वर्ग किलोमीटर है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 20.6 प्रतिशत है। यह विश्व के कुल वन क्षेत्रफल का 1.7 प्रतिशत बैठता है। देश में वनों का वितरण असमान है। यहां मध्यप्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में वनों का संकेन्द्रण है जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान जैसे राज्यों में इसका प्रतिशत बहुत कम है। भारत में सर्वाधिक वन क्षेत्र 76,013 वर्ग किमी मध्य प्रदेश में है। अरूणाचल प्रदेश का 67,777 वर्ग किमी के साथ दूसरा तथा छत्तीसगढ़ का 55,863 के साथ तीसरा स्थान है। यदि विश्व स्तर पर वन क्षेत्र की तुलना करें तो पायेंगे कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में वन क्षेत्रफल कम है। उदाहरण के लिए, भारत में वन क्षेत्रफल अपने कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 20.6 प्रतिशत है जबकि जापान में यह 64.4 प्रतिशत, स्वीडन में 55 प्रतिशत, रूस में 45.2 प्रतिशत तथा अमेरिका में 23 प्रतिशत है।

4.4.2.2 भारत में वनों का वर्गीकरण (CLASSIFICATION of FOREST IN INDIA)

भारत में वनों का वर्गीकरण दो आधार पर किया जाता है : प्रथम, सरकारी आधार पर एवं द्वितीय, प्रकृति के आधार पर।

(क) सरकारी आधार पर वनों का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF FORESTS ON THE BASIS OF GOVERNMENT): भारत में सरकारी आधार पर वनों को तीन श्रेणियों में बांटा जाता है :

(1) आरक्षित वन (RESERVED FOREST): यह वन सरकार की सम्पत्ति होते हैं जिनका उपयोग रेगिस्तान की रोकथाम, भूमि का कटाव रोकना, बाढ़ नियन्त्रण करना जैसे राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इन वनों का प्रयोग सरकार की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है। वर्तमान में भारत में 54 प्रतिशत वन आरक्षित वन की क्षेणी में हैं।

(2) संरक्षित वन (PROTECTED FORESTS): यह वन भी सरकार के अधीन होते हैं परन्तु सरकार द्वारा कुछ शर्तों के साथ इनके उपयोग का अधिकार खोल दिया जाता है। इस समय भारत में 29 प्रतिशत वन संरक्षित वन की क्षेणी में हैं।

(3) अवर्गीकृत वन (UNCLASSIFIED FORESTS): यह वन सामान्यतः व्यवस्थित प्रबन्ध के अन्तर्गत नहीं हैं। ऐसे वनों को सरकार कुछ शुल्क के साथ ठेकेदारों को लकड़ी काटकर बेचने, पशुओं को चराने आदि हेतु दे देती है। वर्तमान में भारत में 17 प्रतिशत वन अवर्गीकृत वन की क्षेणी में हैं।

(ख) प्रकृति के आधार पर वनों का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF FORESTS ON BASIS OF NATURE:): प्रकृति के आधार पर वन छः प्रकार के होते हैं :

(1) सदाबहार वन (EVERGREEN FORESTS): यह वन 200 सेमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसीलिए यह सदैव हरे–भरे रहते हैं और सदाबहार वन कहलाते हैं। इन वनों में मुख्य रूप से नारियल, रबड़, बांस, ताड़, चन्दन आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। भारत में यह वन कुल वन क्षेत्रफल के 12 प्रतिशत में फैले हुए हैं।

(2) मानसूनी वन (MONSOON FOREST): मानसूनी वन 100 सेमी. से 200 सेमी. तक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। भारत में यह वन कुल वन क्षेत्रफल के 80 प्रतिशत भाग में फैले हुए हैं जो अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इन वनों में साल–सागौन, आम, शीशम, चन्दन, सेलम आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

(3) पर्वतीय वन (MOUNTAIN FOREST): यह वन पहाड़ों पर पाये जाते हैं। भारत में यह वन मुख्यतः हिमालय के पहाड़ों पर पाये जाते हैं। इन वनों में औषधीय प्रयोग के वृक्ष अधिक होते हैं। इनमें ओक, मैगनेलिया तथा एल्पाइन के वृक्ष प्रमुख हैं।

(4) मरूस्थलीय वन (DESERT FOREST): मरूस्थलीय वन कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों में कांटेदार वृक्ष, बबूल, नीम, बेर, ताड़ आदि के वृक्ष प्रमुख हैं। यह वन मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क भाग, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में मिलते हैं।

(5) **नदी तट के वन (RIVER SIDE FORESTS):** यह वन नदियों के किनारों पर पाये जाते हैं। इन वनों में इमली, जामुन, शीशम, खेर आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

(6) **डेल्टाई वन (DELTAI FOREST):** यह वन ब्रह्मपुत्र, गंगा एवं गोदावरी नदियों के डेल्टाई क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां समुद्र का पानी ज्वार के समय आ जाता है। इन वनों में मुख्य रूप से जलाने वाले लकड़ी के वृक्ष होते हैं।

4.4.2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का महत्व अथवा लाभ (THE IMPORTANCE OR BENEFITS OF FORESTS IN INDIAN ECONOMY)

भारत में प्राप्त होने वाले वन अर्थव्यवस्था के लिए अति महत्वपूर्ण एवं लाभदायक हैं। इन वनों के विभिन्न लाभों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(1) वनों के प्रत्यक्ष लाभ (DIRECT BENEFITS OF FORESTS)

1. वन बहुमूल्य लकड़ियों के भण्डार हैं। इनसे हमें ईधन के लिए आवश्यक लकड़ी भी प्राप्त होती है।
2. वन कागज, दियासलाई, कत्था आदि उद्योगों हेतु कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं।
3. वनों से सहायक उत्पादन के रूप में रबड़, तारपीन, गोंद, चन्दन, औषधियाँ, लाख आदि प्राप्त होती हैं।
4. सरकार को वनों से राजस्व प्राप्त होता है जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
5. वनों से रोजगार एवं निर्यात में वृद्धि होती है जिससे विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है।
6. वनों से कृषि हेतु खाद एवं पशुओं हेतु चारा प्राप्त होता है।
7. पशु–पक्षी विहार के लिए अनुकूल स्थान उपलब्ध होता है।

(2) वनों के अप्रत्यक्ष लाभ (INDIRECT BENEFITS OF FORESTS)

1. वन मिट्टी का कटाव एवं तेज हवाओं के वेग को रोकने में सहायक होते हैं।
2. वन वर्षा में सहायक होते हैं। यह हवा में नमीं भी पहुंचाते हैं।
3. वन भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करते हैं।
4. वन बाढ़ नियन्त्रण में सहायक होते हैं।
5. वन जलवायु को शुद्ध रखते हैं एवं मानव जीवन की रक्षा करते हैं।
6. वन पर्यावरण प्रदूषण को सन्तुलित बनाने में भी उपयोगी हैं।
7. वन रेगिस्तान के प्रसार को रोकते हैं।
8. वनों से प्राकृतिक सौन्दर्य में विस्तार होता है।

4.4.3 जल संसाधन (WATER RESOURCES)

जल ही जीवन है। जल के बिना मानव, जीव–जन्तु, वनस्पति आदि के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव जीवन के साथ ही अर्थव्यवस्था के विभिन्न

क्षेत्र जल संसाधन पर ही निर्भर करते हैं। देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से जल संसाधन अति महत्वपूर्ण होते हैं। भारत में भी जल संसाधन सर्वाधिक महत्व का प्राकृतिक संसाधन है। 32,87,263 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाला विशाल देश भारत जल संसाधन की दृष्टि से भी धनी देश है। भारत में विश्व के धरातलीय क्षेत्र का लगभग 2.42 प्रतिशत, जल संसाधन का 4 प्रतिशत एवं जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत है। जल संसाधनों की दृष्टि से भारत का कनाडा एवं अमेरिका के बाद विश्व में तीसरा स्थान है।

4.4.3.1 भारत में जल संसाधनों के प्रकार एवं जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता (TYPES OF WATER RESOURCES AND PER CAPITA AVAILABILITY OF WATER IN INDIA)

जल संसाधन के प्रकार (TYPES OF WATER RESOURCES): भारत में जल संसाधन के दो प्रकार हैं :

(1) **भूगर्भ जल संसाधन (GROUND WATER RESOURCES):** यह वह जल है जो भूमि के गर्भ में होता है। यह वर्षा एवं नदी–नालों के द्वारा रिसकर जमीन के अन्दर पहुंच जाता है। इस जल को कुओं, ट्यूबवैलों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में वर्षा अथवा नदियों का पानी नहीं पहुंच पाता है, वहां यह जल बहुत उपयोगी होता है।

(2) **सतही जल संसाधन (SURFACE WATER RESOURCES):** यह वह जल है जो भूमि की सतह पर पाया जाता है। वर्षा का पानी जब नदियों से प्रवाहित होता है और झीलों तथा जलाशयों में एकत्र होता है तो उसे सतही जल संसाधन कहा जाता है।

(3) **जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता (PER CAPITA AVAILABILITY OF WATER):** पृथ्वी की सतह का 70 प्रतिशत भाग जलमग्न है परन्तु इसमें से मानव के उपयोग के योग्य जल मात्र 2.5 प्रतिशत ही है। शेष बचा हुआ 97.5 प्रतिशत जल लवणीय (खारा) है जिसका उपयोग मनुष्य द्वारा निजी कार्य अथवा कृषि हेतु नहीं किया जा सकता है। मानवीय उपयोग हेतु उपलब्ध 2.5 प्रतिशत में से भी 1 प्रतिशत बर्फीले स्थानों पर जमा हुआ है और 0.5 प्रतिशत भूमि में नमी के रूप में तथा गहरे जलाशयों में है, जिसका उपयोग विशेष तकनीक के अभाव में सम्भव नहीं है। इस प्रकार, पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का मात्र 1 प्रतिशत ही मानव के उपयोग हेतु उपलब्ध है।

भारत में भूगर्भ एवं सतही जल के समृद्ध भंडार हैं परन्तु जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण यहां प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता धीरे–धीरे कम होती जा रही है। जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 1901 में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 8,192 घनमीटर थी जो वर्ष 2001 में घटकर 1,869 घनमीटर रह गई है। इसके वर्ष 2025 में घटकर 1,465 घनमीटर तथा वर्ष 2050 में 1,235 घनमीटर रह जाने की सम्भावना है।

4.4.3.2 जल संसाधनों का महत्व (IMPORTANCE OF WATER RESOURCES)

भारत के आर्थिक व सामाजिक विकास में जल संसाधन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। मानव जीवन, कृषि, उद्योग, जहाजरानी आदि क्षेत्रों में भी जल संसाधनों का विशेष महत्व है। जल संसाधन के महत्व को समझते हुए भारत सरकार के जल संसाधन विकास मंत्रालय ने अपने ई–मैसेज में लिखा है कि भारत में प्राकृतिक संसाधनों प्रचुर एवं विविधपूर्ण भंडार है और जल भी उसमें से एक है। इसका विकास एवं प्रबन्धन कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गरीबी में कमी, पर्यावरणीय और निरन्तर आर्थिक विकास के लिए जल प्रबन्धन महत्पूर्ण है। जल संसाधनों के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा बताया जा सकता है :

1. **कृषि में महत्व (IMPORTANCE IN AGRICULTURE):** भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जल संसाधन बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहां की लगभग 64 प्रतिशत आबादी रोजगार हेतु प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि के उत्पादन हेतु जल संसाधनों का होना अति आवश्यक है। परन्तु यहां मानसून निश्चित नहीं हैं। देश में प्रायः सूखा अथवा बाढ़ आने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसे में जल का उचित प्रबन्धन एवं जल के अन्य स्रोतों का विकास किया जाना आवश्यक है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि सम्भव हो सके।
2. **हरित क्रान्ति में महत्व (IMPORTANCE IN GREEN REVOLUTION):** हरित क्रान्ति के अन्तर्गत विभिन्न फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कृषि में यन्त्रीकरण, गहन खेती, बहु–फसली खेती आदि को अपनाया जाता हैं। इन सभी प्रयासों की सफलता हेतु सिंचाई के लिए जल साधनों का समुचित विकास किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि हरित क्रान्ति की सफलता हेतु जल संसाधन महत्वपूर्ण हैं।
3. **शक्ति के क्षेत्र में महत्व (IMPORTANCE IN THE FIELD OF POWER):** वर्तमान दौर में विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने एवं विभिन्न आधुनिक सुविधाओं का उपभोग करने हेतु शक्ति की आवश्यक होती है। जल एक ऐसा संसाधन है जिसक उपयोग शक्ति के उत्पादन में भी किया जाता है। जल द्वारा शक्ति का उत्पादन करना अन्य शक्ति उत्पादन स्रोतों की तुलना में अधिक सस्ता होता है। भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही नदियों पर बड़े–बड़े बाँध (बहुउद्देशीय नदी परियोजनाएं) बनाकर शक्ति का उत्पादन किया जाता है।
4. **उद्योगों के लिए महत्व (IMPORTANCE FOR INDUSTRIES):** जल–विद्युत शक्ति के उपलब्ध हो जाने से शक्ति–चालित आधुनिक मशीनों, उपकरणों एवं यन्त्रों का प्रयोग सम्भव हुआ है। इससे कुटीर, लघु, एवं वृहद उद्योगों का तेजी से विकास करना सम्भव हुआ है। साथ ही कम समय और लागत में जल–विद्युत शक्ति को हजारों किलोमीटर

दूर भेज सकना सम्भव होने के कारण उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिला है।

5. **आन्तरिक जल परिवहन का विकास (DEVELOPMENT OF INTERNAL WATER TRANSPORT):** आन्तरिक जल परिवहन के क्षेत्र में भी जल संसाधन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस संसाधन के कारण ही देश में जल परिवहन की सुविधाओं का विस्तार सम्भव होता है जिससे आन्तरिक जल परिवहन का विकास होता है।
6. **रोजगार के क्षेत्र में महत्व (IMPORTANCE IN THE FIELD OF EMPLOYMENT):** जल संसाधन के कारण देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। जल संसाधन के उचित प्रबन्धन से कृषि उत्पादन बढ़ता है एवं उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल प्राप्त होता है जिससे उद्योग भी विकास करते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।

4.4.4 खनिज संसाधन (MINERAL RESOURCES)

एक देश के आर्थिक विकास हेतु खनिज संसाधन बहुत महत्व रखते हैं। इसके महत्व को दृष्टिगत करते हुए खनिज संसाधनों को आधुनिक सभ्यता के विकास का आधार माना जाता है। खनिज संसाधन विभिन्न उद्योगों का आधार हैं साथ ही यह शक्ति में वृद्धि एवं सुरक्षा में सहायता करते हैं। मनुष्यों को प्राप्त होने वाली विभिन्न वस्तुओं में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से खनिज संसाधनों का ही उपयोग किया जाता है। भारत के भू–गर्भ में तो खनिज पदार्थों का बाहुल्य है। विश्व में अभ्रक के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है जबकि मैंगनीज में यह विश्व में तीसरे स्थान पर है।
भारत में उपलब्ध विभिन्न खनिज पदार्थों को इनकी पूर्ति के आधार पर तीन वर्गों में बांट सकते हैं :

1. **पर्याप्त पूर्ति वाले खनिज जिनका निर्यात भी किया जाता है** जैसे– अभ्रक, मैंगनीज, कच्चा लोहा, मैगनेसाइट आदि।
2. **खनिज जिनमें भारत आत्मनिर्भर है** जैसे– कोयला, जिप्सम, लाइमस्टोन, लिग्नाइट, बॉक्साइट, क्रोमाइट आदि।
3. **अपर्याप्त पूर्ति वाले खनिज जिनका आयात किया जाता है** जैसे– खनिज तेल, सीसा, तांबा, जस्ता, गंधक, निकिल, पारा आदि।

4.4.4.1 भारत के प्रमुख खनिज संसाधन (MAJOR MINERAL RESOURCES OF INDIA)

भारत में अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं। यहां कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों का उल्लेख किया जा रहा है :

1. **अभ्रक (MICA):** अभ्रक के उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। यहां पर सम्पूर्ण विश्व के 60 प्रतिशत अभ्रक का उत्पादन किया जाता है। इस खनिज का उपयोग बिजली उद्योग में, रेडियो एवं वायरलैस के निर्माण में तथा मोटर एवं इन्जीनियरिंग के लिए किया जाता है। भारत में उत्पादित होने वाले अभ्रक में सर्वाधिक योगदान झारखण्ड राज्य का है।

2. **मैंगनीज (MANGANESE):** मैंगनीज के उत्पादन में भारत के विश्व में तृतीय स्थान है। यह एक खनिज धातु है जिसे लोहे में मिलाकर इस्पात तैयार किया जाता है। ड्राई बैटरी, ब्लीचिंग पाउडर, फर्श के टाइल, रासायनिक पदार्थ, रेल के डिब्बे, वायुयान, पानी के जहाज आदि बनाने में इसका उपयोग होता है। मैंगनीज की अधिकांश खानें मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक में हैं।
3. **लोहा (IRON):** एक देश के औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास के लिए लोहा अति महत्वपूर्ण है। भवनों, मशीनों एवं बांधों के निर्माण, परिवहन साधनों के साथ विभिन्न कार्यों में लोहे का उपयोग किया जाता है। भारत में यह मुख्यतः उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र आदि राज्यों में पाया जाता है।
4. **कोयला (COAL):** कोयला शक्ति का एक प्रमुख साधन है। इसके उत्पादन में भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। वर्तमान में भारत में 264.54 अरब टन कोयले के भंडार है। देश में इसका उपयोग उद्योगों, बिजली, रेल के ईधन आदि के रूप में किया जाता है। झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में कोयले के भंडार प्रमुख रूप से केन्द्रित हैं।
5. **तांबा (COPPER):** तांबा एक ऐसी धातु है जो प्राचीन काल से ही उपयोगी है। प्राचीन काल मे इसका उपयोग बर्तन सिक्के बनाने में किया जाता था जबकि आधुनिक समय में तांबे का उपयोग टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजनन, मोटर, जनरेटर, बिजली के तार, बल्ब का साकेट आदि बनाने में किया जाता है। भारत में तांबे के भंडार मुख्यतः राजस्थान, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश में हैं।
6. **पेट्रोलियम (PETROLEUM):** वर्तमान वैज्ञानिक युग में पेट्रोलियम पदार्थ बहुत महत्वपूर्ण हैं। उद्योगों, परिवहन के साधनों आदि में इसकी उपलब्धता परम आवश्यक है। भारत में यह असम, गुजरात, नहरकटिया, खम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, कच्छ, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाया जाता है।

4.4.4.2 भारत में खनिज संसाधनों की क्षेत्रवार उपलब्धता (REGION WISE AVAILABILITY OF MINERAL RESOURCES IN INDIA)

भारत में खनिज पदार्थ बहुतायत मात्रा में हैं परन्तु यह सभी स्थानों पर एक समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं। झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ आदि खनिज पदार्थों की दृष्टि से बाहुल्यता वाले राज्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण राज्य आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार, तमिलनाडु एवं गुजरात हैं। बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, एवं पश्चिम बंगाल में लोहा, कोयला, अभ्रक, तांबा, बॉक्साइट, मैंगनीज तथा क्रोमाइट; मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र में कोयला, लोहा, मैंगनीज, बॉक्साइट तथा चूना पत्थर; कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में सोना, लोहा, मैंगनीज, क्रोमाइट तथा तांबा और राजस्थान एवं गुजरात में पेट्रोलियम, अभ्रक, मैंगनीज आदि पाये जाते हैं।

4.5 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न 01 : प्राकृतिक संसाधनों से क्या आशय है ?

प्रश्न 02 : वनों के प्रत्यक्ष लाभों को संक्षेप में लिखिए।

प्रश्न 03 : बहुविकल्पीय प्रश्न।

क. क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में स्थान है :

(अ) पहला, (ब) दूसरा,

(स) पांचवा, (द) सातवां।

ख. भारत में सर्वाधिक वन क्षेत्र किस राज्य में है :

(अ) अरूणाचल प्रदेश, (ब) मध्य प्रदेश,

(स) उत्तर प्रदेश, (द) इनमें से कोई नहीं ।

प्रश्न 04 : भारत में जल की उपलब्धता के बारे में बताईये।

प्रश्न 05 : भारत में कौन–कौन से खनिज पाये जाते हैं ?

प्रश्न 06 : रिक्त स्थान भरिए।

(क) पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का मात्र ..... प्रतिशत ही मानव के उपयोग हेतु उपलब्ध है।

(ख) ..... के उत्पादन में भारत का विश्व में एकाधिकार है।

4.6 सारांश (SUMMARY)

प्राकृतिक संसाधन, जो प्रकृति द्वारा मनुष्यों को निशुल्क प्राप्त होते हैं, एक देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संसाधनों की उपलब्धता ही देश की प्रगति को निर्धारित करती है। जो देश अच्छी तकनीक एवं कुशल मानव शक्ति के सहयोग से प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग करते हैं वे तीव्र गति से विकास करने में सफल होते हैं और जिन देशों में प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग नहीं हो पाता है, वे तेजी उन्नति नहीं कर पाते हैं। भारत में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन पाये जाते हैं जैसे– भूमि संसाधन, वन संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन आदि। यह संसाधन कृषि कार्यों, सड़क, मकान, पार्क आदि के निर्माण में, विभिन्न उद्योगों में, औषधियों में, खाद एवं पशुओं के चारे में, बाढ़ नियन्त्रण में, मानव जीवन की रक्षा में, पर्यावरण प्रदूषण के सन्तुलन आदि में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि प्राकृतिक संसाधन भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

4.7 शब्दावली (GLOSSARY)

- **हरित क्रान्ति (GREEN REVOLUTION):** कृषि क्षेत्र में उत्पादन तकनीक एवं आगतों मे किये गये परिवर्तन के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में होने वाली वृद्धि को हरित क्रान्ति कहा जाता है।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर 01 : प्राकृतिक संसाधनों से तात्पर्य उन निशुल्क उपहारों से है जो प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदान किये गये हैं। मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन संसाधनों पर निर्भर रहता है। इनमें भूमि, मिट्टी, जल, वन, खनिज, समुद्री साधन,

जलवायु, वर्षा आदि का समावेश किया जाता है। इन साधनों को मनुष्य अपने प्रयत्नों से उत्पन्न नहीं कर सकता।

उत्तर 02 : वनों के प्रत्यक्ष लाभ हैं : वन से मनुष्यों को बहुमूल्य लकड़ियां; ईधन हेतु लकड़ी; कागज, दियासलाई, कत्था आदि उद्योगों हेतु कच्चा माल; सहायक उत्पादन के रूप में रबड़, तारपीन, गोंद, चन्दन, औषधियाँ, लाख आदि प्राप्त होते हैं। सरकार को वनों से राजस्व प्राप्त होता है जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। वनों से रोजगार एवं निर्यात में वृद्धि होती है जिससे विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है। वनों से कृषि हेतु खाद, पशुओं हेतु चारा तथा पशु–पक्षी विहार के लिए अनुकूल स्थान उपलब्ध होता है।

उत्तर 03 : क. (द) सातवां।
ख. (ब) मध्य प्रदेश ।

उत्तर 04 : भारत में जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता धीरे–धीरे कम होती जा रही है। जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 1901 में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 8,192 घनमीटर थी जो वर्ष 2001 में घटकर 1,869 घनमीटर रह गई है। इसके वर्ष 2025 में घटकर 1,465 घनमीटर तथा वर्ष 2050 में 1,235 घनमीटर रह जाने की सम्भावना है।

उत्तर 05 : भारत में विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। इनमें अभ्रक, मैंगनीज, कच्चा लोहा, मैगनेसाइट, कोयला, जिप्सम, लाइमस्टोन, लिग्नाइट, बॉक्साइट, क्रोमाइट आदि प्रमुख हैं।

उत्तर 06 : (क) एक।
(ख) अभ्रक।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- Fisher, J.I. (1964) : *The Role of Natural Resources in Economic Development : Principles and Patterns*, Eds. H. F. Williamson & J. A. Buttrick.
- Ministry of Environment and Forest, Government of India
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006) : *भारतीय अर्थव्यवस्था,* एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- *आर्थिक समीक्षा 2010–11,* भारत सरकार।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारत के आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों के महत्व की विवेचना कीजिए।
2. वनों के क्या लाभ हैं ? भारत में वनों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
3. 'भारत में जल संसाधन' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।
4. 'खनिज संसाधन आधुनिक सभ्यता के विकास का आधार हैं।' व्याख्या कीजिए।

इकाई 5 : अधो–संरचना और भारतीय अर्थव्यवस्था
(INFRASTRUCTURE AND INDIAN ECONOMY)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अधो–संरचना (अथवा आधारभूत संरचना) का अर्थ एवं महत्व
5.4 अधो–संरचना के प्रकार
5.5 आर्थिक अधो–संरचना के संघटक
5.5.1 शक्ति संसाधन
5.5.1.1 परम्परागत साधन
5.5.1.2 गैर–परम्परागत साधन
5.5.2 परिवहन संसाधन
5.5.2.1 सड़क परिवहन
5.5.2.2 रेल परिवहन
5.5.2.3 जल परिवहन
5.5.2.4 वायु परिवहन
5.5.3 संचार संसाधन
5.5.3.1 डाक सेवा
5.5.3.2 दूरसंचार सेवा
5.5.3.3 इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड सेवा
5.6 सामाजिक अधो–संरचना के संघटक
5.6.1 शिक्षा
5.6.2 स्वास्थ्य
5.6.3 आवास
5.7 अभ्यास प्रश्न
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पांचवीं इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों से क्या तात्पर्य है ?, देश में प्राकृतिक संसाधनों की क्या स्थिति है ? तथा, अर्थव्यवस्था के विकास हेतु प्राकृतिक संसाधन क्यों महत्वपूर्ण हैं ?

अधो–संरचना देश के विकास की धुरी होती है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत इकाई में अधो–संरचना, इसके प्रकार एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में अधो–संरचना की स्थिति एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ✓ बता सकेंगे कि अधो–संरचना क्या है।
- ✓ बता सकेंगे कि अधो–संरचना के प्रकार क्या हैं।
- ✓ बता सकेंगे कि आर्थिक एवं सामाजिक अधो–संरचना की देश में क्या स्थिति है।
- ✓ समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु अधो–संरचना क्यों महत्वपूर्ण हैं।

5.3 अधो–संरचना (अथवा आधारभूत संरचना) का अर्थ एवं महत्व MEANING AND IMPORTANCE OF INFRASTRUCTURE

एक देश की प्रगति उसकी उपरि–संरचना (Super-structure) अर्थात् कृषि एवं उद्योग के विकास पर निर्भर करती है। कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के विकास के लिए ऊर्जा, परिवहन, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि आधारभूत साधनों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। उपरि–संरचना के विकास में काम आने वाले इन साधनों को ही अधो–संरचना अथवा आधारभूत संरचना (Infra-structure) के अन्तर्गत रखा जाता है।

अधो–संरचना एक देश के विकास की पूर्व–शर्त होती है। जिस देश की अधो–संरचना जितनी सुदृढ़ होती है वह देश उतनी ही तेजी से विकास करने में सफल होता है। **विश्व विकास रिपोर्ट** के अनुसार, '***अधो–संरचना की पर्याप्तता एक देश की विभिन्न उत्पादन, विस्तृत व्यापार, जनसंख्या वृद्धि को हल करना, गरीबी दूर करना और वातावरणीय स्थितियों को सुधारने में असफलता के साथ, दूसरे देश की सफलता को निर्धारित करने में सहायता करती है।***' स्पष्ट है कि एक देश के विकास की दृष्टि से अधो–संरचना की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है।

5.4 अधो–संरचना के प्रकार (TYPES OF INFRASTRUCTURE)

अधो–संरचना को दो भागों में बांटा जा सकता है, प्रथम, आर्थिक अधो–संरचना एवं द्वितीय, सामाजिक अधो–संरचना।

1. **आर्थिक अधो–संरचना (ECONOMIC INFRASTRUCTURE) :** आर्थिक अधो–संरचना से तात्पर्य उस ढ़ांचे से है जो कृषि, उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र को

विभिन्न प्रकार से सहायता देते हैं। जैस– शक्ति संसाधन (कोयला, विद्युत, पेट्रोलियम), परिवहन संसाधन (सड़क, रेल, जल, वायु परिवहन), संचार संसाधन (डाक, दूरसंचार, मोबाइल, फैक्स सेवा) आदि।

2. **सामाजिक अधो–संरचना (SOCIAL NFRASTRUCTURE) :** सामाजिक अधो–संरचना के अन्तर्गत वे सभी घटक आते हैं जो मानवीय पूंजी निर्माण में सहायक होते हैं। जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि।

अधो–संरचना के प्रकारों को निम्नलिखित चित्र द्वारा भी दर्शाया जा सकता है :

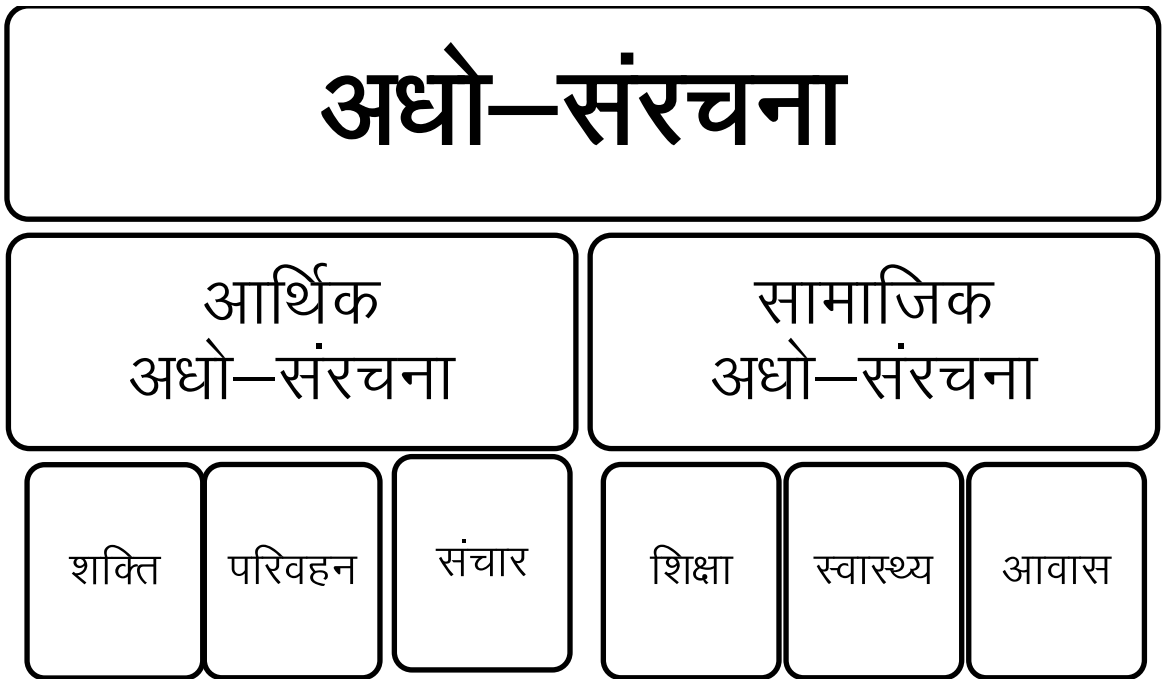

5.5 आर्थिक अधो–संरचना के संघटक (COMPONENT OF ECONOMIC infrastructure)

शक्ति संसाधन, परिवहन संसाधन एवं संचार संसाधन आर्थिक अधो–संरचना के तीन महत्वपूर्ण संघटक हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

5.5.1 शक्ति संसाधन (POWER RESOURCES)

वर्तमान आधुनिक युग में शक्ति के संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी पर्याप्त उपलब्धता देश के विकास की गति को तीव्र करती है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों में इन संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। इन सभी कारणों से प्रत्येक देश अपनी योजनाओं में शक्ति संसाधनों को विशेष महत्व देते हैं। शक्ति के संसाधनों को दो भागों में बांटा जा सकता है : प्रथम, परम्परागत साधन एवं द्वितीय, गैर–परम्परागत साधन।

5.5.1.1 परम्परागत साधन (CONVENTIONAL MEANS)

1. **कोयला (COAL):** कोयला अति महत्वपूर्ण शक्ति संसाधन है। प्राचीन समय से ही कोयला को ईधन के रूप में प्रमुखता प्राप्त है। इसका उपयोग कारखाने,

रेल इन्जन आदि चलाने में किया जाता है। कोयले से बिजली के सामान तथा कोलतार भी बनाया जाता है। इससे प्राप्त बेंजाल, नेफ्था जैसे रासायनिक पदार्थों से रासायनिक उद्योग चलाये जाते हैं। भारत में कोयले के विशाल भण्डार विद्यमान हैं और इसके उत्पादन में विश्व में भारत का चीन और अमेरिका के बाद तीसरा स्थान है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि भारत वर्तमान दर पर ही कोयले का उत्पादन करता रहा तो वह खानों से एक हजार वर्षों तक कोयला प्राप्त कर सकता है। भारत में कोयला उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा आदि हैं। भारत में कोयले का उत्पादन 1950–51 में 323 लाख टन, 1990–91 में 2,255 लाख टन तथा 2008–09 में 4,933 लाख टन रहा। अप्रैल–नवम्बर, 2010 के दौरान कच्चे कोयले का उत्पादन 319.80 मिलियन टन था। 2009–10 के दौरान भारत में कोयले का आयात और निर्यात क्रमशः 67.744 मी. टन और 2171 मी. टन था।

2. **विद्युत (ELECTRICITY):** विद्युत शक्ति का सर्वाधिक गतिशील साधन है। यह कृषि, उद्योग तथा शहरी–ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। आधुनिक युग में अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता पड़ती है। भारत में **विद्युत का उत्पादन** सन् **1900** में प्रारम्भ हुआ जबकि पहला **पन–बिजलीघर** कर्नाटक राज्य के **शिवसमुद्रम** नामक स्थान पर बनाया गया। देश में पंचवर्षीय योजनाओं में विद्युत उत्पादन क्षमता एवं वास्तविक उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है। भारत में विद्युत उत्पादन 1950–51 में 5 बिलियन किलोवाट से बढ़कर 2009–10 में 771.5 बिलियन किलोवाट हो गया है। ग्रामीण विद्युतीकरण की बात करें तो राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के अन्तर्गत 30 नवम्बर 2010 तक देश के 87,791 गांवों में बिजली दी गई और गरीबी रेखा से नीचे के 135.31 लाख परिवारों को कनेक्शन दिए गए हैं। विद्युत के विभिन्न स्रोत हैं जैसे– ताप विद्युत, जल विद्युत तथा आण्विक विद्युत। भारत में कुल विद्युत उत्पादन का 26 प्रतिशत जल विद्युत द्वारा, 71 प्रतिशत ताप विद्युत द्वारा तथा 3 प्रतिशत आण्विक विद्युत द्वारा उत्पादित किया जाता है। देश में कुल विद्युत उत्पादन का 37.6 प्रतिशत उद्योगों में, 21.7 प्रतिशत कृषि में तथा 24.4 प्रतिशत घरेलू क्षेत्र में उपयोग किया जाता है।

3. **खनिज तेल या पेट्रोलियम (MINERAL OIL OR PETROLEUM):** खनिज तेल अथवा पेट्रोलियम आधुनिक समय में बहुत महत्वपूर्ण संसाधन है। उद्योगों, परिवहन के साधनों आदि में इसकी उपलब्धता परम आवश्यक है। भूगर्भ से प्राप्त खनिज तेल का रिफाइनरी में शोधन किया जाता है जिससे पेट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल, चिकनाई वाले पदार्थ प्राप्त होते हैं। भारत में खनिज तेल मुख्यतः असम, त्रिपुरा, मणिपुर, गुजरात, नहरकटिया, खम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, कच्छ, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाया जाता है। देश में खनिज तेल अथवा पेट्रोलियम का उत्पादन एवं तेल शोधन क्षमता में वृद्धि हो रही है। चालू वित्तीय वर्ष के दौरान (2010–11) कच्चे तेल के उत्पादन का अनुमान 37.96 मिलियन मीट्रिक टन लगाया गया है जो 2009–10 के दौरान कच्चे तेल के 33.69 मि. मी. टन उत्पादन की अपेक्षा

12.67 प्रतिशत अधिक है। यहां घरेलू तेल शोधन क्षमता 2009–10 में 177.97 मिलियन मीट्रिक टन थी। इसके 1 अप्रैल, 2011 तक बढ़कर 185.40 एमएमटी तथा 2011–12 के अन्त तक 238.96 एमएमटी हो जाने की सम्भावना है। वर्तमान में भारत में 19 तेल शोधक कारखाने हैं। उल्लेखनीय है कि देश में उत्पादित खनिज तेल से यहां की केवल 30 प्रतिशत आवश्यकता ही पूरी हो पाती है, शेष 70 प्रतिशत खनिज तेल का विदेशों से आयात किया जाता है।

5.5.1.2 गैर–परम्परागत साधन (NON-CONVENTIONAL MEANS)

1. **परमाणु शक्ति (NUCLEAR POWER):** आधुनिक युग में परमाणु शक्ति ने विकास की गति को तेज करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में परमाणु शक्ति के विकास एवं प्रोत्साहन का श्रेय **डॉ. होमी जहाँगीर भाभा** (Dr. Homi Jehangir Bhabha) को है जिनके प्रयासों से फलस्वरूप **1945** में **'टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान'** (Tata Institute of Fundamental Research) की स्थापना की गई। डॉ. भाभा की मृत्यु के पश्चात् इस संस्थान का नाम 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र' कर दिया गया। आज देश में कई परमाणु विद्युत केन्द्र हैं जैसे तारापुर परमाणु केन्द्र (महाराष्ट्र), रावतभाटा परमाणु शक्ति केन्द्र (राजस्थान), कल्पक्कम परमाणु केन्द्र (तमिलनाडु), नरौरा परमाणु शक्ति केन्द्र (उत्तर प्रदेश), काकरपार परमाणु शक्ति केन्द्र (गुजरात), कैगा परमाणु केन्द्र (कर्नाटक)।
2. **सौर ऊर्जा (SOLAR ENERGY):** सौर ऊर्जा शक्ति का एक ऐसा साधन है जो कभी समाप्त नहीं होगा। इसमें सूर्य की गर्मी को रोककर उसे शक्ति के रूप में लाया जाता है। इससे प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 20 मेगावाट सौर बिजली का उत्पादन किया जा सकता है। भारत में **प्रथम** सौर ऊर्जा बिजलीघर लद्दाख के **छोंग्लेश्वर** नामक गांव में स्थापित किया गया है जिससे 20 शैय्या वाले एक अस्पताल तथा एक बड़े किचन को बिजली दी जाती है। सौर ऊर्जा को दो माध्यमों से प्रयोग में लाया जाता है–सौर तापीय माध्यम एवं सौर फोटोवोल्टेइक माध्यम। देश में अनुसंधान एवं विकास के आधार पर सैलों और पैनलों के निर्माण के लिए प्रौद्योगिकी का विकास एवं व्यवसायीकरण किया गया है।
3. **पवन ऊर्जा (WIND POWER):** वायु को भी शक्ति के रूप में उपयोग में लाया जाता है। भारत में 45,000 मेगावाट पवन ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता है परन्तु अभी तक 14,775 मेगावाट का ही उपयोग किया गया है। पवन ऊर्जा उत्पन्न करने वाले देशों में विश्व में भारत का जर्मनी, अमेरिका एवं स्पेन के बाद चौथा स्थान है।

5.5.2 परिवहन संसाधन (TRANSPORTATION RESOURCES):

परिवहन संसाधनों से आशय आवागमन के सस्ते एवं सुगम साधनों से है। किसी भी देश के आर्थिक विकास में परिवहन के साधनों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इससे कृषि का विकास होता है, नये उद्योग स्थपित होते हैं, व्यापार का विस्तार होता है,

मूल्यों में स्थिरता आती है तथा सरकार की आय भी बढ़ती है। परिवहन संसाधनों को चार भागों में बांटा जा सकता है : सड़क परिवहन, रेल परिवहन, जल परिवहन तथा वायु परिवहन।

5.5.2.1 सड़क परिवहन (ROAD TRANSPORTATION):

सड़कें परिवहन प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग हैं। यह गांवों, शहरों, बाजारों, कस्बों, प्रशासनिक सांस्कृतिक और औद्योगिक केन्द्रों आदि को आपस में जोड़ती हैं। इसमें रोजगार–सृजन की भी सम्भावनाएं हैं। यह बैलगाड़ी, स्कूटर, मोटरसाईकिल कार, बस आदि के उपयोग को सरल बनाती हैं। भारत में प्राचीन समय से ही सड़कों का महत्व रहा है। यहां पर ईसा से 3500 वर्ष पूर्व भी सड़कें थी। मुगल शासकों एवं अंग्रेजों ने भी सड़कों पर विशेष ध्यान दिया था। देश में सड़कों के विकास हेतु निरन्तर प्रयास किये जाते रहे हैं। दिसम्बर 1943 में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के इन्जीनियरों का नागपुर में सम्मेलन हुआ जिसमें सड़कों के विकास के लिए एक **दस–वर्षीय योजना** बनायी गयी जिसे **'नागपुर योजना'** के नाम से जाना जाता है। इस योजना में 448 करोड़ रूपये की लागत से 4 लाख मील लम्बी सड़कें बनाने का प्रावधान था। स्वतन्त्र भारत में नियोजन के प्रारम्भ होने पर सड़कों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। 1950–51 में यहां कुल 4 लाख किलोमीटर सड़कें थीं जो वर्तमान में 33.4 लाख किलोमीटर हो गयी हैं। **25 दिसम्बर, 2000** को केन्द्र सरकार ने **प्रधानमन्त्री सड़क योजना** का शुरूआत की जिसमें एक हजार की जनसंख्या वाले सभी गांवों को अगले तीन वर्षों में तथा 500 की जनसंख्या वाले हर गांवों को 7 वर्षों को में पक्की सड़कों से जोड़ना है। नागपुर सम्मेलन में भारतीय सड़कों का वर्गीकरण किया गया जो आज भी मान्य है। इसके अनुसार सड़कें चार प्रकार की हैं: राष्ट्रीय राजमार्ग अथवा राष्ट्रीय सड़कें, राज्य राजमार्ग अथवा राज्य की सड़कें, जिला मार्ग अथवा जिले की सड़कें तथा ग्रामीण सड़कें।

5.5.2.2 रेल परिवहन (RAIL TRANSPORTATION):

रेल भारत में परिवहन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह कृषि एवं उद्योगों के विकास, श्रम की गतिशीलता, निर्यात वृद्धि, पर्यटन के प्रोत्साहन में सहायक है। देश में **प्रथम रेल 16 अप्रैल, 1853** को **बम्बई से थाणे** तक चली थी। तब से लेकर आज तक रेल सेवा में बहुत प्रगति हुई है। मुख्यतः नियोजन–प्रक्रिया में रेल सेवा के विकास में तेजी आई है। वर्ष 1950–51 में रेलमार्ग 53,596 किलोमीटर था जो वर्तमान में बढ़कर 63,327 किलोमीटर हो गया है। इस अवधि में विद्युत रेलमार्ग भी 388 किलोमीटर से बढ़कर 17,786 किलोमीटर हो गया है। वर्तमान में भारतीय रेल एशिया की सबसे बड़ी तथा विश्व की दूसरी बड़ी रेल प्रणाली है। भारतीय रेलवे का कम्प्यूट्रीकृत यात्री आरक्षण सिस्टम विश्व में यात्री आरक्षण नेटवर्क में सबसे बड़ा है, जो 8,074 टर्मिनलों से 2,222 स्थलों पर उपलब्ध है। औसतन, पीआरएस के माध्यम से प्रतिमाह 4.28 करोड़ यात्री बुक होते हैं जिससे प्रतिमाह औसतन 1,722.01 करोड़ रुपए की आय होती है। भारतीय रेलवे ने डाक घरों के माध्यम से पीआरएस सुविधाओं को मुहैया कराने के लिए भारतीय डाक से बद्धता की है और 112 ऐसे डाक घरों पर यह कार्य हो रहा है। वर्तमान में भारत में 16 रेलवे जोन तथा इन जोनों के अन्तर्गत कुल 66 डिवीजन हैं।

5.5.2.3 जल परिवहन (WATER TRANSPORTATION):

परिवहन के विभिन्न साधनों में जल परिवहन बहुत प्राचीन साधन है। विकास की उस अवस्था में भी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय यातायात का महत्वपूर्ण साधन था जब रेल सहित परिवहन के अन्य साधनों का विकास भी नहीं हुआ था। जल परिवहन के दो प्रकार हैं : आन्तरिक जल परिवहन एवं सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन।

1. **आन्तरिक जल परिवहन (INTERNAL WATER TRANSPORTATION):** आन्तरिक जल परिवहन के अन्तर्गत देश के आन्तरिक भागों में नदियों एवं नहरों द्वारा किये जाने वाले परिवहन को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में भारत में 7,516 किलोमीटर लम्बे परिवहन योग्य मार्ग हैं। साथ ही यहां 4,300 किलोमीटर लम्बी नहरें हैं जिसमें से केवल 900 किमी. लम्बी नहरों का उपयोग किया जाता है। असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, केरल जैसे राज्यों के लिए आन्तरिक जल परिवहन का विशेष महत्व है। देश में आन्तरिक जल परिवहन के प्रमुख मार्ग हैं : गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियां तथा इनकी सहायक नहरें। आन्तरिक जल परिवहन के विकास सम्बन्धी नीति का निर्धारण **'केन्द्रीय अन्तर्देशीय जल परिवहन बोर्ड'** करता है।
2. **सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन (MARITIME OR SHIPPING TRANSPORT):** सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन में समुद्र के माध्यम से देश के बाहर सामान एवं यात्री लाने–ले जाने के साधनों को शामिल किया जाता है। भारत में प्राचीन समय से ही सामुद्रिक परिवहन महत्वपूर्ण साधन रहा है। इसी कारण, भारत के व्यापारिक सम्बन्ध एशिया के देशों के साथ ही यूरोप के देशों से भी थे। भारत में आधुनिक सामुद्रिक परिवहन के विकास का शुभारम्भ **1854** में **'ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी'** की स्थापना के साथ हुआ। परन्तु, इसका वास्तविक आरम्भ **1919** में माना जाता है जब ब्रिटिश जहाजी एकाधिकार का मुकाबला करने के लिए **'सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी'** की स्थापना की गई। भारत में नियोजन काल में सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन का तेजी से विकास हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय देश में जहाजरानी की क्षमता 3.7 लाख जी. आर.टी. थी तथा जहाजों की संख्या 94 थी जो वर्तमान में बढ़कर क्रमशः 82.9 लाख जी.आर.टी. तथा 707 हो गयी है। भारतीय जहाजरानी का विश्व में 20वां तथा एशिया में दूसरा स्थान है।

5.5.2.4 वायु परिवहन (AIR TRANSPORTATION):

परिवहन के विभिन्न साधनों में वायु परिवहन आधुनिक युग का नवीनतम् एवं क्रान्तिकारी साधन है। इसके माध्यम से मनुष्य हजारों किलोमीटर की दूरी कुछ ही घण्टों में पूरी कर लेता है। यह देश के व्यावसायिक विस्तार में, कृषि के विकास में, सुरक्षा एवं शान्ति में, भौगोलिक बाधाओं से मुक्ति दिलाने एवं पर्यटन उद्योग के प्रोत्साहन में सहायक है। भारत में **प्रायोगिक उड़ानें 1919** में प्रारम्भ हुई थी परन्तु आधुनिक वायु परिवहन का शुभारम्भ 1927 में **'नागरिक उड्डयन विभाग'** की स्थापना के साथ हुआ था। 1929 में ब्रिटेन, हॉलैण्ड तथा फ्रांस की 'साम्राज्य वायु

सेवा' के विमान भारत में आने–जाने लगे। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वायु परिवहन का वास्तविक विकास प्रारम्भ हुआ। 1953 में सरकार ने वायु सेवा का राष्ट्रीयकरण कर दिया और आठ कम्पनियों का काम अपने हाथ में ले लिया। इसके फलस्वरूप **'भारतीय विमान निगम'** (Indian Airlines Corporation) तथा **'अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय विमान निगम'** (Air India International Corporation) नामक दो निगमों की स्थापना हुई। **26 जनवरी, 1981** से तीसरी सेवा **'वायुदूत'** के नाम से प्रारम्भ की गई। बाद में सार्वजनिक क्षेत्र की इण्डियन एयरलाइन्स और एयर इण्डिया का **विलय** कर **'द नेशनल एविएशन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड'** बनायी गई। यह विलयित कम्पनी **'एयर इण्डिया'** के नाम से ही सेवा उपलब्ध कराएगी। इसके साथ ही भारत में निजी क्षेत्र की जेट एयरवेज, सहारा एयरलाइन्स, डक्कन एविएशन, स्पाइस जेट, किंगफिशर एयरलाइन्स आदि हैं। इस समय देश में 127 हवाई अड्डे हैं जिनमें 15 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं। इन हवाई अड्डों का प्रबन्धन **'भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण'** करता है। नागर विमानन क्षेत्र में यात्री परिवहन एवं माल ढुलाई को देखें तो पायेंगे कि जनवरी–दिसम्बर, 2010 के दौरान अनुसूचित घरेलू यात्री परिवहन 51.53 मिलियन था जो 2009 की तदनुरूप अवधि के दौरान 43.3 मिलियन यात्री परिवहन के मुकाबले 19 प्रतिशत वृद्धि दर्शाता है। विमानों द्वारा ढोए गए घरेलू माल में भी 2009 में 3.4 मिलियन टन के मुकाबले 2010 में 4.7 मिलियन टन की ढुलाई की गई जो 30 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज कराता है।

5.5.3 संचार संसाधन (COMMUNICATION RESOURCES):

आधुनिक समय में देश के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए विकसित संचार संसाधनों का विशेष महत्व है। संचार संसाधनों के अन्तर्गत वे साधन आते हैं जिनके द्वारा बहुत कम समय में सूचनाओं को आदान–प्रदान किया जा सकते हैं। इसमें डाक सेवा, दूरसंचार सेवा, मोबाइल फोन सेवा, इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड सेवा, फैक्स सेवा आदि शामिल हैं। भारत में जन–सामान्य हेतु **संचार सेवा** का आरम्भ **1837** में हुआ। भारत में संचार संसाधनों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

5.5.3.1 डाक सेवा (POSTAL SERVICE):

डाक सेवा संचार का प्रमुख साधन है। इस सेवा के द्वारा देश के विभिन्न भाग एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं। डाकघरों के माध्यम से एक व्यक्ति अपना समाचार एवं सामान अन्य स्थानों पर भेज सकता है। अपने पत्र अथवा छोटे–छोटे सामान को शीघ्रता से भेजने के लिए डाकघर थोड़ी अधिक दर पर स्पीड पोस्ट, एक्सप्रेस पार्सल सेवा आदि सेवाएं प्रदान करता है। बड़े शहरों को विशेष सुविधा देने के लिए भारत मे डाक को कई प्रकार बांटा गया है, जैसे– राजधानी चैनल, मैट्रो चैनल, ग्रीन चैनल, व्यापारिक चैनल, बल्क मेल चैनल, पीरिओडिकल चैनल आदि। भारत में डाक व्यवस्था को विकसित करने का उद्देश्य संचार सुविधाएं बढ़ाने के साथ ही ग्रामीण विकास, रोजगार, छोटी बचतों और ग्रामीण उद्योगों के विकास करना भी है। स्वतन्त्रता के बाद देश में डाक सेवा का तेजी से विकास हुआ है। स्वतन्त्रता के समय यहां 23,344 डाकघर थे, जो वर्तमान में बढ़कर 1,54,979 हो चुकी है जिसके चलते भारतीय डाक विश्व में सबसे बड़ा डाक नेटवर्क है। 31 मार्च, 2010 की

स्थिति के अनुसार इन कुल डाकघरों में से 1,39,182 ग्रामीण क्षेत्रों में और 15,797 शहरी क्षेत्रों में थे। औसत आधार पर प्रत्येक डाकघर 7,176 व्यक्तियों का काम करता है और लगभग 21.21 वर्ग किमी क्षेत्र को कवर करता है। जहां विभागीय डाकघर खोलना सभव नहीं है, वहां ऐसे स्थानों की डाक संबंधी सेवाओं की मांग को देखते हुए भारतीय डाक ने अभी तक 1,082 मताधिकार दुकानें (Franchise Outlets) की शुरुआत की है।

5.5.3.2 दूरसंचार सेवा (TELECOMMUNICATION SERVICES):

दूरसंचार सेवा सूचना संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। देश में दूरसंचार सेवाएं टेलीफोन एवं टेलीग्राफ के आविष्कार के तुरन्त बाद ही प्रारम्भ हो गयी थीं। सबसे पहले 1851 में तार सेवा कोलकाता से डायमण्ड हार्बर के लिए शुरू हुई। सर्वप्रथम टेलीफोन सेवाएं कोलकाता में 1881–82 में शुरू हुई तथा पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज 1913–14 में शिमला में स्थापित किया गया। स्वतन्त्रता के बाद इस सेवा ने तेजी से प्रगति की। भारत में दूरसंचार क्षेत्र के सेवा प्रदान करने वाले दो विभाग **'दूरसंचार सेवा विभाग'** तथा **'दूरसंचार प्रचालन विभाग'** का निगमीकरण कर दिया गया है। अब **'भारत संचार निगम लिमिटेड'** (BSNL) नाम की एक सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी ने **1 अक्टूबर, 2000** में दोनों विभागों के सेवा प्रदान करने वाली क्रियाकलापों कों अपने हाथ में ले लिया हैं। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत दूरसंचार क्षेत्र में एक क्रांति आई है। यहां टेलीफोन ग्राहकों की संख्या 2004 में केवल 76.54 मिलियन थी जो नवम्बर 2010 के अंत में बढ़कर 764.77 मिलियन हो गई। बेतार टेलीफोन कनेक्शनों ने इस वृद्धि में योगदान किया है। इनकी संख्या मार्च 2004 में 35.62 मिलियन से बढ़कर नवम्बर 2010 के अंत में 729.58 मिलियन के स्तर पर पहुंच गई है। वायर लाइन में गिरावट देखी गई और यह 2004 में 40.92 मिलियन से कम होकर नवम्बर 2010 में 35.19 मिलियन रह गई। निजी क्षेत्रों की बढ़ती भागीदारी के चलते कुल टेलीफोन कनेक्शनों में निजी क्षेत्रों का हिस्सा 1999 में 5 प्रतिशत से बढ़कर नवम्बर 2010 में 84.5 प्रतिशत हो गया है। टेलीफोन घनत्व, जो दूरसंचार के फैलाव का एक महत्वपूर्ण संकेतक है, में निरन्तर सुधार हुआ है। यह मार्च 2004 में 7.02 प्रतिशत से बढ़कर नवम्बर 2010 में 64.34 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण एवं शहरी टेलीफोन घनत्व मार्च 2004 में क्रमशः 1.57 प्रतिशत एवं 20.74 प्रतिशत था जो नवम्बर अंत 2010 में बढ़कर क्रमशः 30.18 प्रतिशत एवं 143.95 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गया है।

5.5.3.3 इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड सेवा (INTERNET AND BROADEBAND SERVIES)

इंटरनेट, जिसे **सूचना प्रौद्योगिकी** की **जीवनरेखा** कहा जाता है, एक अत्याधुनिक डिवाइस है जिसका उद्‌भव एवं विकास **1969** में अमरीका के प्रतिरक्षा विभाग के मुख्यालय पेंटागन स्थित एडवांस रिसर्च प्रोजेक्शन एजेंसी की संकल्पना से हुआ। इंटरनेट इंटरनेशनल नेटवर्क का ही संक्षिप्त नाम है। विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का आदान–प्रदान शीघ्रता से कर लेने के कारण इसे ***'इंफॉर्मेशन सुपर हाईवे'*** भी कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इंटरनेट शब्द 1994 में प्रचलन में आया और

भारत में इसकी शुरूआत 1995 में हुई। सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते आधार एवं नियोजन में इसकी भूमिका के कारण भारत सरकार ने **15 अक्टूबर, 1999** को इसके लिए एक अलग मंत्रालय का गठन किया।

वर्तमान में, इंटरनेट सेवा को तीव्रतर और बहुआयामी रूप प्रदान करने में तीव्र गति की इंटरनेट सेवा, जिसे ब्रॉडबैंड सेवा कहा जाता है, की शुरूआत भी देश में हो चुकी है। यह एक अत्यधिक विकसित तकनीकी है जिससे आंकड़े, तस्वीरें तथा संदेश भेजना अब और भी अधिक आसान हो गया है। इस तकनीक में आवाज, डाटा ट्रांसमिशन तथा वीडियो सुविधाएं एक साथ उपलब्ध हो जाती हैं। देश में ब्रॉडबैंड ग्राहकों की संख्या मार्च 2010 में 8.77 मिलियन से बढ़कर नवम्बर, 2010 तक लगभग 10.71 मिलियन हो गई। ब्रॉडबैंड नीति में वर्ष 2010 तक 20 मिलियन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। ब्रॉडबैंड सेवाएं देने की सबसे लोकप्रिय प्रौद्योगिकी इस समय डिजीटल सब्सक्राइबर लूप है और कुल ब्रॉडबैंड कनेक्शनों के 86 प्रतिशत कनेक्शन इसी प्रौद्योगिकी पर आधारित हैं। अब तीसरी पीढ़ी के नेटवर्क आने से उपभोक्ता सही अर्थो में ब्रॉडबैंड रफ्तार का अनुभव पा सकते हैं। उम्मीद है कि ब्रॉडबैंड से विभिन्न क्षेत्रों में नये–नये लाभ मिलेंगे। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और दक्षता विकास में बढ़िया सेवाएं देने का प्रभावशाली माध्यम बन सकता है।

5.6 सामाजिक अधो–संरचना के संघटक (COMPONENTS OF SOCIAL INFRASTRUCTURE)

शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास सामाजिक अधो–संरचना के तीन महत्वपूर्ण संघटक हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

5.6.1 शिक्षा (EDUCATION)

शिक्षा एवं विकास में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। शिक्षा को विकास की सीढ़ी, परिवर्तन का माध्यम एवं आशा का अग्रदूत माना जाता है। अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों को समाप्त करने, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने, महिलाओं के सशक्तिकरण, अल्पसंख्यकों एवं उपेक्षित वर्गों को उचित स्थान प्रदान करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत में साक्षरता की दर वर्ष 1951 में मात्र 18.3 प्रतिशत थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 64.83 प्रतिशत हो गई। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। देश में पुरूष साक्षरता दर वर्ष 2001 में 75.26 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 82.14 प्रतिशत हो गई है। इसी प्रकार, महिलाओं की साक्षरता दर वर्ष 2001 में 53.67 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई है। देश में शिक्षा सुविधाओं का विकास होने के साथ ही पुरूष–महिला की साक्षरता दर का अन्तर भी कम हुआ है। भारत में केरल 93.91 प्रतिशत के साथ सर्वाधिक साक्षरता दर वाला राज्य है जबकि सबसे कम साक्षरता दर बिहार में है जहां यह दर मात्र 63.82 प्रतिशत है।

शिक्षा हेतु सरकारी प्रयास (GOVERNMENT EFFORTS FOR EDUCATION): सरकार द्वारा हाल के वर्षों में शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु अनेक प्रयास किए गए हैं। ***निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम, 2009 (आरटीई***

अधिनियम) के तहत 6 से 14 वर्ष के बीच की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया है। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत सितम्बर, 2010 तक प्राप्त उपलब्धियों में 3,09,727 नए विद्यालयों का खोला जाना, 2,54,935 विद्यालय भवनों का निर्माण 11,66,868 अतिरिक्त कक्षाओं का निर्माण 1,90,961 पेयजल सुविधाएं, 3,47,857 शौचालयों का निर्माण, 8.70 करोड़ बच्चों को पाठ्य पुस्तकों की निःशुल्क आपूर्ति तथा 11.13 लाख अध्यापकों की नियुक्ति शामिल है। सर्व शिक्षा अभियान के हस्तक्षेप के कारण स्कूलों से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या में भारी कमी आई है। एक स्वतंत्र अध्ययन में कहा गया है कि स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या 2005 की 134.6 लाख से कम होकर 2009 में 81. 5 लाख रह गई है। विद्यालयों में 5 वर्ष के बच्चों के नामांकन में वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालयों में नामांकित 5 वर्ष के बच्चों का प्रतिशत 2009 के 54.6 प्रतिशत से बढ़कर 2010 में 62.8 प्रतिशत हो गया है। सबसे अध्कि वृद्धि कर्नाटक में देखी गई है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और असम जैसे कई अन्य राज्यों में 2009 और 2010 के बीच 5 वर्ष के बच्चों के नामांकन में काफी वृद्धि हुई। उच्च शिक्षा, जो 21वीं सदी के ज्ञान आधारित समाज के निर्माण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है, हेतु विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के सामान्य विकास के लिए कार्यक्रम, महिलाओं के लिए हॉस्टलों के निर्माण हेतु विशेष अनुदान, छात्रों के लिए छात्रवृत्तियां, यह सुनिश्चित करने के लिए कि अपनी गरीबी के कारण कोई व्यावसायिक शिक्षा से वंचित न हो, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए शैक्षिक ऋणों पर ब्याज सब्सिडी प्रदान करने की स्कीम और उच्चतर एवं तकनीकी शिक्षा में अध्यापन प्रतिभा को आकर्षित करने और उसे कायम रखने के लिए हस्तक्षेप करना उच्चतर शिक्षा में सरकार की महत्वपूर्ण नीतिगत पहलें हैं। विदित है कि वर्तमान में भारत में विश्वविद्यालयों की संख्या लगभग 350 है।

5.6.2 स्वास्थ्य (HEALTH)

स्वास्थ्य एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वस्थता की स्थिति है। स्वस्थ व्यक्ति ही देश के सर्वांगीण विकास में योगदान कर सकता है। आर्थिक विकास की उच्च दर प्राप्त करने के लिए शिक्षा के साथ ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्राथमिक स्तर पर किया गया निवेश सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का तेजी से विकास हुआ है। इसके प्रभाव को विभिन्न स्वास्थ्य संसूचकों पर देखा जा सकता है। (तालिका संख्या 5.6.2 देखें)।

तालिका 5.6.2 : भारत में चुनिन्दा स्वास्थ्य संसूचक

क्र.सं	प्राचल	1981	1991	मौजूदा स्तर
1.	जन्म दर (प्रति 1000 जनसंख्या)	33.9	29.5	22.22
2.	मृत्यु दर (प्रति 1000 जनसंख्या)	12.5	9.8	6.4
3.	कुल प्रजनन दर (प्रति महिला)	4.5	3.6	2.6 (2008)
4.	मातृत्व मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्म)	––	––	254 (2004–06)

5.	शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्म)	110	80	50 (2009)
6.	बाल (0–4 वर्ष) मृत्यु दर (प्रति 1000 बच्चे)	41.2	26.5	15.2 (2008)
	बालक			49
	बालिका			52
7.	जन्म पर जीवन प्रत्याशा	(1981–85)	(1989–93)	(2009)
	कुल	55.4	59.4	69.89
	पुरूष	55.4	59.0	67.46
	महिला	55.7	59.7	72.61

1. **जीवन प्रत्याशा में निरन्तर सुधार (CONTINUOUS IMPROVEMENT IN LIFE EXPECTANCY):** देश में विकास होने के साथ ही लोगों की जन्म पर जीवन प्रत्याशा में निरन्तर सुधार हुआ है। 1981–85 की अवधि में यह 55.4 वर्ष थी जो (1989–93) में 59.4 वर्ष तथा 2009 में 69.89 वर्ष आंकलित की गई है। इसी वर्ष पुरूषों की जीवन–प्रत्याशा 67.46 वर्ष तथा महिलाओं की 72.61 वर्ष रही।
2. **जन्म एवं मृत्यु दर में कमी (REDUCTION IN BIRTH AND DEATH RATE):** भारत में जन्म दर 1981 में यह 33.9 प्रति हजार, 1991 में 29.5 प्रति हजार तथा वर्तमान में कम होकर 22.22 प्रति हजार हो गयी है। इसी प्रकार मृत्यु दर 1981 में 12.5 प्रति हजार थी जो 1991 में 9.8 प्रति हजार तथा वर्तमान में घटकर 6.4 प्रति हजार हो गयी है।
3. **स्वास्थ्य सुधार हेतु सरकारी प्रयास (GOVERNMENT EFFORTS FOR HEALTH REFORM):** विगत छह दशकों में प्राथमिक, द्वितीय और तृतीय स्तरों पर लोगों की स्वास्थ्य सबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़ी संख्या में स्वास्थ्य संस्थाएं स्थापित की गई हैं। देश में स्तरीय सुव्यवस्थित लोक स्वास्थ्य अवसंरचना विकसित की गई है, जिसमें संपूर्ण ग्रामीण एवं उप–शहरी क्षेत्रों में फैले हुए सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और उप–केन्द्रों के साथ–साथ बहु प्रकार की विशेषताओं से युक्त अस्पताल व मेडिकल कालेज शामिल हैं। मौजूदा स्वास्थ्य अवसंरचना में अन्तर को पूरा करने तथा सुलभ, वहनीय और साम्यिक स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराने के उद्देश्य से भारत सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम.), **प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना** जननी सुरक्षा योजना, आशा जैसे कई कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की हैं। एन.आर.एच.एम. के तहत 1572 विशेषज्ञ, 8284 एम.बी.बी.एस. डॉक्टर, 53,552 सहायक नर्स, दाइयां, 18,272 पराचिकित्सक संविदा आधार पर नियोजित किए गए हैं। स्वास्थ्य सेवाओं को 24 घंटे चालू रखने हेतु कुल 16,338 अतिरिक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और अन्य उप–जिला सुविधाएं 24 घंटे उपलब्ध हैं। अन्य कार्यक्रमों जैसे संशोधित राष्ट्रीय टीबी नियंत्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय वैक्टर जनित रोग नियंत्रण, राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियंत्रण कार्यक्रम और राष्ट्रीय कुष्ठ रोग निवारण कार्यक्रम को भी सुदृढ़ किया गया है और इन्हें समयबद्ध एवं अधिक केन्द्रीभूत ढंग से कार्यान्वित किया जा रहा है।

4. **स्वास्थ्य सुधार हेतु प्रयासों के प्रभाव (EFFECTS OF EFFORTS FOR HEALTH IMPROVEMENT):** स्वास्थ्य सुधार हेतु किये गये प्रयासों में देश को सफलता मिली है। जननी सुरक्षा योजना में पिछले तीन वर्षों के दौरान तेजी से प्रगति हुई है जिसके अंतर्गत वर्ष 2009–10 में लाभार्थियों की संख्या 100.78 लाख तक पहुंच गई। राष्ट्रीय स्तर पर प्रौढ़ एच आई वी विस्तार वर्ष 2000 में 0.41 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2009 में 0.31 प्रतिशत हो गया है। पिछले एक दशक में नए वार्षिक एच आई वी संक्रमणों में 50 प्रतिशत से अधिक कमी हुई है और ये वर्ष 2000 में 2.7 लाख से वर्ष 2009 में 1.2 लाख रह गए हैं। देश में विकास के साथ ही जन्म दर, मृत्यु दर, कुल प्रजनन दर, मातृत्व मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर आदि में कमी आई है।

5.6.3 आवास (HOUSING)

आवास से तात्पर्य व्यक्तियों के लिए ऐसे आरामदायक आश्रय से है जहां उनके परिवार के सदस्य सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। सामान्यतः आवास की व्यवस्था वहां होनी चाहिये जहां शिक्षा, चिकित्सा, खेलकूद, मनोरंजन, शुद्ध वायु, जल एवं प्रकाश की उचित व्यवस्था हो। भोजन और वस्त्र के साथ आवास मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है। यह व्यक्ति के जीवन को आरामदायक, स्वस्थ और स्तरीय बनाता है तथा उसके रहन–सहन के स्तर की गुणवत्ता में वृद्धि करता है। भारत में आवास से सम्बन्धित दो पहलुओं को देखा जाता है– प्रथम, परिमाणात्मक पहलू तथा द्वितीय, गुणात्मक पहलू।

1. **परिमाणात्मक पहलू (QUANTITATIVE ASPECT)** के अन्तर्गत आवास की मांग एवं उसकी उपलब्धता को देखा जाता है। भारत में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है परन्तु उस गति से आवास की उपलब्धता नहीं बढ़ रही है जिससे यहां आवास की कमी बनी हुई है। आवास की कमी के कारण कुछ परिवार एक मकान में साझे रूप में रहते हैं जबकि कुछ परिवार रैन–बसेरा अथवा फुटपाथ पर रहने को मजबूर हैं। भारत में सन् 1961 में कुल 55 लाख आवासों की कमी थी। 1991 में यह कमी घटकर 38 लाख रह गई। देश में कुल आवासों में पक्के आवासों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। यह 1971–2001 की जनगणना अवधि में शहरी क्षेत्रों में 64 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत एवं ग्रामीण क्षेत्रों में 18 प्रतिशत से बढ़कर 31 प्रतिशत हो गया। इसके बाद भी आज देश में आवास की समस्या एक गम्भीर समस्या है। यहां लगभग 2 करोड़ लोग बेघर हैं साथ ही नगरीय जनसंख्या का 20 प्रतिशत भाग गन्दी बस्तियों में रहता है।
2. **गुणात्मक पहलू (QUALITATIVE ASPECT)** के अन्तर्गत आवास की गुणवत्ता एवं विभिन्न सुविधाओं को देखा जाता है। भारत में अनेक परिवार ऐसे हैं जो बिना पक्की छत वाले मकानों में रहते हैं। इन मकानों में पीने का पानी, स्नानगृह तथा शौचालय जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। भारत में आवास की समस्या के समाधान के लिए शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न योजनाएं चलायी जा रही हैं, जैसे– अम्बेडकर वाल्मीकि आवास योजना, इन्दिरा आवास योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास वित्त योजना, प्रधानमन्त्री ग्रामोदय योजना आदि। ग्रामीण क्षेत्रों में अवसंरचना और मूलभूत सुविधाओं के निर्माण के लिए 2005–06

में प्रारंभ किए गए भारत निर्माण कार्यक्रम के छह घटकों में ग्रामीण आवास एक प्रमुख घटक है।

सरकार 'जवाहरलाल नेहरु राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन' के अन्तर्गत आवास विकास के लिए शहरों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है तथा सभी आवासीय परियोजनाओं (सार्वजनिक एवं निजी एजेंसियां दोनों) में कम से कम 20 से 25 प्रतिशत भूमि आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों/निम्न आय वाले समूहों के लिए निर्धारित किया गया है। इसमें 8 फरवरी, 2011 तक 1.5 मिलियन से अधिक आवास संस्वीकृत किए गए हैं। सरकार ने आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए कम से कम 25 प्रतिशत के साथ आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग/निम्न आय वर्ग/मध्यम वर्ग के लिए 10 लाख मकानों के निर्माण के लिए 5000 करोड़ के परिव्यय से 'भागीदारी में सस्ते आवास स्कीम' प्रारंभ की है। सरकार ने एक स्कीम, राजीव आवास योजना के माध्यम से स्लम मुक्त भारत की परिकल्पना की घोषणा की है।

5.7 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न 01 : शक्ति के कौन–कौन से साधन हैं ?

प्रश्न 02 : जल परिवहन के प्रकार बताईये।

प्रश्न 03 : रिक्त स्थान भरिए।

(1) भारत में इंटरनेट की शुरूआत ..... में हुई।

(2) कोयले के उत्पादन में भारत का विश्व में ..... स्थान है।

(3) भारत में पहला पन–बिजलीघर कर्नाटक राज्य के ..... नामक स्थान पर बनाया गया।

(4) भारत में परमाणु शक्ति के विकास एवं प्रोत्साहन का श्रेय ..... को है।

(5) देश में प्रथम रेल ..... को बम्बई से थाणे तक चली थी।

(6) भारत में हवाई अड्डों का प्रबन्धन ..... करता है।

(7) भारत में पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज 1913–14 में ..... में स्थापित किया गया।

(8) भारत में ..... सर्वाधिक साक्षरता दर वाला राज्य है।

(9) वर्तमान में भारत में जन्म दर तथा मृत्यु दर क्रमशः ..... है।

(10) वर्ष 2011 में भारत में महिलाओं की साक्षरता दर ..... प्रतिशत है।

5.8 सारांश (SUMMARY)

देश के समग्र विकास के लिए अधो–संरचना का विकसित अवस्था में होना आवश्यक है। वास्तव में, अधो–संरचना एक देश के विकास की पूर्व–शर्त होती है। अधो–संरचना को दो भागों में बांटा जा सकता है, प्रथम, आर्थिक अधो–संरचना एवं द्वितीय, सामाजिक अधो–संरचना। आर्थिक अधो–संरचना के अन्तर्गत शक्ति संसाधन (कोयला, विद्युत, पेट्रोलियम), परिवहन संसाधन (सड़क, रेल, जल, वायु परिवहन), संचार संसाधन (डाक, दूरसंचार, मोबाइल, फैक्स सेवा) आदि आते हैं जबकि सामाजिक अधो–संरचना के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि घटक आते हैं। भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अधो–संरचना के विकास हेतु अधिक मात्रा में व्यय किया जा रहा है। परन्तु, इसके बावजूद अधो–संरचना के सम्बन्ध में समस्या रही हैं कि देश में तीव्र विकास हेतु मांग के अनुरूप बुनियादी सुविधाओं का विकास नहीं हो सका है तथा इनका

विकास ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में ही अधिक हुआ है जिससे शहरी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की समस्याएं बढ़ गयी हैं। देश में अधो–संरचना के विकास को अधिक प्राथमिकता देने तथा शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में इसको समान रूप से विकसित करने पर यह अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास में कारगर योगदान दे सकती है।

5.9 शब्दावली (GLOSSARY)

- **इंटरनेट (INTERNET):** इंटरनेट इंटरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्त नाम है। एक अत्याधुनिक डिवाइस है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का आदान–प्रदान शीघ्रता देश–विदेश में किया जा सकता है।
- **जीवन–प्रत्याशा (LIFE EXPECTANCY):** जीवन–प्रत्याशा से आशय जीवित रहने की आयु से है। इसे प्रत्याशित आयु अथवा औसत आयु भी कहा जाता है।

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर 1: शक्ति के प्रमख साधन कोयला, विद्युत, खनिज तेल या पेट्रोलियम, परमाणु शक्ति, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि हैं।

उत्तर 2: जल परिवहन के दो प्रकार हैं– आन्तरिक जल परिवहन एवं सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन।

उत्तर **3 :** रिक्त स्थान भरिए।

उत्तर : (1) 1995, (2) तीसरा, (3) शिवसमुद्रम, (4) डॉ. हामी जहाँगीर भाभा, (5) 16 अप्रैल, 1853, (6) भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, (7) शिमला, (8) केरल, (9) 22.22 प्रति हजार तथा 6.4 प्रति हजार, (10) 65.46।

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006) : *भारतीय अर्थव्यवस्था,* एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- मामेरिया, डॉ0 चतुर्भज एवं जैन, डॉ0 एस0सी0 (1995) : *भारतीय अर्थशास्त्र,* साहित्य भवन, आगरा।
- *आर्थिक समीक्षा 2010–11,* भारत सरकार।
- *जनगणना 2011,* भारत सरकार (website:www.censusofindia.com)

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. अधो–संरचना से आप क्या समझते हैं ? भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में अधो–संरचना की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
2. आर्थिक अधो–संरचना को स्पष्ट करते हुए इसके संघटकों का वर्णन कीजिए।
3. भारत में शक्ति संसाधनों के विकास पर एक निबन्ध लिखिए।
4. सामाजिक अधो–संरचना से क्या अभिप्राय है ? भारत में सामाजिक अधो–संरचना की प्रगति का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई–6 आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया (RELEVANCE OF ECONOMIC PLANNING AND PROCESS OF PLANNING)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आर्थिक नियोजन का अर्थ
6.4 आर्थिक नियोजन का महत्व एवं प्रासंगिकता
6.4.1 बाजार तंत्र की कमजोरियाँ
6.4.2 संतुलित विकास की आवश्यकता
6.4.3 आधारिक संरचना का विकास
6.4.4 सामाजिक न्याय की आवश्यकता
6.4.5 उत्पादन तकनीकी
6.4.6 संसाधनों का न्यायोचित आबंटन
6.4.7 स्थिरता के साथ आर्थिक विकास
6.4.8 संसाधनों की व्यवस्था
6.4.9 अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करना
6.4.10 अल्पविकसित देशों की विशिष्ट दशाएँ
6.5 भारत में आर्थिक नियोजन
6.5.1 भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता
6.5.2 आर्थिक सुधारों के दौर में नियोजन की प्रासंगिकता
6.5.3 भारत में आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि
6.6 योजना निर्माण की प्रक्रिया
6.6.1 भारत में योजना निर्माण की प्रक्रिया
6.6.2 भारत में आर्थिक नियोजन की विशेषताएँ
6.7 अभ्यास प्रश्न
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.12 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था के खण्ड–दो ''पंचवर्षीय योजनाएं एवं आर्थिक विकास की समस्याएं'' से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। इससे पहले खण्ड–एक के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना तथा उसकी विशेषताओं के संदर्भ में बता सकते हैं।
प्रस्तुत इकाई में आर्थिक नियोजन तथा इसकी प्रासंगिकता के बारे में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भारत में योजना निर्माण की प्रक्रिया तथा उसकी विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।
इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में नियोजन की विशेषताओं, उसकी प्रासंगिकता तथा योजना निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- ✓ आर्थिक नियोजन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ✓ भारत में आर्थिक नियोजन के ढाँचे तथा उसकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
- ✓ योजना निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

6.3 आर्थिक नियोजन का अर्थ (MEANING OF ECONOMIC PLANNING)

वर्तमान युग में आर्थिक नियोजन आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। विशेषकर अल्पविकसित देशों की विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को हल करने में आर्थिक नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। हालांकि अर्थशास्त्रियों में आर्थिक नियोजन की संकल्पना के सम्बन्ध में सहमति नहीं है और फिर भी विभिन्न देशों में आर्थिक नियोजन का स्वरूप अलग–अलग रहा है। जिन अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास राज्य द्वारा संचालित एवं नियंत्रित शक्तियों के माध्यम से होता है उसे नियोजन या समाजवादी अर्थव्यवस्था कहते हैं। जबकि बाजार या कीमत तंत्र द्वारा संचालित आर्थिक विकास को '**अनियोजित या पूँजीवादी अर्थव्यवस्था**' (Unplanned or Capitalist Economyद्ध कहते हैं। जब सरकार द्वारा देश के आर्थिक संसाधनों का आंकलन कर, उसका उपयोग किन्हीं पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को एक निश्चित समय में प्राप्त करने के लिए तार्किक ढंग से किया जाता है तो इसे आर्थिक नियोजन कहते हैं। आर्थिक नियोजन एक तकनीक है जिसके माध्यम से राज्य अर्थव्यवस्था के प्रमुख साधनों को प्राप्त करने, उसका प्रयोग करने तथा उसके विकास करने से संबंधित निर्णयों तथा नीतियों को, एक निश्चित समयावधि में अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग में ले आता है।
कुछ अर्थशास्त्री सरकारी हस्तक्षेप को ही नियोजन मानते हैं, परन्तु बिना नियोजन के भी बाजार तंत्र में सरकारी हस्तक्षेप हो सकता है। **प्रो0 डी. आर. गाडगिल (Dhananjay Ramchandra Gadgil)** के अनुसार, ***"आर्थिक विकास के लिए आयोजन का अर्थ है योजना प्राधिकरण, जो अधिकांश अवस्थाओं में राज्य की सरकार ही होती है, के द्वारा आर्थिक क्रिया का वाह्य निदेशन या नियमन करना।"*** *("Planning for economic development implies external direction or regulation of economic activity by the planning authority which in most cases identify with the government of state.")*
एम.डी डिकिन्सन (M.D. Dickinson) के अनुसार, ***"आर्थिक नियोजन प्रमुख आर्थिक***

निर्णयों का निर्माण है जिसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में विस्तृत सर्वेक्षण के आधार पर, एक निर्धारक सत्ता द्वारा सोच–विचार कर, यह निर्णय किया जाता है कि क्या एवं कितना उत्पादन किया जाएगा और उनका वितरण किसको होगा।" ("Economic planning is the making of major economic decisions by a determinate authority on the basis of a comprehensive survey of the economy as a whole. Such decisions include what and how much to produce; how, when and where it is to be produced; and to whom it is to be allocated.")

इस प्रकार नियोजन निश्चित संसाधनों के द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की एक सुविचारित तकनीक है, जिसके अंतर्गत एक निश्चित समयावधि और क्षेत्र के लिए योजना बनायी जाती है। चूंकि नियोजन के अंतर्गत उद्देश्य और संसाधन सुनिश्चित होते हैं, इसलिए पूँजीवादी या बाजार अर्थव्यवस्था की तरह योजनागत कार्यकलाप स्वतः प्रवर्तित नहीं होते हैं, बल्कि योजना प्राधिकारी द्वारा उनका नियंत्रण तथा नियमन किया जाता है।

6.4 आर्थिक नियोजन का महत्व एवं प्रासंगिकता (THE IMPORTANCE AND RELEVANCE OF ECONOMIC PLANNING)

अनेक कारणों से नियोजन, विशेषकर अल्पविकसित देशों के, विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

6.4.1 बाजार तंत्र की कमजोरियाँ (THE WEAKNESSES OF MARKET SYSTEM)

बाजार तंत्र की सीमाओं तथा कमियों को देखते हुए आर्थिक नियोजन आवश्यक हो जाता है। विशेषकर ऐसे देश में जहां जनसंख्या में बड़े तबके की क्रयशक्ति क्षमता कामी कम हो, लोग गरीब हों तथा अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा गैर–मौद्रिक हो। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में नियोजन के जरिए संसाधनों का अधिसंख्य गरीब व कम आय वाली जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रयोग सम्भव हो पाता है। यहां आयोजन बाजार तंत्र की कमियों व सीमाओं को कम करके उसे मजबूत करता है और उसमें सुधार लाता है।

6.4.2 संतुलित विकास की आवश्यकता (THE NEED FOR BALANCED DEVELOPMENT)

अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास के लिए नियोजन आवश्यक है। बाजार तंत्र सिर्फ लाभ वाले क्षेत्रों में अधिक निवेश करता है जिससे अर्थव्यवस्था का असंतुलित विकास होता है तथा उत्पादन का वितरण भी काफी असमान होता है। नियोजन के माध्यम से राज्य दुर्लभ संसाधनों का उपयोग राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास के लिए करता है।

अल्प विकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों तथा क्षेत्रों का समन्वय नियोजन के द्वारा ही सम्भव है।

6.4.3 आधारिक संरचना का विकास (DEVELOPMENT OF INFRASTRUCTURE)

विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में आवश्यक मात्रा में संसाधन जुटाने तथा आर्थिक व सामाजिक आधारिक संरचना का निर्माण करने में नियोजन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परिवहन, सिंचाई, ऊर्जा, बंदरगाह जैसी आर्थिक आधारिक सुविधाओं के विकास के बिना औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्र में तीव्र विकास सम्भव नहीं है। इसी प्रकार शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य इत्यादि सामाजिक आधारिक संरचना का विकास भी तीव्र आर्थिक के लिए अनिवार्य है। आधारिक संरचना का विकास सामाजिक हित से जुड़ा हो न कि व्यक्तिगत लाभ से। इसलिए नियोजन द्वारा इसका विकास अर्थव्यवस्था में संतुलित व न्यायोचित विकास सुनिश्चित कर सकता है।

6.4.4 सामाजिक न्याय की आवश्यकता (THE NEED FOR SOCIAL JUSTICE)

बाजार तंत्र में उद्यमी उन आर्थिक गतिविधियों में संसाधनों को लगाता है जो शीघ्र और अधिक लाभ दे सकें। इसलिए वे अधिक आय वर्ग के लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वस्तुतः बाजार की शक्तियाँ इस प्रकार कार्य करती हैं कि आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण होता जाता है तथा समाज में आर्थिक विषमताएं बढ़ती जाती हैं। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था का न्यायोचित विकास बाजार तंत्र के जरिए सम्भव नहीं है।

आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य होता है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आय व धन की विषमताओं को कम करने, बेरोजगारी तथा प्रछन्न बेरोजगारी दूर करने और गरीबी को समाप्त करने में नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में सामाजिक न्याय की दृष्टि रोजगार सृजन करने वाले तथा गरीबी निवारण कार्यक्रमों का विशेष महत्व रहा है।

6.4.5 उत्पादन तकनीकी (PRODUCTION TECHNIQUES)

अल्पविकसित देशों में आर्थिक नियोजन का महत्व उत्पादन की तकनीकी की समस्या से भी जुड़ा है। एक और नियोजित अर्थव्यवस्था में उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने की प्रक्रिया में अत्यधिक पूँजी प्रधान तकनीकों का प्रयोग करते हैं। इसलिए बेरोजगारी की समस्या और गंभीर होती जाती है। वस्तुतः बाजार तंत्र रोजगारविहीन संवृद्धि को ही बढ़ावा देता है। विशेषकर अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में, जहां पूँजी की कमी तथा श्रम की अधिकता होती है, श्रम प्रधान तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा देने में नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। देश में मानवीय संसाधनों का उचित इस्तेमाल तभी सम्भव है जब वैज्ञानिक ढंग से, नियोजन के माध्यम से मानव शक्ति का उपयोग किया जाए।

6.4.6 संसाधनों का न्यायोचित आबंटन (PROPER ALLOCATION OF RESOURCES)

अल्पविकसित देशों में संसाधनों की कमी होती है। बाजार तंत्र संसाधनों का विभिन्न उपयोगों में आवंटन निजी लाभ के आधार पर करता है, जिससे विलासिता की अनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है। नियोजन के माध्यम से सामाजिक लाभ को ध्यान में रखकर संसाधनों का आवंटन किया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण

अर्थव्यवस्था के संदर्भ में दीर्घकालिक विकास के लिए संसाधनों का न्यायोचित तथा अनुकूलतम आवंटन नियोजन के माध्यम से संभव हो जाता है।

6.4.7 स्थिरता के साथ आर्थिक विकास (ECONOMIC DEVELOPMENT WITH STABILITY)

विकास के साथ–साथ कीमत वृद्धि पर नियंत्रण के लिए आर्थिक नियोजन आवश्यक है। बाजार तंत्र में व्यापार चक्रों के उतार–चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिए नियोजन की भूमिका महत्वपूर्ण है। अनियोजित अर्थव्यवस्था में विभिन्न वर्गों तथा क्षेत्रों के उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों व नीतियों को एक साथ समन्वित करने की व्यवस्था न होने से अर्थव्यवस्था में स्थायित्व नहीं होता।

6.4.8 संसाधनों की व्यवस्था (SYSTEM OF RESOURCES)

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मूलतः अधिक मांग या उपभोग पर आधारित होती है परन्तु अल्पविकसित देशों में आय कम होने के कारण मांग व उपभोग के साथ–साथ बचत का स्तर भी निम्न होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में बचत बढ़ाकर निवेश बढ़ाने के लिए मांग तथा उपभोग पर नियंत्रण जरूरी है जो कि नियोजन के माध्यम से ही सम्भव है। नियोजन के माध्यम से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर मांग तथा उपभोग के नियंत्रण तथा नियमन के द्वारा संसाधनों का गतिशीलन इन अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास का आधार है।

6.4.9 अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करना (INITIATING AND ACCELERATING ECONOMIC DEVELOPMENT IN UNDERDEVELOPED COUNTRIES)

अल्पविकसित देशों में गरीबी के दुष्चक्र को समाप्त करने तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया शुरु करने और उसे तीव्र करने में नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन अर्थव्यवस्थाओं में स्वतः विकास सम्भव नहीं है। इसलिए विकास की प्रक्रिया को शुरु करने के लिए संसाधनों के गतिशीलन से लेकर आधारिक संरचना के निर्माण तक नियोजन की भूमिका उल्लेखनीय हो जाती है। इससे विकास का एक वातावरण बनता है और निजी निवेश भी प्रोत्साहित होता है। जिससे आगे चलकर विकास की गति भी तेज होती है।

6.4.10 अल्पविकसित देशों की विशिष्ट दशाएँ (SPECIFIC CHARACTERISTICS OF UNDERDEVELOPED COUNTRIES)

विभिन्न अल्पविकसित देशों की अपनी विशिष्ट दशाओं तथा समस्याओं के कारण सरकारी हस्तक्षेप तथा आर्थिक नियोजन आवश्यक हो जाता है। इन देशों का सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक ढांचा इस तरह का होता है तथा इनकी समस्याएं इतनी व्यापक होती हैं कि बिना नियोजन के इस अर्थव्यवस्थाओं की आधारभूत समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है। यही नहीं, आर्थिक विकास

के तेज होने की दशा में भी सामाजिक न्याय के साथ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के तेज तथा स्थायित्वपूर्ण विकास के लिए नियोजन के द्वारा अर्थव्यवस्था का पथ–प्रदर्शन, निर्देशन, नियमन तथा नियंत्रण अत्यंत आवश्यक व अनिवार्य है।

6.5 भारत में आर्थिक नियोजन (ECONOMIC PLANNING IN INDIA)

सारांशत : नियोजन समस्याओं के तार्किक समाधान तथा साधनों व साध्यों को समन्वित करने का प्रयास है। साथ ही योजना के पूर्ण होने की निश्चित समयावधि तथा क्रियान्वयन हेतु क्षेत्र का निश्चित किया जाना भी आवश्यक है।

भारत में आर्थिक नियोजन के अंतर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं और अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के लिए संसाधनों को आवंटित किया जाता है। भारत में योजनावधि पांच वर्ष की होती है तथा योजना का फैलाव पूरे देश में होता है।

भारत में आर्थिक नियोजन को मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में लागू किया गया है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों का सहअस्तित्व होता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था अनिवार्य रूप से एक नियोजित अर्थव्यवस्था ही होती है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र का संचालन योजना के निश्चित प्राथमिकताओं के अनुरूप, निश्चित सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। साथ ही सरकार विभिन्न उपायों के माध्यम से राजकोषीय मौद्रिक नीतियों तथा प्रत्यक्ष नियंत्रणों–निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित, नियंत्रित तथा नियमित करती है जिससे कि वे योजनागत उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकें। भारत में मोटे तौर पर, बाजार तंत्र तथा आर्थिक नियोजन की भूमिकाएं परस्पर पूरक ही रही हैं।

6.5.1 भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता (THE NEED OF ECONOMIC PLANNING IN INDIA)

लम्बे औपनिवेशिक शासन के पश्चात जब 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली तो अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक शोषण के कारण गतिहीन थी तथा अल्पविकास के कारण यहां बेरोजगारी, गरीबी, असमानता जैसी अनेकों आर्थिक समस्याएं मौजूद थीं। आर्थिक पिछड़ेपन के इस दुष्चक्र से निकलना बाजार तंत्र के भरोसे सम्भव नहीं था। भारत के प्रमुख उद्योगपतियों द्वारा तैयार 'बाम्बे योजना' में भी आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। आधारिक संरचना के निर्माण, पूँजीगत तथा भारी आधारभूत उद्योगों की स्थापना आदि में राज्य द्वारा नियोजन के माध्यम से पहल आवश्यक थी।

विकास की प्रारम्भिक अवस्था में देश में उपलब्ध संसाधनों की पर्याप्त जानकारी तथा उसका उचित प्रयोग करने के लिए आयोजन आवश्यक था। निवेश के लिए आवश्यक जानकारी तथा आंकड़ों के अभाव के साथ–साथ उद्यमिता तथा कुशल प्रबन्धन का भी अभाव था। इन अभावों को नियोजित निवेश के जरिए विकास की प्रक्रिया शुरु करके ही दूर किया जा सकता था।

स्वतंत्रता के समय देश विभाजन से अत्यन्त अनेक गम्भीर समस्याओं से निपटने के लिए भी नियोजन आवश्यक था। नियोजन को देश की मूल आर्थिक समस्याओं के समाधान का सहायक उपकरण माना गया। आर्थिक विकास की गति को तेज करने, उत्पादन तथा निवेश की मात्रा को बढ़ाने, जनसंख्या नियंत्रण इत्यादि के अतिरिक्त

विदेशी व्यापार बढ़ाने जैसे अनेक समस्याओं के लिए नियोजन आवश्यक समझा गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय ही देश में नियोजित विकास के लिए पहले से ही थोड़ा–बहुत अनुकूल वातावरण का निर्माण हो चुका था। भारत संभवतः पहले अल्पविकसित प्रजातान्त्रिक देश था जिसने आर्थिक विकास के लिए नियोजन का रास्ता चुना। देश में बाजार तंत्र और आर्थिक नियोजन की भूमिकाएं परस्पर पूरक रहीं हैं।

6.5.2 आर्थिक सुधारों के दौर में नियोजन की प्रासंगिकता (THE RELEVANCE OF ECONOMIC PLANNING IN THE ERA OF ECONOMIC REFORMS)

1991 में उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत होने के बाद से सरकार ने नियोजन में सरकारी क्रियाकलापों में कटौती की है तथा निजी क्षेत्र की भूमिका का तेजी से विस्तार हुआ है। परन्तु नियोजन का महत्व अब भी बना हुआ है। आज विविध प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को संचालित तथा उन्हें समन्वित करने के लिए नियोजन जरूरी है। बाजार तंत्र की अनिवार्य अपूर्णताओं तथा कमियों से बचाकर अर्थव्यवस्था में तेज तथा स्थायित्व के साथ विकास करने के लिए नियोजन व राज्य की भूमिका आज भी महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुएं उपलब्ध कराने में राज्य की जिम्मेदारी आज कहीं और अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। उदारीकरण के दौर में बढ़ती विषमताओं को कम करके सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने तथा गरीबी को कम करने में नियोजन की भूमिका आज कहीं अधिक प्रासंगिक है।

6.5.3 भारत में आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि

भारत में स्वतंत्रता के समय, नेताओं तथा नीति निर्माताओं के लिए नियोजन की अवधारणा नई नहीं थी। 1934 में **एम0 विश्वेसरैया** (M. Visvesvaraya) की पुस्तक **''प्लान्ड इकोनॉमी फॉर इण्डिया''** "Planned Economy for India" में भारत के नियोजित विकास हेतु एक 10 वर्षीय आयोजन का प्रस्ताव था। 1938 में जवाहरलाल नेहरू (JawaharLal Nehru) की अध्यक्षता में कांग्रेस द्वारा **'राष्ट्रीय नियोजन समिति'** "National Planning Committee" गठित की गयी थी। इस समिति ने आयोजन के लिए सामग्री एकत्र करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। देश के प्रमुख आठ उद्योगपतियों ने 1943 में **'ए प्लान फॉर इकोनॉमिक डेवलेपमेंट फॉर इण्डिया'** "A Plan for Economic Development for IndiA" नामक शीर्षक से एक योजना तैयार की, जिसे **'बाम्बे प्लान'** "The Bombay Plan" कहा जाता है। स्पष्ट था कि भारत के उद्योगपतियों ने भी आर्थिक नियोजन की आवश्कता को स्वीकार किया।

स्वतंत्रता के पूर्व कई अन्य व्यक्तियों द्वारा भी विकास योजनाएं प्रस्तुत की गयीं। साम्यवादी दल के नेता **श्री एम. एन. राय** (M. N. Roy) द्वारा अप्रैल, 1944 में 10 वर्षीय **'पीपुल्स प्लान'** (People's Plan) प्रकाशित की गयी। इसी समय **श्रीमननारायण** (Shriman Narayan) ने गांधी जी के विचारों पर आधारित **'गांधियन प्लान'** (Gandhian Plan) प्रस्तुत की। उपरोक्त योजनाएं विभिन्न विचारधाराओं को परिलक्षित करती थी। इनमें से कोई भी योजना औपचारिक या आधिकारिक नहीं

थी। इन सभी का उद्देश्य देश में आर्थिक विकास, नियोजन के द्वारा किया जाएगा।

अगस्त 1944 में भारत सरकार ने आयोजन एवं विकास विभाग स्थापित किया और उसकी जिम्मेदारी **सर ए0 दलाल** को सौंपी। इस विभाग ने अर्थव्यवस्था के पुर्ननिर्माण के लिए एक अल्पकालीन योजना तथा देश के आर्थिक विकास के लिए दीर्घकालीन योजना बनाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरत बाद नवम्बर 1947 में **आखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी** (Indian Congress Committee) ने आर्थिक प्रोग्राम समिति की स्थापना की जिसके अध्यक्ष **पं0 जवाहरलाल नेहरू** (JawaharLal Nehru) थे। सितम्बर 1946 में देश में अन्तरिम सरकार की स्थापना की गयी और उसके तुरन्त बाद ही **श्री के. सी. नियोगी** (Shri. K. C. Niyogi) की अध्यक्षता में एक सलाहकार योजना बोर्ड की स्थापना की गयी जिसने अपना प्रतिवेदन **दिसम्बर 1946** में प्रस्तुत किया और सिफारिश की कि देश में नियोजन आवश्यक है। अतः एक स्थायी एवं स्वतंत्र योजना आयोग एवं सलाहकार समिति की स्थापना की जाए।

1. **योजना आयोग (PLANNING COMMISSION):** स्वतंत्रता के बाद **नवम्बर, 1947** में कांग्रेस ने **जवाहर लाल नेहरू** (JawaharLal Nehru) की अध्यक्षता में आर्थिक कार्यक्रम समिति की नियुक्ति की जिसने अपना प्रतिवेदन जनवरी, 1948 में प्रस्तुत किया, जिसमें एक स्थायी योजना आयोग के स्थापना की सिफारिश की गयी। भारत सरकार के **15 मार्च, 1950** के एक संकल्प के द्वारा योजना आयोग की स्थापना की गयी। योजना आयोग की सरकार के लिए सलाहकारी भूमिका होती है। प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं। आयोग का उद्देश्य देश के संसाधनों का प्रभावी दोहन करके दीर्घकालिक सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए योजनाओं का प्रस्ताव करना है। इसे देश के समस्त संसाधनों का मूल्यांकन करके, कमी वाले संसाधनों को बढ़ा करके, संसाधनों के अत्यधिक प्रभावी और संतुलित उपयोग के लिए योजनाएं बनाने और प्राथमिकताएं निश्चित करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 में आरम्भ की गयी। योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद के व्यापक मार्ग निर्देशन के अंर्तगत कार्य करता है। यह मानव विकास तथा आर्थिक विकास के अतिमहत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए नीति तैयार करने हेतु व्यापक दृष्टिकोण पैदा करने के लिए एकीकृत भूमिका निभाता है। आयोग इस बात पर भी जोर देता है कि देश के सीमित संसाधनों का उपयोग इस प्रकार हो कि उससे देश का उत्पादन अधिकतम हो सके।आयोग के उपाध्यक्ष और पूर्वकालिक सदस्य के संगठित निकाय के रूप में पंचवर्षीय योजनाओं, वार्षिक योजनाओं, राज्य योजनाओं, निगरानी योजनाओं और स्कीमों को तैयार करने के लिए विषय प्रयोगों का परामर्श और मार्ग निर्देश देते हैं। आयोग अनेक प्रभागों के माध्यम से कार्य करता है। प्रत्येक प्रभाग एक वरिष्ठ अधिकारी के अधीन होता है।

2. **राष्ट्रीय विकास परिषद (NATIONAL DEVELOPMENT COUNCIL):** समय–समय पर योजनाओं की कार्यविधि के विभिन्न पक्षों की पुनरीक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा **अगस्त 1952** के प्रस्ताव के अनुरूप **राष्ट्रीय विकास परिषद** की स्थापना की गयी। भारत के प्रधानमंत्री, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री

तथा योजना के सदस्य इसके सदस्य हैं। परिषद का मुख्य कार्य योजना आयोग द्वारा तैयार की गयी योजनाओं पर विचार विमर्श करना और उसकी स्वीकृति देना है। परिषद की स्वीकृति के बाद ही योजना के मसौदे को संसद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए रखा जाता है।

6.6 योजना निर्माण की प्रक्रिया (THE PROCESS OF ECONOMIC PLANNING):

सफल आर्थिक नियोजन के लिए निम्नलिखित चीजें आवश्यक हैं।

1. **योजना प्राधिकरण (PLANNING AUTHORITY):** सफल नियोजन के लिए राज्य द्वारा स्थापित एक योजना आयोग होना आवश्यक है जो कि संसाधनों के सर्वेक्षण, उद्देश्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण, योजना, रणनीति इत्यादि कार्य करता है।
2. **संसाधनों का सर्वेक्षण तथा आवश्यक आंकड़ों का संग्रहण (SURVEY OF RESOURCES AND COLLECTION OF NECESSARY DATA):** संसाधनों का सर्वेक्षण उचित आयोजन के लिए जरूरी है। देश में उपलब्ध समस्त भौतिक मानवीय तथा पूँजीगत संसाधनों का विश्वसनीय आंकड़ा योजना प्राधिकरण के पास होना आवश्यक है क्योंकि संसाधनों की उपलब्धता ही अंततः योजना के आकार का निर्धारण करती है।
3. **उद्देश्यों का निर्धारण (DETERMINATION OF OBJECTIVES):** नियोजन में स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्यों का निर्धारण होता है, जिसकी प्राप्ति के लिए नियोजन के अंतर्गत प्रयास किए जाते हैं। विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजना प्राधिकरण योजना में विभिन्न क्षेत्रों के लिए लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का भी निर्धारण करता है।

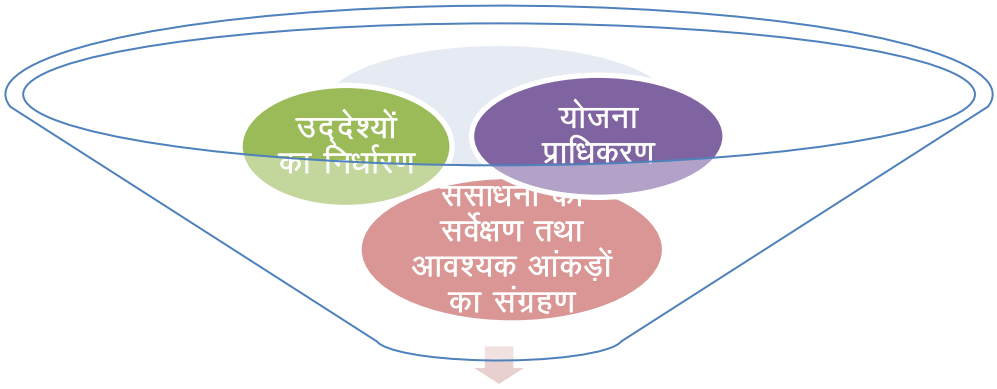

सफल आर्थिक नियोजन

6.6.1 भारत में योजना निर्माण की प्रक्रिया (PLANNING PROCESS IN INDIA)

भारत में पंचवर्षीय योजनाएं आर्थिक विकास तथा संवृद्धि के आयामों का निर्धारण करती है तथा समष्टि आर्थिक दरों के लिए लक्ष्यों का निर्धारण करती है। इस प्रकार योजनाएं निवेश के कार्यक्रमों तथा गतिविधियों के जरिए देश की अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा में ले जाने का प्रयास करती हैं।

भारतीय नियोजन प्रक्रिया देश में उपलब्ध निवेश योग्य संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग पर जोर देती है। इस प्रक्रिया में सम्मिलित है –

1. विकास के लिए रणनीतियों तथा सहायक नीतियों का वर्णन
2. आर्थिक संवृद्धि के लिए समष्टि चरों के संबंध में लक्ष्य निर्धारण तथा इसकी क्षेत्रीय प्रवृत्तियां
3. राज्य तथा केन्द्र के बीच तथा विभिन्न क्षेत्रीय गतिविधियों के लिए संसाधनों का आवंटन और बजटीय सहायता का आवंटन
4. विकास प्रक्रिया पर प्रभाव डालने के लिए लागू किए जाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओं/प्रोजेक्ट/स्कीमों पर विचार

उपरोक्त योजना प्रक्रिया में एक बड़ा क्षेत्र सम्मिलित है और इसमें सरकार के अंदर तथा बाहर विभिन्न संस्थाओं तथा संगठनों को सम्मिलित किया जाता है जैसे–केन्द्रीय मंत्रालय, भारतीय रिजर्व बैंक, राज्य सरकार, जमीनी तथा निचले स्तर पर कार्य करने वाला प्रशासन और राजनीतिक नेतृत्व।

पंचवर्षीय योजना के निर्माण की शुरुआत दृष्टिकोण पत्र तैयार करने से होती है। योजना आयोग विभिन्न व्यक्तियों, संगठनों और सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों से विचार विमर्श के बाद दृष्टिकोण पत्र तैयार करता है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में पहले की योजनाओं की अपेक्षा कहां अधिक व्यापक परामर्श किया गया है, जिसमें अनेकों संगठनों व व्याक्तियों ने विभिन्न संचार माध्यमों से भाग लिया। इसके बाद योजना आयोग इस दृष्टिकोण पत्र को राष्ट्रीय विकास परिषद के पास विचार तथा स्वीकृत के लिए भेजता है। राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद दृष्टिकोण पत्र को राज्य सरकार तथा केन्द्रीय मंत्रालयों को वितरित कर दिया जाता है। योजना निर्माण के दौरान जुड़े संगठनों जैसे भारतीय रिजर्व बैंक को भी इसे वितरित किया जाता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत दृष्टिकोण पत्र में रखे मानकों के आधार पर, केन्द्रीय मंत्रालय और राज्य अपनी संबंधित योजनाएं तैयार करते हैं। इसके लिए बड़ी संख्या में स्टीयरिंग कमेटी/कार्यदल बनाए जाते हैं जिसमें संबंधित मंत्रालयों के प्रतिनिधि, चुने हुए विद्वान, राज्य सरकारें, निजी क्षेत्र, गैर सरकारी संगठन इत्यादि होते हैं। इन समितियों तथा कार्य दलों की रिपोर्ट के आधार पर राज्य तथा केन्द्रीय मंत्रालय अपने विस्तृत योजनाओं तथा कार्यक्रमों के साथ अपना प्रस्ताव ले आते हैं। योजना आयोग केन्द्र तथा राज्य योजनाओं के इन योजनाओं तथा कार्यक्रमों की समीक्षा करता है और एक विस्तृत योजना तैयार करता है।

राष्ट्रीय योजना में केन्द्रीय योजना, जो कि केन्द्रीय सरकार तैयार करती है तथा राज्य योजना, जो कि राज्य सरकार द्वारा तैयार की जाती है, होती है। योजना आयोग केन्द्रीय तथा राज्य योजनाओं को एकीकृत कर राष्ट्रीय योजना का निर्माण करता है और इसके लिए वह विभिन्न स्तरों पर बहसों व समीक्षाओं की प्रक्रिया का सहारा लेता है। इसके तहत योजना आयोग राष्ट्रीय संसाधनों के आकार का अनुमान करता है, भुगतान संतुलन की स्थिति का आंकलन कर, बाह्य संसाधनों का अनुमान करता है, आयातों व निर्यातों तथा विदेशी पूंजी के प्रवाह का अनुमान करता है और वृद्धि मान पूंजी उत्पादन अनुपात का आकलन करता है।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में पंचवर्षीय योजना प्रपत्र, योजना आयोग द्वारा तैयार किया जाता है जिसमें योजना के उद्देश्यों, योजना का विस्तृत विवरण, विकास परिदृश्य, समष्टि आर्थिक आयाम, नीतिगत ढांचा, वित्तीयन का तरीका तथा क्षेत्रगत

नीतियों का ब्यौरा होता है। तब योजना आयोग अंतिम योजना प्रपत्र राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष विचार तथा स्वीकृत के लिए प्रस्तुत करता है।

पंचवर्षीय योजनाओं को वार्षिक योजनाओं के जरिए लागू किया जाता है। वार्षिक योजनाओं में राज्य तथा केन्द्र के बीच संसाधनों के आवंटन का विस्तृत विवरण होता है और सरकार की विभिन्न क्षेत्र की गतिविधियों का भी ब्यौरा होता है। साथ ही इसमें बजटीय संसाधनों का आवंटन तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रोजेक्ट, कार्यक्रमों तथा स्कीमों का विस्तृत विचार किया जाता है। सरकारी व्यय की स्वीकृति वार्षिक बजट से प्रभावित होती है जो कि प्रतिवर्ष संसद द्वारा पास की जाती है। वार्षिक बजट में सरकार के संसाधनों तथा व्यय का आवंटन पंचवर्षीय योजनाओं को ध्यान में रखते हुए होता है।

6.6.2 भारत में आर्थिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ

भारत में नियोजन को सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में लागू किया गया। नियोजन का विशेष महत्व भारत में इसलिए था क्योंकि नियोजन का कार्य एक लोकतांत्रिक और संघीय प्रणाली के दायरे में किया जाने वाला था। नियोजन अत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वाधीनता और सामाजिक न्याय के प्राप्ति के लिए भारत के संघर्ष में पर्याय बन गया। लोकतांत्रिक ढांचे के अंतर्गत **'समाजवादी ढंग के समाज'** के स्थापना का सपना हमारे नीति निर्माताओं ने देखा था। इसीलिए मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत **'लोकतांत्रिक समाजवाद'** की स्थापना के लिए भारत ने आर्थिक नियोजन का रास्ता चुना। इसीलिए यह नियोजन समाजवादी देशों के आदेशात्मक नियोजन से भिन्न था, दूसरी तरफ पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के विपरीत निजी क्षेत्र तथा बाजार तंत्र पर नियंत्रण और नियमन के लिए अनेक उपाय भी किए गए।

भारतीय नियोजन की प्रमुख विशेषाताएं निम्नलिखित हैं :

1.सांकेतिक आयोजन (SYMBOLIC PLANNING): भारतीय नियोजन का स्वरूप सांकेतिक या निर्देशात्मक है। ऐसी मिश्रित अर्थव्यवस्था जिसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों का सहअस्तित्व है, की प्रणाली के कारण है। यह विभिन्न आर्थिक एजेण्टों को उन उद्देश्यों से अवगत कराती है जिसे प्राप्त करने का प्रयास करना है। साथ ही उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त तथा उपलब्ध साधनों का भी बोध करती है। योजना में उस समयावधि का भी उल्लेख किया जाता है जिसके भीतर वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की जानी है।

इस प्रकार भारतीय नियोजन के अंतर्गत किसी भी कार्य के लिए अनिवार्यता का तत्व निहित नहीं होता है। भारतीय योजनाएं उन क्षेत्रों के लिए भी लक्ष्यों को निर्धारित करती हैं जिन पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होता है। सरकार निजी क्षेत्र को विभिन्न प्रकार की प्रोत्साहनात्मक कार्यवाही द्वारा सुविधाएं प्रदान करती हैं और आधारिक संरचना का सृजन करती है। सरकार निजी क्षेत्र को स्पष्ट आदेश न देकर केवल उनके कार्यदशा और कार्य पद्धति के प्रति संकेत करती है। यद्यपि कुछ आर्थिक क्रियाओं पर नियमन और नियंत्रण की व्यवस्था होती है परन्तु समान्यतया निजी क्षेत्र पर नियंत्रण काफी कम होते हैं।

2. राज्य की भूमिका (ROLE OF STATE): उदारीकरण के शुरुआत से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी। नियोजन की शुरुआती अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र को **''नियंत्रणकारी ऊँचाई''** (Commanding Heights) पर पहुंचाने की बात कही गयी, जहां से यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को नियंत्रित व नियमित कर सके।

आयोजनागत विकास की प्रारम्भिक अवस्था में राज्य से यह अपेक्षा की गयी कि वह अपने न्यूनतम अपेक्षित कार्यों तथा, सामाजिक तथा आर्थिक आधारिक संरचना का प्रावधान, से आगे जाकर अर्थव्यवस्था में 'सक्रिय' हस्तक्षेप करेगा और निम्नलिखित तरीकों से बाजार तंत्र को नियमित तथा नियंत्रित करेगा –

(क) आक्रामक राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के द्वारा,

(ख) प्रत्यक्षरूप से उत्पादन गतिविधियों में भाग लिए बिना बाजार में हस्तक्षेप के द्वारा,

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से प्रत्यक्षतः उत्पादक आर्थिक गतिविधियों में भाग लेकर, अर्थात उत्पादन के संसाधनों पर अपने स्वामित्व के विस्तार के द्वारा।

इसका मुख्य मन्तव्य यह था कि सरकार निजी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियों की गति, साथ ही उसकी संरचना को नियंत्रित करके अपने सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त कर सके। परन्तु उदारीकरण के दौर में आयोजन बाजारोंन्मुख हो गया है। अब सरकार भी अधिकतर निर्णय बाजार के नियमों के अनुसार ही लेती है। निजी क्षेत्र के छूट का काफी विस्तार हुआ है और सार्वजनिक क्षेत्र में हिस्से में लगातार कटौती की गयी है। राज्य की भूमिका कम होने के साथ साथ आयोजन की व्याप्ति और तकनीकी में बदलाव आया है। इसके बावजूद आज भी सभी राजनीतिक दल सामाजिक आर्थिक विकास के एक वांछित और आवश्यक साधन के रूप में नियोजन की धारणा से प्रतिबद्ध हैं।

3. व्यापक योजनाएँ (COMPREHENSIVE SCHEMES): भारतीय नियोजन अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को अपने अन्दर समाहित करने का प्रयास करता है। इस अर्थ में इसकी व्यापकता काफी महत्वपूर्ण है। इसमें कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र, सभी से संबंधित आर्थिक गतिविधियों के सम्बन्ध में लक्ष्य निर्धारण किए जाते हैं तथा सम्बन्धित नीतियाँ बनायी जाती हैं। इस दृष्टि से इसका स्वरूप कुछ–कुछ समाजवादी नियोजन से मिलता है।

4. विकेन्द्रिक आयोजन (DECENTRALIZE PLANNING): भारत में योजनाओं को बनाने एवं उसके क्रियान्वयन में व्यापक विकेन्द्रीकरण है। इस विकेन्द्रित स्वरूप के कारण केन्द्र व राज्यों के अतिरिक्त विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ–साथ व्यापक स्तर पर लोगों की भागीदारी योजनाओं में होती है। विभिन्न विषयों और क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेषज्ञों की एजेन्सियाँ जो योजनाएँ तैयार करती हैं, उन पर जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से विचार–विनिमय करती हैं और अपना मत देती हैं।

आयोजन तंत्र में केन्द्रीय स्तर पर योजना आयोग, राज्य स्तर पर योजना विभाग और स्थानीय स्तर पर नगर निगम और ग्राम पंचायत सम्मिलित हैं।

इस प्रक्रिया में गैर सरकारी संगठन भी भाग लेते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय विकास परिषद जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं, इन योजनाओं की जांच करती है और आवश्यक संशोधन करती है। विशेषकर हाल के वर्षों में योजना का विकेन्द्रित स्वरूप और स्पष्टता के साथ सामने आया है।

5. **भौतिक आयोजन (PHYSICAL PLANNING):** नियोजन के प्रारम्भ में हमारे नीति निर्माताओं का यह मानना था कि जो कुछ भौतिक दृष्टि से संभव है वह वित्तीय दृष्टि से भी सम्भव होगा। इसलिए योजनाओं में वित्तीय नियोजन की जगह भौतिक नियोजन को अधिक महत्व दिया गया। अर्थात योजना के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संसाधनों का आवंटन श्रम, पदार्थ, ऊर्जा आदि के रूप में किया गया न कि वित्तीय साधनों के रूप में। इससे नियोजन के दौरान वित्तीय मोर्चे पर परेशानियों का सामना करना पड़ा।

6. **विकासोन्मुख आयोजन (DEVELOPMENT-ORIENTED PLANNING):** भारतीय योजनाएं अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर लोगों में रहन–सहन के स्तर को सुधारने पर जोर देती हैं। आर्थिक एवं सामाजिक आधारिक संरचना के निर्माण तथा पूँजीगत वस्तु उद्योगों के विकास में योजनाओं की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। प्रत्येक योजना के अत्यधिक पूँजीनिर्माण पर जोर दिया जाता रहा है जिससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो। हाल के वर्षों में इस प्रवृत्ति में थोड़ा अन्तर दिखाई देता है।

7. **सामाजिक आयोजन (SOCIAL PLANNING):** भारतीय नियोजन का स्वरूप समाजिक है। यहां योजनाओं पर राजनीतिक वातावरण के प्रभावित करने वाले कारकों का प्रभाव बड़े ही स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। सरकारी नीतियाँ विभिन्न दबाव समूहों के हितों को ध्यान में रखकर बनाई जाती रही हैं जिससे प्रायः योजना की वास्तविक उपलब्धि, उसके निर्धारित उद्देश्यों से भिन्न रही है।

8. **सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि (ECONOMIC GROWTH WITH SOCIAL JUSTICE):** अर्थव्यवस्था में उत्पादन वृद्धि के साथ–साथ बेरोजगारी, गरीबी तथा असमानताओं में कमी, भारतीय नियोजन की प्रमुख विशेषता रही है। प्रारम्भिक योजनाओं में, हालांकि संवृद्धि पर विशेष जोर रहा, लेकिन 'रिसन–प्रभाव' की असफलता के कारण बाद में रोजगार सृजन से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम चालू किए गए और गरीबी उन्मूलन पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया।

9. **आंकड़ों की अविश्वसनीयता (UNRELIABILITY OF DATA):** भारत में आंकड़ों की गुणवत्ता अच्छी नहीं है। पर्याप्त विश्वसनीय आंकड़ों के अभाव में नियोजन की सफलता अटकलबाजी मात्र हो जाती है। आंकड़ों के संकलन और विश्लेषण में अधिक समय लगने से भी उनका महत्व कम हो जाता है।

6.7 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर्थिक नियोजन से क्या अभिप्राय है?
2. भारत में आर्थिक नियोजन का स्वरूप क्या है?
3. योजना आयोग का क्या कार्य है?
4. स्वतंत्रता के समय नियोजित विकास का रास्ता अपनाए जाने के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कीजिए।
5. सांकेतिक नियोजन क्या है?
6. सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि से आप क्या समझते हैं?
7. मिश्रित अर्थव्यवस्था क्या है?
8. बाजार तंत्र से क्या तात्पर्य है?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से क्या नियोजन के लिए आवश्यक नहीं है?
   (क) पूर्व निर्धारित उद्देश्य (ख) निश्चित समयावधि
   (ग) कीमत तंत्र (घ) निश्चित संसाधन
2. भारत में आर्थिक नियोजन निम्नलिखित ढांचे में लागू किया गया।
   (क) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (ख) मिश्रित अर्थव्यवस्था
   (ग) समाजवादी अर्थव्यवस्था (घ) साम्यवादी अर्थव्यवस्था
3. निम्नलिखित में से कौन भारतीय नियोजन की विशेषता नहीं है।
   (क) निर्देशात्मक नियोजन (ख) आदेशात्मक नियोजन
   (ग) विकेन्द्रित नियोजन (घ) भौतिक नियोजन
4. भारतीय नियोजन है
   (क) केन्द्रिकृत नियोजन (ख) पूँजीवादी नियोजन
   (ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था नियोजन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

1. योजना आयोग की स्थापना ———————— हुई।
2. योजना आयोग का अध्यक्ष ———————— होता है।
3. राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना वर्ष ———————— है।
4. 'बाम्बे प्लान' ———————— द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

4. सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. योजना आयोग की भूमिका सलाहकारी होती है।
2. राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद ही कोई योजना संसद में पेश की जाती है।
3. श्रीमननारायण ने स्वतंत्रता से पहले गांधीवादी विचारों पर आधारित 'गांधियन प्लान' प्रस्तुत किया।
4. 'ए प्लान फॉर इकोनॉमिक डेवलपमेंट फॉर इण्डिया' को 'पीपुल्स प्लान' भी कहा जाता है।
5. गरीबी तथा बेरोजगारी जैसी अनेक आर्थिक समस्याओं से निपटने में आर्थिक नियोजन आवश्यक है।

6.8 सारांश (SUMMARY)

समानता के साथ विकास की उच्च संवृद्धि दरों को प्राप्त करने के लिए, मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में भारत ने आर्थिक नियोजन का रास्ता चुना। नियोजन आत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वाधीनता तथा समाजिक न्याय की प्राप्ति का एक प्रभावी उपकरण रहा है। एक ऐसे देश में जहां सीमित संसाधनों से लोगों को आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करनी हो, वहां संसाधनों का, समाज के बड़े तबके की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सामाजिक हित के लिए अनुकूलतम आवंटन आर्थिक नियोजन के माध्यम से ही सम्भव है। भारत में स्वतंत्रता के बाद गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विकास जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहा गतिहीन अर्थव्यवस्था को विकास के रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए आर्थिक नियोजन की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद के व्यापक निर्देशन में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए महत्वपूर्ण नीतियाँ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।

भारत में आर्थिक नियोजन का कार्य एक लोकतांत्रिक और संघीय प्रणाली के दायरे में रहा है जहां निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सहअस्तित्व है। यहां नियोजन का स्वरूप निर्देशात्मक रहा है। नियेाजन के प्रारम्भिक वर्षों में जहां सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गयी थी वहां हाल के दो दशकों से निजी क्षेत्र का महत्व बढ़ा है। भारतीय योजना में काफी व्यापक तथा विकासोन्मुख रही हैं। यहां वित्तीय आयोजन की अपेक्षा भौतिक आयोजन पर अधिक जोर रहा है। साथ ही कमोवेश योजना निर्माण तथा क्रियान्वयन में विकेन्द्रित स्वरूप की रही है।

6.9 शब्दावली (GLOSSARY)

- **आर्थिक नियोजन (ECONOMIC PLANNING):** नियोजन निश्चित संसाधनों के द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की एक सुविचारित क्रिया है, जिसके अंतर्गत एक निश्चित समयावधि और क्षेत्र के लिए योजना बनायी जाती है, जिसमें देश के उद्देश्यों और उन्हें प्राप्त करने के साधनों का उल्लेख होता है तथा इसका नियंत्रण व नियमन राज्य द्वारा किया जाता है।
- **बाजार तंत्र (MARKET SYSTEM):** ऐसी प्रणाली जिसमें सारे आर्थिक निर्णय कीमत तंत्र अर्थात् मांग और पूर्ति की शक्तियों के द्वारा लिए जाते हैं।
- **मिश्रित अर्थव्यवस्था (MIXED ECONOMY):** ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों मिलकर कार्य करते हों और दोनों का सहअस्तित्व हो।
- **सांकेतिक या निर्देशात्मक नियोजन (SYMBOLIC OR INSTRUCTIONAL PLANNING):** जब नियोजन का स्वरूप अप्रत्यक्ष होता है और सरकार सिर्फ उस दिशा की रूपरेखा प्रस्तुत करती हो, जिस ओर अर्थव्यवस्था को ले जाना है। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह उपयुक्त साधनों पर भी प्रकाश डालती है। उद्देश्य प्राप्ति के साधन प्रेरकों और प्रोत्साहनों (धनात्मक तथा ऋणात्मक) के रूप में होते हैं। जो आर्थिक एजेण्टों को उद्देश्यों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं और अवांछनीय दिशा की ओर बढ़ने की दशा में हतोत्साहित करते हैं। निर्देशात्मक नियोजन में संवृद्धि का प्रेरणा स्रोत और आधार नीतिक्षेत्र होता है। योजनाओं में किसी भी कार्य के लिए

कोई अपरिहार्यता या अनिवार्यता नहीं होती। इसे प्रेरणा द्वारा आयोजन भी कहा जाता है।

- **भौतिक नियोजन (PHYSICAL PLANNING):** जब योजना के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संसाधनों का आवंटन श्रम, पदार्थ, ऊर्जा आदि रूप में होता है तो उसे भौतिक आयोजन कहते हैं।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (ग) कीमत तंत्र
2. (ख) मिश्रित अर्थव्यवस्था
3. (ख) आदेशात्मक नियोजन
4. (ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था नियोजन

3. **रिक्त स्थान की पूर्ति करें** ।

1. 15 मार्च, 1950,
2. प्रधानमंत्री
3. अगस्त, 1952
4. शीर्ष आठ उद्योगपतियों द्वारा

4. सत्य/असत्य

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

6.11 संदर्भ–ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Bimal Jalan, India's Economic Policy, Viking, New Delhi, 1996
- Bimal Jalan, The India's Economy: Problems and Prospects, Viking, New Delhi, 1992.
- Govt. of India, Planning Commission, IInd, Five Year Plan, Delhi, 1956
- Govt. of India, Planning Commission, Reference Material 2010, Notes On The Functioning Of Various Divisions, New Delhi
- Terance J. Byres, The Indian Economy Major Debates Since Independence, Oxford University Press, Delhi, 1998
- Uma Kapila and Raj Kapila, Indian Economy since indepencence Academic foundatian, 2009, New Delhi.
- M.L. Jhingan, The Economics of Development and Planning, Vrinds, 2006.
- S.K. Mishra and V.K. Puri, Economics of Development and Planning, Himalaya Publishing House, 2008.
- D.R. Gadgil, "Planning without a Policy frame", in Charan D. Vidawa (ed), Some Problems of India's Economic Policy (New Delhi, 1977)
- Ashok Rukoa, Planning in India : An Evaluation in Terms of its Models, Eonomic & Political weekly, April 27, 1985

6.12 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ (USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- Vaidya Nathan, The Indian Economy Crisis, Response and Prospects, Orient Longman Ltd. Hyderabad, 1995.
- S.K. Mishra and V.K. Puri, Indian Economy, Himalaya Publishing House, 2008.
- Ruddar Dutt and L.P.M. Sundaram, Indian Economy. S. Chand and Company Ltd. 2008.
- Indian Economy, A.N. Agrawal, Wishwa Prakashan Ltd. New Delhi, 2008
- J.N. Bhagwati and S. Chakrawarty, Contibution to Indian Economic Analysis - A survey (Bombay 1971)
- डा0 बद्री विशाल त्रिपाठी, भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल, इलाहाबाद 2004।
- डा0 एस0के0 मिश्रा तथा डा0 वी0के0 पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया प्रकाशन, दिल्ली 2009।
- डा0 रुद्र दत्त तथा डा0 के0पी0एम0 सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द प्रकाशन,दिल्ली 2009।

6.13 निबंधात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. आर्थिक नियोजन क्या है? अल्पविकसित देशों में नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि तथा योजना निर्माण प्रक्रिया पर एक निबन्ध लिखिए।
3. भारत के आर्थिक नियोजन की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–7 आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तक) (ACHIEVEMENTS OF ECONOMIC PLANNING (TILL THE ELEVENTH FIVE YEAR PLAN))

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
7.3.1 आर्थिक संवृद्धि
7.3.2 पूर्ण रोजगार
7.3.3 गरीबी निवारण
7.3.4 आर्थिक समानताओं में कमी
7.3.5 आत्मनिर्भरता
7.3.6 आधुनिकीकरण
7.4 आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ
7.4.1 संवृद्धि प्रक्रिया की शुरुआत
7.4.2 कृषि क्षेत्र में प्रगति
7.4.3 औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि
7.4.4 बचत व निवेश दरों में वृद्धि
7.4.5 आधारिक संरचना का विकास
7.4.6 सामाजिक ऊपरी पूँजी संरचना का विकास
7.4.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास
7.4.8 निर्यात का विविधीकरण तथा आयात प्रतिस्थापन
7.4.9 अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तन
7.5 आर्थिक नियोजन का मूल्यांकन
7.5.1 नियोजन रणनीति
7.5.2 नियोजन के उद्देश्य
7.5.3 कृषि क्षेत्र तथा ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा
7.5.4 व्यापक गरीबी
7.5.5 रोजगार में धीमी वृद्धि
7.5.6 आय व धन की असमानताओं में वृद्धि
7.5.7 कार्यान्वयन की विफलता
7.5.8 नियोजन के उद्देश्यों तथा आर्थिक नीतियों में सामंजस्य का अभाव
7.6 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना
7.6.1 ग्यारहवीं योजना के पालनीय लक्ष्य
7.6.2 समष्टि आर्थिक ढांचा
7.6.3 मध्यावधि समीक्षा

7.7 अभ्यास प्रश्न
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.12 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था के खण्ड दो ''पंचवर्षीय योजनाएं एवं आर्थिक विकास की समस्याएं'' से संबंधित यह दूसरी इकाई है। इस खण्ड की पहली इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप आर्थिक नियोजन की विशेषताओं, उसकी प्रासंगिकता तथा योजना निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में बता सकते हैं।

प्रस्तुत इकाई में भारत में अब तक की पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य तथा उपलब्धियों पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- ✓ भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
- ✓ भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ✓ नियोजन का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ✓ ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तथा उसकी मध्यावधि समीक्षा को जान सकेंगे।

7.3 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य (OBJECTIVES OF ECONOMIC PLANNING)

किसी भी नियोजन का उद्देश्य देश, काल और परिस्थिति पर निर्भर करता है। भारतीय योजनाओं में भी देश की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप उद्देश्य का निर्धारण किया गया, फिर भी भारतीय संविधान के नीति निर्देशन सिद्धान्तों के अनुरूप भारतीय आर्थिक नियोजन के दीर्घकालिक उद्देश्य काफी स्पष्ट हैं। अलग–अलग योजनाओं में निर्धारित उद्देश्यों में भिन्नता होने के बावजूद ये दीर्घकालिक उद्देश्य प्रत्येक योजना के मूल में रहे हैं।

7.3.1 आर्थिक संवृद्धि (ECONOMIC GROWTH)

भारत की सभी पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यस्था के सभी क्षेत्रों के विकास के द्वारा आर्थिक संवृद्धि की दर को तेज करना रहा है। जिससे राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि हो सके। प्रारम्भिक योजनाओं में इस मान्यता के साथ संवृद्धि दर को तेज करने के प्रयास किए गए है कि इसका लाभ रिस–रिस कर समाज के निचले, कमजोर और उपेक्षित तबके तक पहुंचेगा और गरीबी दूर होगी तथा आम लोगों के जीवन के रहन–सहन के स्तर में सुधार होगा। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ और गरीबी, बेरोजगारी तथा आर्थिक असमानता में कमी नहीं आयी। क्योंकि संवृद्धि अर्थात उत्पादन वृद्धि के लाभ समाज के ऊँचे अर्थात सम्पन्न तबके तक ही सीमित रहे।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के स्वरूप तथा उनके अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों और साधनों के विभिन्न क्षेत्रों के बीच आवंटन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योजनाओं ने उत्पादन वृद्धि पर ही अधिक ध्यान दिया। योजनाओं की सफलता और असफलता का मूल्यांकन भी आर्थिक संवृद्धि की दर से ही किया जाता रहा है।

योजनाओं में संवृद्धि का उद्देश्य इतना महत्वपूर्ण रहा है कि उसकी संरचना पर ध्यान नहीं दिया गया। इसीलिए बढ़ती गरीबी और असमानता के लिए 1970 के बाद 'गरीबी हटाओ' तथा 'सामाजिक न्याय के साथ विकास' का नारा देना पड़ा।

7.3.2 पूर्ण रोजगार

रोजगार के अवसरों को बढ़ाकर बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध कराना तथा अल्प रोजगार वालों को पूरा रोजगार दिलाना, जिससे गरीबी दूर हो सके, योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य रहा है। यद्यपि सभी पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य रोजगार में वृद्धि रही है। परन्तु किसी भी योजना में इसे मुख्य उद्देश्य के रूप में प्राथमिकता नहीं दी गयी। अनेक अर्थशास्त्रियों का मत है कि भारत में कोई रोजगार युक्ति रहीं ही नहीं है। प्रारम्भ में यह मान लिया गया कि निवेश में वृद्धि से रोजगार में तथा राष्ट्रीय आय में साथ–साथ वृद्धि होगी।

पहली बार जनता सरकार द्वारा तैयार की गयी छठी योजना (1978–83) में रोजगार को संवृद्धि के ऊपर प्राथमिकता देते हुए मुख्य उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया, परन्तु वास्तविक छठी योजना (1980–85) में पुनः रोजगार एक गौण उद्देश्य के रूप में ही सामने आया। सातवीं और फिर आठवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार को प्राथमिकता दी गयी, परन्तु विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए किसी स्पष्ट रोजगार युक्ति का अभाव रहा। उदारीकरण के बाद के वर्षों में रोजगार सृजन मुख्यतः अर्थव्यवस्था कीर्तन संवृद्धि व विकास से जुड़ा है जो कि मुख्यतः बाजार अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। सरकार ने विभिन्न रोजगार सृजन योजनाओं के माध्यम से अकुशल रोजगार सृजित करने का प्रयास किया है परन्तु बढ़ती श्रमशक्ति को देखते हुए ये अपर्याप्त है।

7.3.3 गरीबी निवारण (POVERTY ALLEVIATION)

सामाजिक न्याय सुनिश्चित कर **'समाजवादी ढंग के समाज'** की स्थापना की ओर प्रयास ही योजनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। गरीबी और आर्थिक असमानताओं में कमी अल्प सामाजिक न्याय की मांग है।

प्रारम्भ में 'रिसन प्रभाव' की परिकल्पना के कारण योजनाकारों ने गरीबी निवाकरण को आर्थिक नियोजन का उद्देश्य नहीं माना। परन्तु संवृद्धि के लाभ गरीबों तक नहीं पहुंचने के कारण पहली बार पांचवी पंचवर्षीय योजना में गरीबी हटाने की बात कही गयी और **गरीबी निवारण सम्बन्धी कार्यक्रमों** की शुरुआत हुई। आगे की योजनाओं में इस तरह के कार्यक्रमों की व्यापकता बढ़ी और समय–समय पर नये कार्यक्रम भी चालू किए गए। परन्तु आयोजन के छः दशक बाद भी लगभग एक तिहाई से अधिक जनसंख्या (योजना आयोग द्वारा गठित तेन्दुलकर समिति के अनुसार 2004–05 में 37.2%) गरीबी रेखा के नीचे है।

7.3.4 आर्थिक समानताओं में कमी (LACK OF ECONOMIC INEQUALITY)

सामाजिक न्याय का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू आर्थिक असमानताओं में कमी करना है। यद्यपि विभिन्न योजनाओं में, विशेषकर प्रारम्भिक योजनाओं में, असमानताओं में कमी का उल्लेख किया गया है। परन्तु किसी भी योजना का यह मुख्य उद्देश्य नहीं

रहा। किसी भी पंचवर्षीय योजना में देश में आय व सम्पत्ति की असमानताओं के अनुमान नहीं दिए गए हैं। इसका प्रमुख कारण 'रिसन प्रभाव' की परिकल्पना थी। आय व सम्पत्ति की असमानताओं को कम करने के लिए भी तेज आर्थिक संवृद्धि जरूरी समझा गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के बाद गरीबी निवारण के उद्देश्यों में कुछ प्राथमिकता दी गयी परन्तु असमानताओं में कमी के उद्देश्य को नजरअंदाज किया गया। उदारीकरण की नीति के पश्चात् तो आर्थिक नीतियों में इस उद्देश्य की चर्चा करना भी बेमानी है। आय व धन का संकेन्द्रण आज कहीं अधिक तेजी से बढ़ता जा रहा है।

7.3.5 आत्मनिर्भरता (SELF RELIANCE)

भारत में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य तेज आर्थिक विकास के साथ–साथ आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को प्राप्त करना रहा है। परन्तु आत्मनिर्भरता का लक्ष्य बदलता रहा है। यह आत्मनिर्भरता खाद्यान्नो और मशीनों तथा अन्य उपकरणों के साथ–साथ विदेशी सहायता के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण रहा है। पहली बार तीसरी पंचवर्षीय योजना में विदेशी सहायता से मुक्ति के रूप में आत्म निर्भरता का स्पष्ट उल्लेख किया गया। बाद की योजनाओं में खाद्यान्न उत्पादक से लेकर विभिन्न प्रकार के उपकरणों, मशीनों व पूंजीगत साधनों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। आत्मनिर्भरता को योजना आयोग ने बाद की योजना में प्रावैगिक अर्थों में प्रयुक्त किया। इस बात पर जोर दिया गया कि हमारे निर्यात इतने अधिक हों कि हम अपनी आयात जरूरतों तथा विदेशी लक्ष्यों से सम्बन्धित दायित्वों को पूरा कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति में भारत को काफी हद तक सफलता भी मिली। हरित क्रांति की सफलता तथा एक मजबूत व विविधीकृत औद्योगिक तथा पूंजीगत आधार इसका प्रमाण है।

7.3.6 आधुनिकीकरण (MODERNIZATION)

आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था को आधुनिक रूप देना है। अर्थात् अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन लाए जाएं कि अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर एवं प्रगतिशील बन सके। आयोजकों ने हमेशा ही आर्थिक विकास के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति को महत्वपूर्ण माना। परन्तु छठीं पंचवर्षीय योजना से पहले कभी भी आधुनिकीकरण को नियोजन के लक्ष्य के रूप में नहीं रखा गया। छठीं योजना में आधुनिकीकरण, आर्थिक क्रिया के रूप में अनेक ढांचागत और संस्थागत परिवर्तनों की ओर इशारा करता है। सावतीं योजना से आधुनिकीकरण का प्रयोग मुख्य रूप से प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के संदर्भ में किया गया। हालांकि सिर्फ इस अर्थ में उन्नत पूंजी प्रधान तकनीक से अनेकों श्रमिक बेरोजगार हो सकते हैं।

7.4 नियोजन की उपलब्धियाँ (ACHIEVEMENTS OF PLANNING)

भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन की अनेक कठिनाइयाँ व सीमाएं रही हैं। हमारी योजनाएं एकदम युक्तियुक्त भले ही नहीं रही हों और इसका निष्पादन लक्ष्य से कम रहा हो फिर भी नियोजन की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण रही हैं। नियोजन में निर्धारित उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति में योजनाओं की उपलब्धियाँ निम्नलिखित रही हैं।

7.4.1 संवृद्धि प्रक्रिया की शुरुआत (STARTING OF GROWTH PROCESS)

1951 में नियोजन की शुरुआत के बाद नियोजन अवधि में औसत वार्षिक संवृद्धि दर लगभग 4.5% रही है, जो कि औपनिवेशिक शासन काल के 20वीं सदी के पहले लगभग 50 वर्षों (1901 से 1946) की संवृद्धि दर, 1.2%, से कहीं अधिक है। पूरे नियोजन अवधि में प्रति व्यक्ति आय में लगभग 1.8% वार्षिक दर से वृद्धि हुई। जबकि स्वतंत्रता पूर्व इसमें वृद्धि नगण्य थी। उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के बाद नियोजन के माध्यम से गतिहीन अर्थव्यवस्था में उत्पादन बढ़ाने के महत्वपूर्ण प्रयास हुए। नियोजन के प्रारिम्भक दशकों में संवृद्धि दर कम रहने के बावजूद विकास प्रक्रिया को शुरु करने तथा एक मजबूत आर्थिक ढांचा खड़ा करने में सहायता मिली। इसी कारण पहले तीन दशकों में अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 3.5% थी, जिसे 'हिन्दू वृद्धि दर' कहा गया, परन्तु बाद के वर्षों में (1980–81 से 2009–10) यह दर बढ़कर 5.5% से अधिक हो गयी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना एक सफल योजना थी जिसमें उत्पादन की वृद्धि दरें, लक्ष्यों की अपेक्षा अधिक रहीं– राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दरें क्रमशः 2.1% तथा 0.9% के लक्ष्य के विपरीत 4.4% तथा 1.8% वार्षिक रहीं। दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि 4% की रही जबकि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि 2% वार्षिक थी। तीसरी योजना में वृद्धि–दर मात्र 2.6% थी, जबकि लक्ष्य 6% वार्षिक का था। इसलिए प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि मात्र 0.5% थी। भारत तथा चीन से दो युद्धों तथा 1965–66 के भीषण अकाल के कारण तीसरी योजना बुरी तरह असफल रही थी। इस कारण चौथी योजना तीन वर्ष देर से शुरु हो पायी। 1966 से 1969 के बीच तीन वार्षिक योजनाएं प्रस्तुत की गयीं। चौथी योजना के 5.7% के लक्ष्य के विपरीत वास्तविक संवृद्धि दर मात्र 3.1% वार्षिक थी। पांचवी योजना में निष्पादन थोड़ा बेहतर रहा और संवृद्धि दर 4.9% वार्षिक रही (संशोधित लक्ष्य 4.4%) छठी तथा सातवीं योजना में संवृद्धि दर क्रमशः 5.7% तथा 6.0% वार्षिक थी। स्पष्ट है कि पांचवीं योजना से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि थोड़ी प्रभावशाली दिखती है।

1990–91 तथा 1991–92 में राजनीतिक उथल–पुथल और खाड़ी संकट के कारण तेज संवृद्धि दर रह पाना संभव नहीं हुआ, इन दोनों वर्षों में संवृद्धि दर क्रमशः 5. 2% तथा 0.9% थी। आठवीं पंचवर्षीय योजना में 5.6% के लक्ष्य के विपरीत वास्तविक संवृद्धि दर 6.8% थी। हालांकि नवीं पंचवर्षीय योजना में यह कम होकर 5.4% हो गयी (लक्ष्य 6.5%)। लेकिन दसवीं योजना काफी बेहतर रही, जबकि संवृद्धि दर अब तक की किसी भी योजना से अधिक 7.8% वार्षिक थी (लक्ष्य 8.0%)। ग्यारहवीं योजना के पहले चार वर्षों में संवृद्धि दर औसतन 8.2 प्रतिशत थी।

7.4.2 कृषि क्षेत्र में प्रगति (PROGRESS IN AGRICULTURE)

कृषि एवं संवद्धि परियोजनाओं पर नियोजन काल में कुल व्यय कुल योजना परिव्यय का औसतन 23 से 24% रहा है। इससे नियोजन काल में कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। प्रारम्भिक वर्षों में कृषि आधीन क्षेत्र में विस्तार के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई जबकि बाद के दशकों में (हरित क्रांति के बाद) उत्पादन वृद्धि प्रति हेक्टेयर उत्पादन वृद्धि का परिणाम थी। 1950–51 से 2010–11 के बीच

खाद्यान्न उत्पादन 2.5% से अधिक की वार्षिक दर से बढ़ा। कुल खाद्यान्न उत्पादन जो कि 1950–51 में 51 मिलियन टन था, 2010–11 में बढ़कर 241.56 मिलियन टन हो गया।

हरित क्रांति से पहले की तीन पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजनाओं (1951–52 से 1967–68) में कृषि तथा संबंधित क्षेत्र की संवृद्धि दर 2.5% थी, जबकि चौथी व पांचवीं योजना (1968–69 से 1980–81), जो कि हरित क्रांति का काल रहा, के दौरान 2.4% रही। 1981–82 से 1990–91 के बीच (छठी व सातवीं योजना) कृषि व संबद्ध क्षेत्र की संवृद्धि दर 3.5% थी। 1991–92 से 1996–97 की अवधि में यह दर 3.7% थी। नवीं तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना (1997–98 से 2006–07) के दौरान यह मात्र 2.5% थी। गेंहूँ के उत्पादन में वृद्धि उल्लेखनीय रही है जो कि 1950–51 के 7 मिलियन टन से बढ़कर 2010–11 में लगभग 86 मिलियन टन हो गया। इसी प्रकार चावल का उत्पादन इस दौरान 21 मिलियन टन से बढ़कर 95.32 मिलियन टन हो गया। गैर–खाद्यान्न फसलों में आलू के उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई थी। आलू का उत्पादन 1950–51 में 2 मिलियन टन से बढ़कर 2008–09 में 34.4 मिलियन टन हो गया। गन्ने का उत्पादन 1950–51 में 57 मिलियन टन से बढ़कर 2010–11 में 339 मिलियन टन हो गया। इसी दौरान तिलहनों का उत्पादन 5 मिलियन टन से 31 मिलियन टन तथा कपास का उत्पादन 3 मिलियन बेल्स (Bales) से 33.4 मिलियन बेल्स हो गया।

योजना के दौरान दालों तथा मोटे अनाजों का उत्पादन संतोषजनक नहीं रहा। दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता जो कि 1956–57 में 72 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन थी, घटकर 2005–06 में 33 ग्राम हो गयी। तिलहनों की भी लगातार बढ़ती मांग को उत्पादन की वृद्धि पूरा न कर सकी तथा खाद्य तेलों के आयात में वृद्धि हुई। फिर भी सीमित भूमि सुधारों ने भी कृषि के विकास में एक महत्वपूर्ण वातावरण तैयार किया। 1965 के बाद नयी कृषि युक्ति के प्रयोग से न सिर्फ कृषि उत्पादन बढ़ा बल्कि एक बड़े क्षेत्र में खेती की तकनीक तथा उससे सम्बन्धित सोच में भी बदलाव हुआ।

7.4.3 औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि (GROWTH IN INDUSTRIAL SECTOR)

प्रथम तीन योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि काफी प्रभावशाली थी जोकि क्रमशः 5.7, 7.2 तथा 9.0% थी। परन्तु 1966 से 1975 के दौरान यह वृद्धि मात्र 3.7% रह गयी। हालांकि 1976 में वृद्धि 10.6% थी, 1976–77 से 1980–81 के बीच भी औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर मात्र 3.3% वार्षिक थी। परन्तु 1980–81 से 1990–91 के बीच यह बढ़कर 7.6% वार्षिक हो गयी। 1991–92 तथा 1992–93 में औद्योगिक उत्पादन 1.0% से भी कम की दर से बढ़ा। हालांकि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम चार वर्षों (1993–94 से 1996–97) में यह 8.6% वार्षिक हो गयी। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–98 से 2001–02) में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर कम होकर 5.5% रह गयी। परन्तु दसवीं योजना में बढ़कर यह 8.2% हो गयी हालांकि यह 10% के लक्ष्य से कम थी।

1957 के पश्चात औद्योकीकरण की प्रगति भारतीय नियोजन का प्रमुख लक्ष्य रही है। योजना काल में बिजली, परिवहन व संचार जैसी बुनियादी सेवाओं के विकास

के लिए काफी प्रयास किए गए। साथ ही भारी तथा पूंजीगत वस्तु उद्योगों में निवेश पर भी विशेष ध्यान दिया गया। इससे भारत का औद्योगिक आधार काफी मजबूत हुआ और एक विविधिकृत औद्योगिक ढांचे का निर्माण हुआ। 1956 में औद्योगिक नीति प्रस्ताव के आधीन देश में इंजीनियरिंग वस्तुओं, लोहा व इस्पात, धातु व धातु आधारित वस्तुओं, मशीनरी इत्यादि का देश में उत्पादन तेजी से बढ़ा 1980 के दशक में रसायन, पेट्रो–रसायन तथा संबद्ध उद्योगों का भी तेजी से विकास हुआ। साथ ही 1980 के बाद से टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में भी तेज वृद्धि आयी है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग का हिस्सा जो कि 1950–51 में 15.1% था 2009–10 में लगभग 26% हो गया।

7.4.4 बचत व निवेश दरों में वृद्धि (INCREASE IN SAVINGS AND INVESTMENT RATES)

नियोजन काल में सकल घरेलू बचत तथा निवेश में निरन्तर वृद्धि दर्ज हुई है। सकल घरेलू उत्पाद (G.D.P.) के प्रतिशत के रूप में सकल घरेलू बचत जो कि 1950–51 में 8.6% थी, बढ़कर 1960–61 में 17.94, 1970–71 में 14.2 प्रतिशत तथा 1980–81 में 18.5% हो गयी, जबकि इन्हीं वर्षों में निवेश दरें क्रमशः 8.4% 14%, 15. 1% तथा 19.9% थीं। पांचवीं योजना के अंतिम तीन वर्षों में बचत दर, पूंजी निर्माण दर से ऊँची थी। छठीं व सातवीं योजना में बचत तथा निवेश दरों में वृद्धि हुई। 1989–90 में बचत दर 21.8% तथा निवेश दर 24.3% हो गयी। आर्थिक सुधारों के बाद की अवधि में इसमें और तेज वृद्धि हुई। बचत दर जो कि 1996–97 में 22.7% थी 2006–07 में बढ़कर 36.5% हो गयी, जबकि निवेश दर 24 प्रतिशत से बढ़कर 36.9 प्रतिशत हो गयी।

7.4.5 आधारिक संरचना का विकास (INFRASTRUCTURAL DEVELOPMENT)

परिवहन, ऊर्जा, संचार तथा सिंचाई के विकास के लिए योजनाओं के दौरान नियोजित ढंग से विशेष प्रयास किए गए। यद्यपि निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किए जा सके लेकिन आधारिक संरचना के विकास से ही संवृद्धि दर को तेज करने में मदद मिली। 1950–51 में कुल सिंचाई संभाव्यता 2.26 करोड़ हेक्टेयर से बढ़कर 2006–07 में 10.28 करोड़ हेक्टेयर हो गयी। बिजली की कुल उत्पादन क्षमता 1951 में 2300 मेगावाट से बढ़कर जुलाई 2009 के अंत तक 1,50,574 मेगावाट हो गयी। सड़कों की लम्बाई 2.44 लाख किमी से बढ़कर 33.2 लाख किमी हो गयी।

7.4.6 सामाजिक ऊपरी पूँजी संरचना का विकास (STRUCTURAL DEVELOPMENT OF SOCIAL OVERHEAD CAPITAL)

शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास में भी नियोजन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। देश में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर सकल नामांकन का अनुपात 96% तक पहुंच चुका है, यद्यपि कक्षा 1 से 8 के बीच पढ़ाई छोड़ने वालों का प्रतिशत 51% है, जोकि काफी अधिक है। यद्यपि वांछित दर से शिक्षा का विकास नहीं हुआ है फिर भी आयोजन काल में शिक्षण संस्थानों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की संख्या में

उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। साक्षरता दर जो कि 1951 में 18.3% थी, बढ़कर 2007 में 66% हो गयी। उच्च शिक्षा के ढांचागत विकास में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। 2005–06 में देश में 378 विश्वविद्यालय और 18064 महाविद्यालय थे, जिनमें 110 लाख विद्यार्थी नामांकित थे।

योजनाकाल में स्वास्थ्य सुविधाओं का भी विकास हुआ है। भारत में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा जो कि 1950–51 में 32 वर्ष थी, बढ़कर 2000–01 में 65 वर्ष हो गयी। योजनाकाल में अस्पतालों में बिस्तरों की संख्या 8 गुना से अधिक हो गयी। डाक्टरों की संख्या लगभग 62 हजार से बढ़कर 9 लाख हो गयी।

7.4.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास (DEVELOPMENT OF PUBLIC SECTOR)

आर्थिक संवृद्धि को तेज करने में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका बड़ी अहम रही है। इसने न सिर्फ अर्थव्यवस्था में नियंत्रणकारी ऊँचाई हासिल की बल्कि आधारिक संरचना के निर्माण, भारी तथा पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन, वित्तीय संस्थाओं निर्माण व विकास, छोटी बचतों के एकत्रण आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आर्थिक नियोजन की अवधि में कुल निवेश का लगभग 40% निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में किया गया।

7.4.8 निर्यात विविधीकरण तथा आयात प्रतिस्थापन (EXPORT DIVERSIFICATION AND IMPORT SUBSTITUTION)

औद्योगिकीकरण की नीति के परिणामस्वरूप भारत के निर्यातों में लगभग 3/4 हिस्सा विर्निमित वस्तुओं का हो गया जोकि स्वतंत्रता के समय एक चौथाई से भी काफी कम था। चरणबद्ध तरीके से नियोजन के दौरान अपनायी गयी आयात प्रतिस्थापन की नीति ने देश को अनेक उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूंजीगत वस्तुओं के मामले में काफी हद तक आत्मनिर्भर बनाया।

7.4.9 अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तन (INSTITUTIONAL CHANGE IN ECONOMY)

योजनावधि में अनेक संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन हुए हैं जिससे अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ है तथा यह विकास की ओर अग्रसर हुई है। राष्ट्रीय आय की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और इसमें कृषि का हिस्सा कम होकर 56% से 15% हो गया है जबकि उद्योग और सेवा क्षेत्र का हिस्सा बढ़ा है। श्रम के व्यवसायिक वितरण में भी थोड़ा सा परिवर्तन हुआ है और कृषि पर आधारित श्रम शक्ति 52% रह गयी है, हालांकि यह काफी अधिक है। आधुनिक तकनीक का प्रयोग करने वाले उद्योगों तथा सेवा क्षेत्रों की संख्या में तेज वृद्धि हुई है। कृषि क्षेत्र में भी नयी तकनीकी का प्रयोग बढ़ा है। बैंकिग तथा वित्तीय प्रणाली के ढांचे में हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण बदलाव हुआ है तथा अर्थव्यवस्था का मौद्रीकरण बढ़ा है। निर्यातों तथा आयातों की संरचना में भी महत्वपूर्ण संरचनात्मक बदलाव हुए हैं।

7.5 आर्थिक नियोजन का मूल्यांकन (EVALUATION OF ECONOMIC PLANNING)

भारत में नियोजन का एक ठोस आर्थिक आधार है। दुर्लभ संसाधनों और विपुल आवश्यकताओं की स्थिति में आवश्यक है कि संसाधनों, और खासकर सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों, के आवंटन में विकास के उद्देश्य और प्राथमिकताएं प्रतिविंबत हों। इन संसाधनों के लिए आपस में टकरानेवाली तथा प्रतियोगी क्षेत्रीय मांगे भी सामने आती हैं। इस कारण यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि इन संसाधनों का आवंटन राज्यों के साथ विचार–विमर्श की प्रक्रिया को संस्थागत रूप देने और परस्पर विरोधी हितों और आपस में टकरानेवाली मांगों में संतुलन स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है।

भारत में नियोजन की उपलब्धियाँ काफी महत्वपूर्ण रही हैं। लेकिन नियोजन की युक्ति की अनेक कमियों के आधार पर इसकी आलोचना की जाती रही है। साथ ही योजनाओं का कार्यान्वयन भी बेहतर नहीं रहा है।

7.5.1 नियोजन की रणनीति (STRATEGY OF PLANNING)

भारतीय नियोजन का एक स्पष्ट नीतिगत ढांचा नहीं है इसीलिए राज्य प्रायः गलत दिशाओं में प्रयास करता रहा और अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में योजनाएं असफल रहीं। इससे एक तरफ राज्य के हस्तक्षेप की गुणवत्ता में गिरावट आयी, दूसरी ओर अर्थव्यवस्था बिना राज्य के हस्तक्षेप के अपना काम करती रही। किसी ठोस और स्पष्ट रणनीति के न होने के कारण राज्य निजी क्षेत्र को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप ढालने में असफल रहा तथा निजी क्षेत्र ने इन प्राथमिकताओं का उल्लंघन करके आयोजन प्रक्रिया को एक हद तक विकृत किया।

प्रारम्भिक योजनाओं में भारी उद्योगों में निवेश के लिए अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता थी, परन्तु वित्तीय साधनों के गतिशीलन के लिए कोई ठोस वित्तीय नीति नहीं बनाई गयी। घरेलू स्तर पर संसाधनों को इकट्ठा करने या उपभोग को नियंत्रित करने जैसे तार्किक व स्थायी नीति न अपनने के कारण ऋण तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर सरकार की निर्भरता बढ़ी। जिससे अर्थव्यवस्था में कीमतों में तेज वृद्धि हुई और योजना प्रक्रिया में अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ा। प्रारम्भिक योजनाओं में निर्यात के प्रति उदासीनता के चलते विदेशी साधनों से संसाधनों को जुटाने के प्रति भी राज्य के प्रयास तदर्थ नीति के रूप में ही रहे।

निवेश दर में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण कारक माना गया तथा अन्य महत्वपूर्ण तत्वों जैसे बेहतर प्रबन्धन, मानवीय पूँजी की गुणवत्ता, उत्पादन की संरचना, निवेश की संरचना, उचित व प्रभावी क्रियान्वयन इत्यादि पर ध्यान नहीं दिया गया। निवेश की संरचना पर ध्यान न देने के कारण 1965 के बाद औद्योगिक क्षेत्र में निवेश धनी आय वर्ग की उपभोग के उत्पादन के लिए अधिक किया गया तथा मूलभूत व पूंजीगत उद्योगों की वृद्धि दर अपेक्षाकृत कम रही।

'रिसन प्रभाव' (Leakage Effect) के ठीक से कार्य करने की मान्यता के कारण प्रारम्भिक योजनाओं में रोजगार बढ़ाने, गरीबी दूर करने आय व धन की असमानताओं में कमी करने की किसी ठोस नीति का स्पष्ट अभाव दिखता है। यह मान लिया गया कि आर्थिक संवृद्धि अर्थात् उत्पादन वृद्धि से रोजगार बढ़ेगा और संवृद्धि का लाभ समाज के निचले तबके तक पहुंचेगा, जिससे गरीबी और असमानता

में कमी आएगी। लेकिन संवृद्धि के अनुपात में रोजगार नहीं बढ़ा तथा संवृद्धि के लाभ समाज के थोड़े से उच्च वर्ग को ही ज्यादा हुआ तथा असमानताएं बढ़ी। श्रम को आसानी से उपलब्ध मानते हुए इसे नियोजन के माडलों में महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया।

7.5.2 नियोजन के उद्देश्य (OBJECTIVES OF PLANNING)

नियोजन का मूल तत्व यह होना चाहिए कि निर्धारित उद्देश्यों तथा उपलब्ध संसाधनों में सामंजस्य हो। भारत में जिन मुख्य उद्देश्यों का विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उल्लेख किया गया है उनको हासिल करना काफी मुश्किल है, क्योंकि उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संसाधनों का उचित आकलन न होने से योजना का कार्यान्वयन दोषपूर्ण रहा। चूंकि संसाधनों का आकलन, उद्देश्यानुसार नहीं किया गया इसलिए निर्धारित उद्देश्यों की संख्या भी काफी अधिक रही।

विभिन्न उद्देश्यों के बीच परस्पर विरोध तथा असंगति को देखते हुए भी इसे हासिल करना मुश्किल था। भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन को जिस रूप में लागू किया गया उसमें हमेशा ही आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक समानता के उद्देश्यों में टकराव होता रहा है। परन्तु सभी पंचवर्षीय योजनाओं में अंततः आर्थिक संवृद्धि को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए, अन्य सभी महत्वपूर्ण उद्देश्यों को संवृद्धि के भरोसे छोड़ दिया जाता रहा है। योजनाओं में उद्देश्यों की लम्बी सूचियां हैं। इससे स्पष्ट है कि योजनाओं में उद्देश्य निर्धारण को कितनी कम गम्भीरता से लिया जाता है। आर्थिक संवृद्धि पर सरकार का ध्यान इतना अधिक है कि उत्पादन की संरचना रोजगार संवृद्धि, सामाजिक न्याय, रोजगार सृजन तथा गरीबी निवारण जैसे उद्देश्यों के प्रति योजना की प्रतिबद्धता बिल्कुल दिखाई नहीं देती है।

योजनाओं का प्रयास उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करने से अधिक रहा है और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक नीतियों या कार्यक्रमों के संकेत देने से उतना नहीं रहा। संवृद्धि के लक्ष्यों और अंतःक्षेत्रीय संतुलनों के प्रति आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया गया है जबकि इससे संबंधित निर्णयों के लिए प्रारंभिक आंकड़े तक उपलब्ध नहीं हैं उदाहरण के लिए, पिछली योजनाओं में दिए गए पूंजी निर्गत अनुपातों, बचत के अनुपातों तथा मांग सापेक्षताओं के प्रक्षेपण बहुत अधिक अवास्तविक सिद्ध हुए हैं। उत्पादन और निवेश के लक्ष्यों का निर्धारण आगत–निर्गत संबंधों पर अपर्याप्त और अविश्वसनीय आंकड़ों तथा व्यवहार–प्रतिमानों संबंधी अनुमानित मान्यताओं के आधार पर किया जाता रहा है। आयोजना के मॉडलों के विकास में तकनीकी परिष्कार तो बढ़ा है, लेकिन आंकड़ा–आधार कमजोर हुआ है। योजनाओं में वादे भी बढ़ा–चढ़ा कर किए जाते रहे हैं और सीमित संसाधनों को अनेक कार्यक्रमों के लिए थोड़ी–थोड़ी राशियों में आवंटित किया जाता रहा है। इससे किसी एक (जैसे, साक्षरता के) क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हो पायी।

आयोजना से बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि योजनाओं में समूची अर्थव्यवस्था के लिए निवेश की विस्तृत आयोजना प्रस्तुत करने का प्रयास न किया जाए। किसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में जहां एक बड़ा असंगठित, अवित्तीय और आंतरिक क्षेत्र मौजूद हो, यह व्यावहारिक है ही नहीं। जो भी हो, यह काम आज कारगर ढंग से नहीं किया जा रहा है।

हमारी योजनाओं ने समूची अर्थव्यवस्था के लिए निवेश की आयोजना प्रस्तुत करने की दिशा में अतिशय प्रयास किए हैं लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र की आयोजना के लिए बहुत कम प्रयास किया है। वर्तमान में, हालांकि प्रत्येक योजना में क्षेत्रवार लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है मगर सही अर्थों में दीर्घकालिक निवेश की आयोजना का काम बहुत कम होता है। नतीजा यह होता है कि वास्तविक निवेश के निर्णय क्षेत्रीय और अन्य दबावों के अंतर्गत अलग–अलग वर्षों में अलग–अलग मामालों के लिए अलग–अलग लिए जाते हैं। यह विभिन्न क्षेत्रों के निवेश के बीच पर्याप्त असंतुलन, क्रियान्वयन में विलंब, संसाधनों के बारे में अतिशय वचनबद्धता और परियोजनाओं के लिए धन की कमी का कारण बना है।

7.5.3 कृषि क्षेत्र तथा ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा (NEGLECT OF AGRICULTURAL SECTOR AND RURAL INDUSTRIES)

नियोजन के दौरान भारी तथा पूंजीगत उद्योगों को इतना अधिक महत्व दिया गया कि कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा की गयी। इसीलिए स्थानीय कच्चे माल तथा मानव शक्ति का बेहतर इस्तेमाल नहीं हो सका और बेरोजगारी में वृद्धि हुई। लघु व ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा के कारण आयोजन प्रक्रिया उत्पादन को तो बढ़ाने में काफी हद तक सफल रही पर यह उत्पादन वृद्धि रोजगारोन्मुख नहीं हो सकी। इससे निर्धनता तथा क्षेत्रीय और अंर्तवैयक्तिक असमानताएं भी बढ़ीं।

कृषि क्षेत्र में संस्थागत सुधारों की गति भी योजनावधि के दौरान अत्यंत धीमी रही है। भूमि सुधारों की सीमित सफलता ने न सिर्फ कृषि उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा को कमजोर किया है बल्कि प्रगतिशील कृषि के विकास का मार्ग भी अवरुद्ध किया है। लघु व सीमांत कृषकों तक संस्थागत साख की पहुंच अभी भी काफी असंतोषजनक है। विपणन सुविधाओं का अभाव भी कृषि तथा लघु व ग्रामीण उद्योगों के विकास में एक बड़ी बाधा रहा है।

7.5.4 व्यापक गरीबी (WIDESPREAD POVERTY)

आयोजन का मूल उद्देश्य देश के सभी नागरिकों हेतु न्यूनतम जीवन स्तर की व्यवस्था करना है। परन्तु आयोजन के लगभग 6 दशकों बाद भी जनसंख्या का एक बड़ा तबका निरपेक्ष रूप से गरीब है और अपनी न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। लकड़वाड़ा समिति (Lakadwala committee) के अनुसार 1973–74 में जनसंख्या का लगभग 55 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे था जो कि कम होकर भी 1978–78 में 39.3 प्रतिशत था। योजना आयोग द्वारा गठित तेन्दुलकर समिति के अनुसार 2004–05 में 37.2 प्रतिशत जनसंख्या। गरीबी रेखा के नीचे थी– 41.8 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 25.7 प्रतिशत शहरी जनसंख्या गरीबी के ये आंकड़े आयोजन की कार्य प्रणाली और उसकी सफलता पर गम्भीर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। वास्तव में नियोजन देश में पोषणीय रोजगार के सृजन में असफल रहा है।

7.5.5 रोजगार में धीमी वृद्धि (SLOW GROWTH IN EMPLOYMENT)

कृषि व लघु तथा कुटीर उद्योगों की उपेक्षा तथा बड़े उद्योगों में पूंजी प्रधान तकनीकी के प्रयोग से रोजगार में वृद्धि धीमी हुई और बेरोजगारी बढ़ी। 1951 से 1969 के बीच फैक्ट्री उत्पादन में 7 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हुई जबकि रोजगार की वृद्धि दर मात्र 3 प्रतिशत वार्षिक थी। 1961 से 1979 के बीच फैक्ट्री क्षेत्र में निवेश 139 प्रतिशत और उत्पादन 161 प्रतिशत बढ़ा जबकि रोजगार मात्र 71 प्रतिशत ही बढ़ा। 1983 से 1999–2000 के बीच रोजगार लोच में भारी कमी आयी। 1983 से 1993–94 के बीच रोजगार लोच 0.52 थी जो कि 1993–94 से 1999–2000 के बीच 0.16 रह गई। अतः जहां 1983 से 1993–94 के बीच रेाजगार विस्तार की वार्षिक दर 2.7 प्रतिशत थी, वहीं 1993–94 से 1999–2000 के बीच 1. 07 प्रतिशत वार्षिक हो गयी। स्पष्ट है कि रोजगारोन्मुख रणनीति के अभाव के कारण योजनाएं पर्याप्त रोजगार सृजन में असफल रही हैं।

7.5.6 आय व धन की असमानताओं में वृद्धि (INCREMENT IN THE DIPERITIES OF INCOME AND WEALTH)

नियोजन काल में आय तथा धन की असमानताओं में निरन्तर वृद्धि हुई है। जनसंख्या के लगभग 40 प्रतिशत हिस्से की आर्थिक स्थिति अवरुद्ध रही है। थोड़े से उच्च आय वर्ग के हाथों में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण बढ़ा है। आर्थिक सुधारों के काल में असमानताओं में वृद्धि और अधिक तेज हुई है। घरेलू पारिवारिक व्यय में सबसे धनी 10 प्रतिशत जनसंख्या का हिस्सा जो कि 1989–90 में 27.1 प्रतिशत था, बढ़कर 2004–05 में 31.1 प्रतिशत से 45.3 प्रतिशत हो गया। अर्जुन सेन गुप्ता समिति के अनुसार 2006 में भारत की 78 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिदिन का व्यय रु0 20 से कम था। स्पष्टतः संवृद्धि का लाभ समाज के एक विशिष्ट वर्ग को ही हुआ है। इस वर्ग ने अवैध तरीके से भी आय प्राप्त करके अपनी आर्थिक शक्ति मजबूत की है। 1960 के दशक में काले धन की अनुमानित मात्रा सकल घरेलू उत्पाद की 7 प्रतिशत थी जो कि बढ़कर 1981 में 20 प्रतिशत, 1990–91 में 35 प्रतिशत तथा 1995–96 में 40 प्रतिशत हो गयी। काले धन की इस समानान्तर अर्थव्यवस्था ने गैर आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उपभोग को बढ़ाया है।

7.5.7 कार्यान्वयन की विफलता (IMPLEMENTATION FAILURE)

योजनाओं को लागू करने की जिम्मेदारी पूरी तरह से प्रशासन की मानकर उस पर विचार नहीं किया गया। कार्यान्वयन के आयोजन के अभाव से योजनाओं की प्रभाविता काफी कम हो गयी। भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन ने राज्य के हस्तक्षेप तथा योजनाओं की गुणवत्ता में काफी कमी लायी। व्यष्टि स्तर पर आंकड़ों के अभाव तथा राज्य व जिला स्तर पर नियोजन की उचित व्यवस्था न होने के कारण क्रियान्वयन का संकट और बढ़ा।

7.5.8 नियोजन के उद्देश्यों तथा आर्थिक नीतियों में सामंजस्य का अभाव (LACK OF COORDINATION IN PLANNING OBJECTIVES AND ECONOMIC POLICIES)

हमारी आयोजना प्रणाली समय के साथ–साथ इस प्रकार विकसित हुई है कि योजना की प्राथमिकताओं और उन प्राथमिकताओं के लिए बनी समष्टि आर्थिक

नीतियों के बीच तालमेल का अभाव उसका एक प्रमुख दोष बन गया है। ये तकनीकें सोवियत संघ में विकसित निर्देशमूलक आयोजना प्रणाली से ली गयी थीं। ये तकनीकें एक ऐसी अर्थव्यवस्था में निवेश का मार्गदर्शन करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हुई हैं जिसका एक बड़ा भाग निजी स्वामित्व में है और जहां राजनीतिक और न्यायिक प्रणालियां उपभोक्ताओं और उद्यमियों के लिए चयन की अपेक्षतया अधिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करती हैं। नियंत्रण और नियमन की यह प्रणाली मूलतः दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान की गयी व्यवस्थाओं से उत्पन्न हुई है। यह निवेश का **'वांछित'** दिशाओं में मार्गदर्शन करने की अपेक्षा प्रतियोगिता को रोकने और एक नाकारा आयात प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित करने में अधिक सफल रही है। अर्थव्यवस्था में काले धन तथा तस्करी की वृद्धि का नतीजा यह हुआ है कि अर्थव्यवस्था में प्रभावी उपभोक्ता मांग के अनुरूप और आय की संवृद्धि के स्वरूप का योजना की प्राथमिकताओं से कोई खास संबंध नहीं रहा। इसका एक स्पष्ट उदाहरण यह है कि भारत स्वचालित वाहनों के उत्पादन में पर्याप्त आत्मनिर्भर माना जा सकता है जिसका योजनाओं की प्राथमिकताओं में कोई स्थान नहीं है जबकि वह उर्वरकों और खाद्य तेलों का बहुत बड़ा आयातक है यद्यपि ये दोनों वस्तुएं योजनाओं में अत्यधिक प्राथमिकता पाती रही हैं।

समष्टिगत आर्थिक नीतियों, खासकर प्रशुल्क और राजकोषीय नीतियों, तथा योजनाओं के अंतःक्षेत्रीय लक्ष्यों के बीच जो क्षीण संबंध हैं, उसके फलस्वरूप औद्योगिक संरचना में महत्वपूर्ण विसंगतियां पैदा हो गयी हैं। मिसाल के लिए, आज व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है पूंजीगत माल, अन्य अभियांत्रिकी उद्योगों, परिवर्तन के उपकरणों आदि के धातु आधारित क्षेत्रों के बड़े हिस्से को बहुत कम या नकारात्मक संरक्षण मिला है। ऐसा इसके बावजूद है कि योजनाओं में पूंजीगत माल के उत्पादन को हमेशा ही उच्चतम प्राथमिकता दी जाती रही है। दूसरी ओर, रसायन–आधारित उद्योगों को दिए गए संरक्षण की दरें बहुत अधिक नहीं हैं। नतीजा यह हुआ है कि पिछले 15 वर्षों में रसायन आधारित उद्योगों में अच्छी संवृद्धि देखी गयी है जबकि अभियांत्रिकी क्षेत्र की संवृद्धि कम रही है। इस प्रकार की विसंगत राजकोषीय संरचना का एक और नतीजा यह है कि अभियांत्रिकी उद्योगों जैसे श्रम प्रधान उद्योगों के साथ भेदभाव हुआ है जबकि पेट्रोरसायन जैसे पूंजी प्रधान उद्योगों को बहुत अधिक संरक्षण मिलता है। धातु–आधारित उद्योगों के विरुद्ध पूर्वग्रह के कारण पश्चिमी क्षेत्र की तुलना में पूर्वी क्षेत्र की उपेक्षा हुई है–उल्लेखनीय है कि रसायन और पेट्रोरसायन उद्योग इसी पश्चिमी क्षेत्र में आधारित है।

भारत में नियोजन आर्थिक तथा सामाजिक आधारिक संरचना के निर्माण तथा मजबूत औद्योगिक ढांचे के निर्माण में एक हद सफल रहा है परन्तु नियोजन की मूल विफलता इस बात में निहित है कि इसके महत्वपूर्ण उद्देश्य आज भी उतने ही अप्राप्य हैं जितना कि नियोजन की शुरुआत में थे। वस्तुतः सामाजिक न्याय के साथ विकास के अपने लक्ष्य से नियोजन और दूर हटा है। जैसा कि गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता के बढ़े स्तर को देखकर स्पष्ट है।

भारत में आर्थिक नियोजन बाजार तंत्र की असफलताओं को दूर कर विकास की गति को तेज करने तथा उसके लाभ को समान रूप से समाज के सभी वर्गों में वितरित करने के लिए अपनाया गया था। परन्तु नियोजन की मूल विफलताओं से यह स्पष्ट हो गया कि राज्य भी बाजार तंत्र की तरह अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल हो

सकता है। राज्य के हस्तक्षेप की गुणवत्ता खराब होने से संसाधनों का कुशल आवंटन नहीं हो सका।

7.6 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012)

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की शुरुआत **1 अप्रैल, 2007** को हुई। योजना में अधिक **तीव्र और ज्यादा समावेशी संवृद्धि** (Faster And More Indusive Growth) पर जोर दिया गया है। दसवीं योजना में प्राप्त 7.8 प्रतिशत की संवृद्धि दर के विरुद्ध योजना में संवृद्धि दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत वार्षिक रखा गया है तथा यह भी कहा गया है कि इस संवृद्धि के लाभ व्यापक आधार (Broad Based Benefits) का होना चाहिए तथा इससे सभी को समान अवसर मिलने चाहिए।

योजना के अनुसार उसकी समावेशी संवृद्धि की युक्ति परंपरागत युक्ति नहीं है जिसमें समावेश के तत्व शामिल भर कर लिए गए हैं अपितु यह एक ऐसी युक्ति है जिसमें एक ऐसी विशिष्ट प्रकार की संवृद्धि प्रक्रिया को प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा जो समावेशी हो तथा दीर्घकाल तक सभी के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सके। यह आवश्यक है कि यह युक्ति मजबूत समष्टि आर्थिक नीतियों पर आधारित हो जो तीव्र संवृद्धि की समष्टि आर्थिक पूर्व–शर्तों की स्थापित कर सकें तथा इस संवृद्धि के मुख्य प्रेरकों को और शक्ति प्रदान कर सकें। इसमें इस प्रकार की सेक्टर विशिष्ट नीतियां भी शामिल होनी चाहिए जो यह सुनिश्चित कर सकें कि संवृद्धि का जो ढांचा तैयार हो रहा है वह समावेशन के उद्देश्य को उसके संपूर्ण आयामों में प्राप्त कर सकें।

इस व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार, ग्यारहवीं योजना में जो विकास युक्ति अपनाई गई है उसके मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

1. तेज आर्थिक संवृद्धि (9 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर पर) जो गरीबी को कम कर सके तथा रोजगार अवसरों का सृजन कर सके।
2. स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में (खासतौर पर गरीबों के लिए) अनिवार्य सुविधाओं की उपलब्धि।
3. सभी को विकास के समान अवसर।
4. शिक्षा तथा कौशल विकास के माध्यम से शक्तिकरण (empowerment)।
5. रोजगार अवसरों में वृद्धि (राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना जिसका आधार होगा)।
6. पर्यावरण की दीर्घकालीन सुरक्षा।
7. स्त्री शक्ति को मान्यता।
8. बेहतर अभिशासन।

7.6.1 ग्यारहवीं योजना के पालनीय लक्ष्य (THE MEASURABLE GOALS OF THE ELEVENTH PLAN)

अधिक तीव्र व समावेशी संवृद्धि की युक्ति के अधीन ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय स्तर पर 27 पालनीय लक्ष्यों की बात की गई है जिसमें से 13 पालनीय लक्ष्यों का व्यक्तिगत राज्यों के स्तर पर विभाजन किया जा सकता है। इन अत्यन्त महत्वाकांक्षी लक्ष्यों के चुनाव को योजना में इन शब्दों में उचित ठहराया गया है, *''निस्सन्देह ये लक्ष्य महत्वाकांक्षी हैं परन्तु ऊँचे लक्ष्य रखना और उन्हें प्राप्त न कर पाना, कम लक्ष्यों से संतोष कर लेने से बेहतर है।''*

राष्ट्रीय स्तर पर 27 पालनीय लक्ष्यों को 6 मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है :

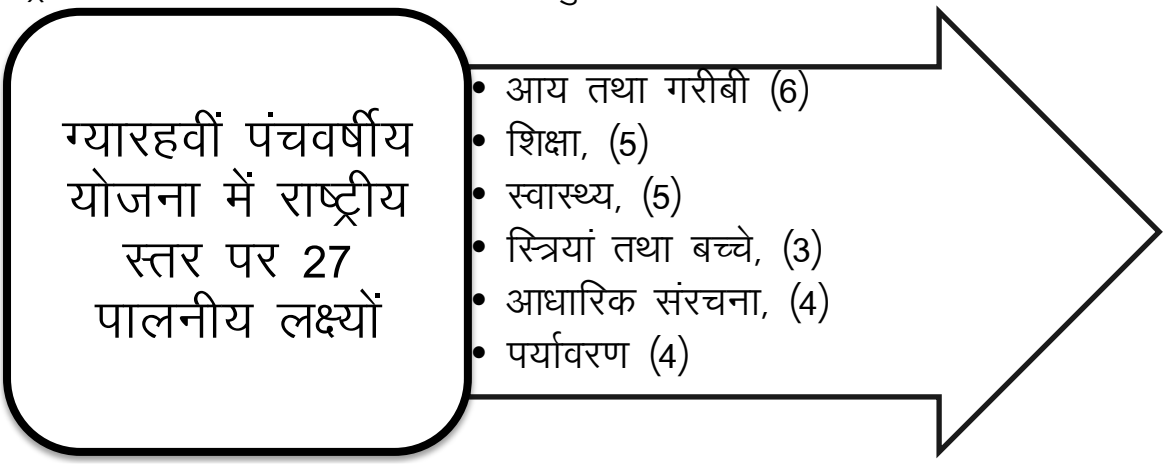

इन वर्गों में रखे गए लक्ष्य निम्नलिखित हैं :

1. आय तथा गरीबी (INCOME AND POVERTY)

1. ग्यारहवी योजना की अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में औसतन 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संवृद्धि दर
2. कृषि से सकल घरेलू उत्पाद में औसतन 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संवृद्धि दर
3. 5 करोड़ 80 लाख नए रोजगार अवसरों का सृजन
4. शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी को 5 प्रतिशत से कम स्तर तक लाना
5. अकुशल श्रमिकों को वास्तविक मजदूरी दर में 27 प्रतिशत वृद्धि
6. गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में 10 प्रतिशत बिन्दु की गिरावट।

2. शिक्षा (EDUCATION)

1. प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या जो 2003–04 में 52. 2 प्रतिशत थी, उसे 2011–12 तक 20 प्रतिशत तक ले जाना;
2. अच्छी गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से प्रारंभिक स्कूलों में शिक्षण उपलब्धियों के लिए न्यूनतम मानक स्तर निश्चित करना;
3. 2011–12 तक 7 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के लिए साक्षरता दर को 85 प्रतिशत तक पहुंचाना;
4. 2011–12 तक पुरुषों व स्त्रियों में साक्षरता अंतराल को 10 प्रतिशत बिन्दु तक ले जाना;
5. उच्च शिक्षा में जाने वाले प्रत्येक दस्ते या समूह के प्रतिशत को मौजूदा 10 प्रतिशत से बढ़ा कर 2011–12 तक 15 प्रतिशत तक पहुंचाना।

3. स्वास्थ्य (HEALTH)

1. ग्यारहवीं योजना के अन्त तक शिशु मृत्यु दर को 28 तथा मातृ मृत्यु दर को 1,000 जीवित जन्मों पर 1 तक ले जाना;
2. ग्यारहवीं योजना के अन्त तक कुल जनक्षमता दर को 2.1 तक ले जाना;
3. सभी लोगों को 2009 तक स्वच्छ निर्मल पेय जल उपलब्ध कराना;
4. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 0–3 आयु वर्ग के बच्चों के लिए कुपोषण को मौजूदा स्तर से आधे स्तर तक ले जाना;
5. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक स्त्रियों एवं बालिकाओं में खून की कमी की व्यापकता को मौजूदा स्तर से आधे स्तर तक ले आना।

4. स्त्रियां तथा बच्चे (WOMEN AND CHILDREN)

1. 0–6 वर्ष की आयु के बच्चों में लिंग अनुपात को 2011–12 तक 935 तथा 2016–17 तक 950 तक पहुंचाना;
2. यह सुनिश्चित करना करना कि सभी सरकारी योजनाओं में कम से कम 33 प्रतिशत लाभ भोगी स्त्रियां तथा बालिकाएं हो;
3. यह सुनिश्चित करना कि सभी बच्चों को सुरक्षित बचपन मिले तथा उन पर काम करने की कोई मजबूरी न हो।

5. आधारिक संरचना (INFRASTRUCTURE)

1. 2009 तक सभी गांवों तथा गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों को बिजली का कनेक्शन तथा योजना के अन्त तक पूरी तरह से बिजली उपलब्ध कराना;
2. 2009 तक 1000 से अधिक आबादी वाली सभी बस्तियों को वर्ष भर काम करने वाली सड़कों से जोड़ना तथा2015 तक सभी महत्वपूर्ण बस्तियों को सड़कों से जोड़ना;
3. 2012 तक प्रत्येक गांव में टेलिफोन सुविधाएं तथा ब्राडबैंड सुविधाएं उपलब्ध कराना;
4. सभी को 2012 तक रहने की जगह उपलब्ध कराना तथा ग्रामीण निर्धनों के लिए मकान बनाने की प्रक्रिया तेज करना ताकि 2016–17 तक सभी ग्रामीण निर्धनों को मकान मिल सके।

6– पर्यावरण (ENVIRONMENT)

1. वनों तथा पेड़ों के अधीन क्षेत्र में 5 प्रतिशत बिन्दु की वृद्धि करना;
2. 2011–12 तक सभी नगरों में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित स्वच्छ वायु के मानदंड प्राप्त करना;
3. नदियों के जल को स्वच्छ बनाने के दृष्टिकोण से सभी अपशिष्ट नगरीय जल के शुद्धिकरण की व्यवस्था करना;
4. 2016–17 तक ऊर्जा की दक्षता में 20 प्रतिशत बिन्दु के बराबर वृद्धि करना।

ग्यारहवीं योजना में 'अधिक तीव्र' तथा अधिक समवेशी विकास के जरिए एक ऐसी विकास प्रक्रिया की शुरुआत करने की बात कही गयी है जिससे सभी लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सके, विशेष कर गरीबों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों, अन्य पिछड़ी जातियों एवं स्त्रियों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो।

7.6.2 समष्टि आर्थिक ढांचा (MACROECONOMIC FRAMEWORK)

ग्यारहवीं योजना में पूरी अर्थव्यवस्था में 9 प्रतिशत की संवृद्धि दर प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में निम्नलिखित लक्ष्य प्रस्तावित हैं : कृषि 4 प्रतिशत प्रति वर्ष, उद्योग 10–11 प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा सेवा क्षेत्र 9 से 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष।

योजना का आकार यानि कुल परिव्यय 36,44,718 करोड़ रुपये है। (2006–07 की कीमतों पर) इसमें केन्द्रीय योजना का परिव्यय 21,56,571 करोड़ रुपए तथा राज्य व केन्द्र शासित प्रदेशों का परिव्यय 14,88,147 करोड़ रुपए है। कुल परिव्यय का 30.24 प्रतिशत सामाजिक सेवाओं, 23.43 प्रतिशत ऊर्जा, 15.71 प्रतिशत परिवहन, 18.49 प्रतिशत कृषि (ग्रामीण विकास, विशिष्ट कार्यक्रम, सिंचाई व बाढ़ नियंत्रण तथा कृषि व संबद्ध क्षेत्र सम्मिलित) तथा 4.21 प्रतिशत उद्योग पर व्यय किया जाएगा।

योजना में निवेश दर सकल घरेलू उतपाद के प्रतिशत के रूप में 36.72 प्रतिशत, घरेलू बचत दर 34.84 प्रतिशत तथा चालू खाते का घाटा 1.88 प्रतिशत रहने का लक्ष्य है। योजना में वृद्धिमान पूंजी उत्पादन 4.1 प्रतिशत रखने का अनुमान है।

ग्यारहवीं योजना में अनुमान है कि श्रमशक्ति 2006–07 में 43 करोड़ 40 लाख से बढ़कर 2011–12 में 48 करोड़ 37 लाख हो जाएगी अर्थात् उसमें 4 करोड़ 47 लाख की वृद्धि होगी। जबकि योजना के दौरान 5 करोड़ 80 लाख रोजगार अवसरों का सृजन होगा। इस प्रकार अनुमान है कि बेरोजगारी दर 2006–07 में 8.36 प्रतिशत से कम होकर 2011–12 में 4.83 प्रतिशत रह जाएगी। विनिर्माण क्षेत्र में 4 प्रतिशत, निर्माण गतिविधियों में 8.2 प्रतिशत तथा परिवहन एवं संचार में 7.6 प्रतिशत की दर से रोजगार सृजन की संभावना है। जबकि कृषि क्षेत्र योजना में कोई अतिरिक्त रोजगार अवसर पैदा नहीं कर पाएगा।

7.6.3 मध्यावधि समीक्षा (MID TERM REVIEW)

1. ग्यारहवीं योजना में 9 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया है। 2007–08 में संवृद्धि दर 9 प्रतिशत से अधिक थी, परन्तु वैश्विक वित्तीय संकट ने 2008–09 में इसमें रुकावट पैदा की और यह 6.7 प्रतिशत हो गयी। 2009–10 में संवृद्धि दर 7.4 प्रतिशत थी, जबकि इस वर्ष कृषि वृद्धि दर मात्र 0.2 प्रतिशत थी। घरेलू बचत दर 2007–08 में 36.4 प्रतिशत थी जो कि कम होकर 2008–09 में 32.5 प्रतिशत हो गयी। इसी अवधि में सकल निवेश 37.7 प्रतिशत से गिरकर 34.9 प्रतिशत हो गया। हालांकि 2009–10 में बचत व निवेश दरों में वृद्धि हुई।
2. ग्यारहवीं योजना में कृषि संवृद्धि दर को दसवीं योजना के 2.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। पहले दो वर्षों में कृषि की वृद्धि दर 3.2 प्रतिशत वार्षिक थी परन्तु 2009–10 में सूखे के कारण यह कम होकर 0.2 प्रतिशत हो गयी। 2010–11 में कृषि उत्पादन में रिकार्ड वृद्धि हुई है और यह लगभग 11 प्रतिशत बढ़ा है। इससे यह आशा बंधती है कि कृषि उत्पादन के 4 प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।
3. विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर दसवीं योजना में औसत 9.3 प्रतिशत थी। 11वीं योजना के प्रथम वर्ष यह बढ़कर 10.3 प्रतिशत हो गयी परन्तु 2008–09 में 3.2 प्रतिशत हो गयी, परन्तु पुनः 2009–10 में 10.8 प्रतिशत हो गयी। 2010–11 में यूरोप संकट तथा मंदी के चलते विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि में तेज गिरावट आयी है। इसलिए 11वीं योजना विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होगी, इसमें संदेह है। ऐसे में 9 प्रतिशत संवृद्धि का लक्ष्य भी पाना कठिन है।
4. गरीबी में कमी योजना का एक प्रमुख लक्ष्य रहा है जिसे समावेशिता के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना गया है। परन्तु 2004–05 के बाद गरीबी के आंकड़े उपलब्ध नहीं है मध्यावधि समीक्षा में कहा गया है कि संवृद्धि के विभिन्न राज्यों के बीच बेहतर बंटवारे, कृषि निष्पादन में सुधार, मनरेगा तथा भारत निर्माण जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत से 11वीं योजना में गरीबी में महत्वपूर्ण रूप से कमी आयेगी। ग्यारहवीं योजना के प्रथम वर्ष में प्रारम्भ किए मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम) (Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Programme) से रोजगार की मात्रा में 3 गुनी वृद्धि की प्रत्याशा है। इससे न्यूनतम रोजगार सुरक्षा बढ़ी है। हालांकि यह गरीबी का दीर्घकालिक हल नहीं हो सकता। ग्यारहवीं योजना में 2 प्रतिशतांक प्रति वर्ष की दर से कमी प्राप्त करने का अधिक महत्वकांक्षी लक्ष्य रखा गया था। वर्ष 2009–10 के संबंध में नवीनतम एनएसएस सर्वेक्षण का इस्तेमाल करते हुए प्रारम्भिक अनुमानों से पता

चलता है कि गरीबी के अन्तर्गत आबादी की प्रतिशतता में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक तीव्र गति से कमी आई, 2004–05 से 2009–10 तक की पांच वर्षीय अवधि के दौरान लगभग 1 प्रतिशतांक प्रति वर्ष। 2009–10 के बाद से, जो एक सूखा वर्ष था तथा उस वर्ष गरीबी में अस्थाई रूप से वृद्धि हुई, कमी की अन्तर्निहित दर सम्भवतः एक प्रतिशतांक प्रति वर्ष से अधिक है।

5. सर्व शिक्षा अभियान तथा मिड–डे भोजन योजना से प्राथमिक शिक्षा में काफी विस्तार हुआ है। नामांकन अनुपात में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जोकि 2002 में 87 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 99 प्रतिशत हो गया। हालांकि ड्राप आउट दरें अभी ऊंची हैं। 43 प्रतिशत बच्चों ने प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता काफी असंतोषजनक है। कक्षा 5 के 38 प्रतिशत बच्चे कक्षा–2 की पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ पाते तथा 37 प्रतिशत साधारण भागफल में प्रश्न नहीं हल कर पाते, ऐसा 2009 में हुए एक सर्वे की रिपोर्ट में कहा गया है।
6. ग्यारहवीं योजना में स्वास्थ्य पर सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कुल व्यय का 1 प्रतिशत से बढ़ाकर लगभग 2 से 3 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (N.R.H.M.) के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में भौतिक आधारिक संरचना का विस्तार हुआ है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की शुरुआत हुई है जिससे गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को भी लाभ होगा।
7. आधारिक संरचना विशेषकर ऊर्जा तथा परिवहन को मजबूत बनाने के लिए योजना में इस क्षेत्र में निवेश में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है और प्रथम तीन वर्षों में आधारिक संरचना में हुआ निवेश योजना के लक्ष्य के अनुरूप है। हालांकि सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश में काफी कमी आयी है। परन्तु निजी निवेश तेजी से बढ़ा है। ग्यारहवीं योजना के दौरान अर्थव्यवस्था में औसतन लगभग 8.2 प्रतिशत का विकास होने की सम्भावना है जो 9.0 प्रतिशत के मूल लक्ष्य से कम है किन्तु दसवीं योजना में प्राप्त 7.8 प्रतिशत के मुकाबले तीव्र है। इसका अर्थ इस अवधि में प्रति व्यक्ति जीडीपी में लगभग 35 प्रतिशत की वृद्धि है। इसकी वजह से सरकारी राजस्व में भी केन्द्र और राज्य दोनों में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिससे समावेशिता के उद्देश्य से कार्यक्रमों के लिए संसाधनों में पर्याप्त रूप से बढ़ोत्तरी हुई है।
8. ग्यारहवीं योजना में समावेशिता विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आर्थिक विकास की ऊंची दरें राज्यों के बीच पहले की अपेक्षा और अधिक व्यापक रूप से विभाजित हुई हैं यद्यपि अधिकांश राज्यों ने विकास की लगातार ऊंची दरें प्रदर्शित की हैं तथापि अनेक आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों ने अपनी विकास दरों में सुधार प्रदर्शित किया है। उनमें बिहार, उड़ीसा, असम, राजस्थान, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड और कुछ सीमा तक उत्तर प्रदेश सम्मिलित है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार किसी भी राज्य ने ग्यारहवीं योजना अवधि के दौरान 6 प्रतिशत से कम की औसत जीडीपी वृद्धि प्रदर्शित नहीं की है।
9. 2007 से 2010 के दौरान औसत वास्तविक मजदूरी दरों में अखिल भारत स्तर पर 16 प्रतिशत की वृद्धि हुई। आन्ध्र प्रदेश में (42 प्रतिशत) और उड़ीसा में (33 प्रतिशत) यह वृद्धि तीव्र थी। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में तीन वर्षों की अवधि के दौरान वास्तविक कृषि मजदूरी क्रमशः 19 और 20 प्रतिशत बढ़ गई।

7.7 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन में आत्म निर्भरता के उद्देश्य से क्या तात्पर्य रहा है?
2. भारत में आर्थिक संवृद्धि के उद्देश्य की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
3. नियोजन के दौरान उत्पादन की संरचना में किस प्रकार के परिवर्तन हुए ?
4. 1991 के बाद आर्थिक संवृद्धि दर की प्रवृत्ति क्या रही है ?
5. भारत में नियोजन की रणनीति की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।
6. सामाजिक न्याय की प्राप्ति में योजनाएं कहां तक सफल रही हैं?
7. नियोजन के किन्ही चार प्रमुख उद्देश्यों के नाम बताइए।
8. सामाजिक न्याय से क्या तात्पर्य है?

2.बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन–सा उद्देश्य भारतीय नियोजन का दीर्घकालिक उद्देश्य नहीं रहा है
   (क) आर्थिक संवृद्धि
   (ख) आत्मनिर्भरता
   (ग) कीमतों का नियंत्रण
   (घ) पूर्ण–रोजगार
2. 'रिसन प्रभाव' से तात्पर्य है :–
   (क) गरीबी पर सीधा प्रहार
   (ख) सिंचाई सुविधाओं में विस्तार
   (ग) उत्पादन वृद्धि का लाभ रिस–रिसकर समाज के निम्न तबके तक पहुंचना
   (घ) अर्थव्यवस्था से पूंजी का रिसाव
3. किस योजना में संवृद्धि दर सर्वाधिक थी?
   (क) छठवीं (ख) आठवीं
   (ग) नवीं (घ) दसवीं
4. दालों की प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता नियोजन काल में :–
   (क) बढ़ी है (ख) घटी है (ग) स्थिर रही है

3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

1. बारहवीं पंचवर्षीय योजना —————————— शुरु हुई।
2. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य ————————— है।

4. सत्य/असत्य

1. भारतीय नियोजन में सभी उद्देश्यों को अंततः संवृद्धि के भरोसे छोड़ दिया गया।
2. भारतीय नियोजन में किसी वित्तीय युक्ति का अभाव रहा है।
3. भारतीय नियोजन में किसी स्पष्ट रोजगार युक्ति का अभाव रहा है।
4. नियोजन काल में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के अनुपात में वृद्धि हुई है।
5. नियोजन अपने सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहा है।
6. नियोजन काल में आर्थिक असमानताओं में वृद्धि हुई है।
7. योजनाओं का कार्यान्वयन काफी प्रभावी रहा है।

7.8 सारांश (SUMMARY)

भारतीय योजनाओं में आर्थिक संवृद्धि बढ़ाने पर मुख्य जोर दिया जाता है। परन्तु योजनाओं के दीर्घकालीन बुनियादी लक्ष्य रोजगार आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय भी रहे हैं। योजनाओं के कुछ सुनिश्चित उद्देश्य रहे हैं जो कि एक दूसरे से जुड़े रहे हैं। यह भी सही है कि उद्देश्यों की संख्या काफी अधिक रही है और विभिन्न उद्देश्यों के बीच परस्पर असंगति और विरोध भी रहा है।

योजनाओं की उपलब्धियाँ तथा मूल विफलताओं पर नजर डालने पर एक मिश्रित तस्वीर उभरती है हालांकि उपलब्धियां, विफलताओं से कम हैं। नियोजन प्रक्रिया ने देश में सामाजिक एवं आर्थिक आधारिक संरचना के निर्माण तथा भारी व मूल उद्योगों के विकास को प्रोन्नत कर औद्योगिक आधार स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। परन्तु यह गरीबी दूर करने, बेरोजगारी कम करने तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में असफल रही हैं। आर्थिक संवृद्धि के लाभ उच्च तथा समृद्ध वर्ग को ही अधिक प्राप्त हुआ है। नियोजन की युक्ति में अनेक कमियां रही हैं और एक स्पष्ट नीतिगत ढांचे की कमी रही है तथा योजनाओं का क्रियान्वयन भी काफी असंतोषजनक रहा है। उदारीकरण व निजीकरण के काल में हाल के वर्षों में नियोजन के महत्व में उल्लेखनीय कमी आयी है। लेकिन आधारिक संरचना के निर्माण तथा सामाजिक न्याय के लिए नियोजन की आवश्यकता आज कहीं अधिक प्रासंगिक दिखती है।

7.9 शब्दावली (GLOSSARY)

- **आर्थिक संवृद्धि (ECONOMIC GROWTH):** आर्थिक संवृद्धि से तात्पर्य सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से है। संवृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की दर है। मोटे तौर पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर को भी आर्थिक संवृद्धि की दर के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
- **सामाजिक न्याय (SOCIAL JUSTICE):** सामाजिक न्याय से तात्पर्य आय तथा धन की विषमताओं में कमी लाना है तथा गरीबी दूर करना है।
- **आत्म निर्भरता (SELF RELIANCE):** संकुचित अर्थों में आत्मनिर्भरता से तात्पर्य है सभी वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो जाना या फिर विदेशी सहायता में कमी या उससे पूरी तरह से मुक्ति। परन्तु प्रावैगिक अर्थ में इसका अर्थ है अपने निर्यातों में वृद्धि से इतनी विदेशी मुद्रा अर्जित करना जिससे कि आयातों की कीमत चुका सकें।
- **संरचनात्मक परिवर्तन (STRUCTURAL CHANGE):** राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन की संरचना अर्थात अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय आय में योगदान में परिवर्तन, श्रमशक्ति के व्यवसायिक वितरण में परितर्वन तथा अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तनों को संरचनात्मक परिवर्तन कहते हैं। अर्थव्यवस्था में प्रत्येक क्षेत्र में पुरानी संस्थाओं की जगह नयी संस्थाओं का उदय तथा विकास संरचनात्मक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण हैं।
- **आधारिक संरचना (INFRASTRUCTURE):** आधारिक संरचना से तात्पर्य मूलभूत ढांचे से है, जो कि सभी आर्थिक गतिविधियों का आधार है, चाहे वह कृषि से संबंधित हो, उद्योग से या फिर अन्य क्षेत्र से। आधारिक संरचना औद्योगिक व कृषि उत्पादन, घरेलू व विदेशी व्यापार और वाणिज्य के प्रमुख क्षेत्रों में सहयोगी सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। जैसे, सड़क, रेल, बंदरगाह, बांध, ऊर्जा, दूरसंचार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, पेयजल, बैंक, बीमा व अन्य वित्तीय

संस्थाएं आदि। इनमें से कुछ सुविधाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन पर पड़ता है, जबकि कुछ अन्य अर्थव्यवस्था के सामाजिक क्षेत्रकों के निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करते हैं। प्रायः आधारिक संरचना को, आर्थिक तथा सामाजिक, दो श्रेणियों में बांटा जाता है। ऊर्जा, परिवहन, संचार, सिंचाई, आर्थिक आधारिक संरचना के अंतर्गत आते हैं। जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास सामाजिक आधारिक संरचना की श्रेणी में आते हैं।

- **रिसन प्रभाव (LEAKAGE EFFECT):** आर्थिक संवृद्धि या उत्पादन वृद्धि का लाभ रिस रिसकर समाज के निचले तबके तक पहुंचना रिसन प्रभाव कहलाता है।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (ग) 2. (ग) 3. (घ) 4. (ख)

3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

1. 01.04.2012, 2. अधिक तीव्र और ज्यादा समावेशी संवृद्धि

4. सत्य/असत्य

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य
5. असत्य 6. सत्य 7. असत्य

7.11 संदर्भ–ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Bimal Jalan, India's Economic Crisis-The way Ahead, Oxford University, Press, Delhi, 1991.
- Bimal Jalan, The India's Economy : Problems and Prospects, Viking, New Delhi, 1992.
- Govt. of India, Planning Commission, Reference Material 2010, Notes On The Functioning Of Various Divisions, New Delhi
- Terance J. Byres, The Indian Economy Major Debates Since Independence, Oxford University Press, Delhi, 1998
- Subhamoy Chakravarty, Department Planning - The Indian Exercise, Oxford, University Press, Delhi, 1987.
- Uma Kapila and Raj Kapila, Indian Economy since indepencence Academic foundatian, 2009, New Delhi.
- Government of India, Planning Commission, Eleventh Five Year Plan 2007-12 (New Delhi, 2008), Volume I , II & III
- Government of India, Planning Commission, Mid-Terms, Appraisal, Eleventh Five year Plan-2007-12

7.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ (USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- Vaidya Nathan, The Indian Economy Crisis, Response and Prospects, Orient Longman Ltd. Hyderabad, 1995.

- S.K. Mishra and V.K. Puri, Indian Economy, Himalaya Publishing House, 2008.
- Ruddar Dutt and L.P.M. Sundaram, Indian Economy. S. Chand and Company Ltd. 2008.
- Indian Economy, A.N. Agrawal, Wishwa Prakashan Ltd. New Delhi, 2008
- डा0 बद्री विशाल त्रिपाठी, भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल, इलाहाबाद 2004।
- डा0 एस0के0 मिश्रा तथा डा0 वी0के0 पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया प्रकाशन, दिल्ली 2009।
- डा0 रुद्र दत्त तथा डा0 के0पी0एम0 सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द प्रकाशन,दिल्ली 2009।

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारतीय नियोजन के मुख्य उद्देश्यों की समीक्षा कीजिए।
2. नियोजन की मुख्य उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।
3. भारत में नियोजन की सफलता का मूल्यांकन कीजिए।
4. ''एक उदारीकृत व्यवस्था में नियोजन की प्रासंगिकता कहीं अधिक है'', विवेचना कीजिए।
5. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 8 गरीबी
(POVERTY)

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 गरीबी : आशय
8.4 गरीबी का परिमाण
8.5 गरीबी की माप
8.6 भारत में गरीबी का अनुमान
8.7 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य
8.8 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम
8.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन
8.10 गरीबी निवारण के उपाय
8.11 अभ्यास प्रश्न
8.12 सांराश
8.13 शब्दावली
8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.16 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
8.17 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप प्रदेश अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

गरीबी से आशय उस सामाजिक अवस्था से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित रहता है। गरीबी की माप के लिए सामान्यतः सापेक्षित प्रतिमान एवं निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। भारत में गरीबी की माप कैलोरी मानक के अनुसार की जाती है। गरीबी निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम योजना काल में लागू किए गए परन्तु आशानुसार सफलता नहीं प्राप्त हुई।इस सन्दर्भ में और उपाय एवं नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता हैं, प्रस्तुत इकाई में इसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गरीबी आशय एवं परिदृश्य को जान पायेगें। भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।आप इससे जुड़ी सरकार द्वारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ✓ गरीबी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें ।
- ✓ भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ सरकार द्वारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सके

8.3 गरीबी : आशय (POVERTY: MEANING)

भारतवर्ष में गरीबी की समस्या का विश्लेषण करने से पूर्व अर्थव्यवस्था की संरचना एवं स्वरूप को समझना अति आवश्यक है। प्रारम्भ में जब अंग्रेजों ने भारत में आधिपत्य स्थापित किया तो उन्होंने देश की सम्पत्ति तथा संसाधनों का पूरी तरह से विदोहन का प्रयास किया जो उनके निहित स्वार्थों के पक्ष में था। उन्होने भारतीय शासकों जमीदारों एवं सामान्य जनता तथा व्यापारियों से जबरदस्ती वसूली की वहीं दूसरी ओर भारतीय कारीगरों, नील की खेती करने वाले किसानों और व्यापारियों का शोषण भी किया तथा भारत में उपलब्ध अतिरेक को ब्रिटेन ले जाकर अपने देश की समृद्धि हासिल की।

भारत में ब्रिटिश राज्य के पूर्णतया स्थापित हो जाने के बाद प्रचलित प्रत्यक्ष लूट की प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी शोषण की प्रणाली उभर कर सामने आयी।

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। सरकार के सामने समस्या थी कि कैसे अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाये भारत में आर्थिक विकास की इन समस्याओं को हल करने लिए बाजार व्यवस्था के साथ नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना। और

1951 से पहली पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया। अब तक दस पंचवर्षीय योजना पूर्ण हो चुकी हैं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। एक लम्बी अवधि के अन्तराल के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आए।

जब समाज का एक भाग न्यूनतम जीवन स्तर से भी नीचे जीवन यापन के लिए विवश होता है तो यह स्थिति गरीबी की स्थिति कहलाती है। विश्व के सभी देशों में गरीबी को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। यद्यपि गरीबी को कई दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है। एक दृष्टिकोण में गरीबी को आधारिक सुविधाओं तथा भोजन, आवास, शिक्षा तथा चिकित्सा से सम्बद्व कर परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। आय के स्तर पर विचार किए बिना यदि किसी परिवार में इस आधारिक सुविधाओ की कमी रहती है तो उस परिवार को गरीब माना जाता है। इस दृष्टिकोण का सबसे बड़ा दोष यह है, कि इसमें वे भी परिवार गरीबी की सूची में सम्मिलित कर लिए जाते है जिनकी आय अधिक है परन्तु अपनी बुनियादी आवश्यकताओं पर व्यय नहीं करते है। और दूसरी ओर वे परिवार सम्मिलित नहीं होते है जिनकी आय तो नगण्य है परन्तु वे ऋण, पूर्व बचत को कम करके रिश्तेदारों और मित्रों से सहायता लेकर अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। एक दूसरे दृष्टिकोण में एक परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं का आकलन तथा फिर एक आधार वर्ष की कीमत के आधार पर अपेक्षित आय में रुपांतरित कर दिया जाता है। भारत में इसी दृष्टिकोण के आधार पर गरीबी को परिभाषित किया जाता है। विभिन्न विद्वानो ने गरीबी को निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

राउन्ट्री (Rowntree) ने गरीबी को परिभाषित करते हुये लिखा है कि *"गरीबी जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये किये गये न्यूनतम व्यय से सम्बन्धित है, जिसमें भोजन, कपड़ा, मकान, घर का किराया, ईंधन आदि सभी आवश्यक वस्तुओं की कीमत शामिल है।"*

दो अध्येताओं, **शाहीन रफी खान** और **डैमियन किल्लेन** (Shaheen Rafi Khan and Damian Killen) ने गरीबी की स्थिति को बहुत स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। इनके अनुसार गरीबी भूख है, गरीबी बीमार होना है और डॉक्टर को न दिखा पाने की विवषता है। यह स्कूल में न जा पाने और निरक्षर रह जाने का नाम है। गरीबी बेरोजगारी व अपने भविष्य के प्रति भय है। यह अपने बच्चे को उस बीमारी से मरते हुये देखने की स्थिति है जो अस्वच्छ पानी पीने से होती है। गरीबी शक्ति प्रतिनिधित्व और स्वतन्त्रता की हीनता का नाम है।

एस. महेन्द्र देव (S. Mahendra Dev) ने गरीबी को बहुआयामी तथ्य के संदर्भ में लिया है। इनके अनुसार गरीबी केवल आय व उपभोग के स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य व शिक्षा का भी गरीबी की अवधारणा में विचार करना चाहिये।

प्रो0 अर्मत्य सेन (Prof. Armatya Sen) के अनुसार, गरीबी निरपेक्ष वंचित की तुलना में सापेक्षिक अभाव को बताती है। सेन का मानना है कि सामान्यतः भुखमरी गरीबी को ही दर्शाती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि व्यापक रूप में गरीबी होने पर भुखमरी भी गम्भीर अवस्था में हो।

बाईसब्रान्ड के अनुसार गरीबी मुख्यतः अपर्याप्त भोजन, कपड़ा और रहने की समस्या से सम्बन्धित है।

इस प्रकार गरीबी की धारणा एक बहुआयामी तथ्य है। यह केवल आय व उपभोग स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास व उचित रहन–सहन के स्तर से वंचित रहने की स्थिति से भी सम्बन्धित है।

8.4 गरीबी की माप (MEASUREMENT OF POVERTY)

गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता हैः

1. **सापेक्षित प्रतिमान (RELATIVE MEASUREMENT):** गरीबी के सापेक्षित माप के अर्न्तगत देश की जनसंख्या की सम्पत्ति उपभोग अथवा आय स्तर के आधार पर विभिन्न क्रमिक वर्गो में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त वर्गों को सम्पति, आय, उपभोग के बढ़ते या घटते हुए स्तरो के आधार पर क्रमबद्व किया जाता है। तत्पश्चात उच्चतम 5 प्रतिशत या 10 प्रतिशत निवासियों के अंश से की जाती है। सापेक्षित प्रतिमान के आधार पर प्राप्त जानकारी गरीबी की अपेक्षा आय, सम्पत्ति तथा उपभोग के वितरण में व्याप्त विषमता का बेहतर चित्रण करती है। इसकी सीमा यह है कि इसके द्वारा गरीबी की माप करने पर विकसित देशों में भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी की श्रेणी में आयेगा। यद्यपि उन देशो के गरीबों के रहन सहन का स्तर विकासशील देशों के गरीबों की तुलना में अधिक बेहतर होगा। वस्तुतः यह प्रणाली गरीबी की वास्तविक माप का चित्रण नहीं करके आर्थिक विषमता का चित्रण करती है। यही कारण है कि भारत में गरीबी की माप इस विधि से नहीं की जाती है।
2. **निरपेक्ष प्रतिमान (ABSOLUTE MEASUREMENT):** गरीबी माप की इस विधि के अर्न्तगत गरीबी की माप के लिए देश में विद्यमान एक न्यूनतम उपभोग स्तर को जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। न्यूनतम उपभोग स्तर से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति को गरीबो की श्रेणी में रखा जाता है। भारत में इस न्यूनतम उपभोग स्तर को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए जीवन यापन हेतु अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं की न्यूनतम मात्रा को पोषकता की न्यूनतम मात्रा के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भौतिक मात्राओं की कीमत से गुणा करके मुद्रा के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। प्राप्त मौद्रिक मान प्रति व्यक्ति न्यूनतम उपभोग व्यय को प्रदर्शित करता है। यही न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। ज्ञातव्य है कि गरीबी की माप के लिए **निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग सर्वप्रथम खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रथम महानिदेशक सर जॉन बॉयड ओर** (Sir John Boyd Orr) **ने 1945** में किया तथा इसके आधार पर गरीबी की माप करने के लिए क्षुधा रेखा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। यही संकल्पना विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

भारत में गरीबी की माप करने के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का ही प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रतिमान के आधार पर निर्धारित किए गये न्यूनतम उपभोग व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी जाती है। इस विधि के माध्यम से गरीबी की माप करने की विधि को हेड काउंट रेशियो भी कहा जाता है।

8.5 गरीबी का परिमाण (MAGNITUDE OF POVERTY)

भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान लगाने के लिये समुचित एवं संतोषजनक आँकड़ों का अभाव है। इसका कारण यह है कि इस देश में आय के वितरण से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रायः उचित संकलन नहीं हो पाता। परन्तु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के विभिन्न दौर में

सर्वेक्षण के आधार पर जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा निजी उपभोग पर व्यय के संतोषजनक आँकड़े उपलब्ध हुये हैं। परन्तु गरीबी की परिभाषा पर मतभेद और अध्ययन की रीतियों के अन्तर के कारण बर्धन, मिन्हास, पी0डी0 ओझा तथा दांडेकर व नीलकंठ रथ आदि अर्थशास्त्री गरीबी की व्यापकता के सम्बन्ध में एक दूसरे से भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

1. **पी.डी. ओझा के अनुमान (ESTIMATES OF P. D. OJHA):** ओझा का मत है कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें अपने आहार से प्रतिदिन 1,800 कैलोरी की प्राप्ति नहीं होती, गरीब माने जा सकते हैं। 1960–61 में प्रचलित मूल्यों के आधार पर भोजन के उपर्युक्त स्तर के अनुरूप प्रति व्यक्ति उपभोग 15–18 रू0 प्रति माह होना चाहिये।इस आधार पर ओझा के अनुसार 1960–61 में 52 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा इसी वर्ष शहरी क्षेत्रों में 56 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के स्तर से नीचे थी।
2. **दांडेकर एवं रथ के अनुमान (ESTIMATES OF DANDEKAR AND RATH):** इन्होंने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा प्रदत्त आँकड़ों का प्रयोग किया है। वे 1968–69 में ग्रामीण क्षेत्रों में उन परिवारों को गरीबी के स्तर के नीचे मानते हैं जिनकी वार्षिक आय 324 रूपये से कम थी। इस श्रेणी में आने वाले लोग समस्त ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत थे। शहरी क्षेत्र के लिये उन्होंने गरीबी का स्तर प्रति व्यक्ति 486 रूपये वार्षिक आय पर निर्धारित किया। इस आधार पर 1968–69 में शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति गरीबी के स्तर से नीचे थे।
3. **वी. एम. दांडेकर तथा नीलकंठ रथ (V. M. DANDEKAR AND NEELKANTH RATH):** ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा उपलबध आँकड़ों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि 1960–61 से 1968–69 के मध्य उपभोग पर व्यय में औसत 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई है। 1960–61 से 1967–68 तक सात वर्षों में उपभोग पर औसतन वृद्धि 3.9 प्रतिशत रही। इसी अवधि में जहाँ गॉवों में उपभोग व्यय 3.4 प्रतिशत बढ़ा, शहर में औसत वृद्धि दर 2.4 प्रतिशत थी। दांडेकर और रथ के ही शब्दों में विकास के लाभ प्रधानतः उच्च, मध्यम तथा सम्पन्न वर्गों के लोगों तक ही जो जनसंख्या के 40 प्रतिशत हैं, सीमित रहे हैं। जबकि सात वर्षों में राष्ट्रीय उपभोग के औसत स्तर में 3.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहाँ ग्रामीण लोगों में सर्वोच्च 40 प्रतिशत, लोगों के उपभोग के स्तर में 4.4 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या में ऊपर के 40 प्रतिशत लोगों के उपभोग में 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। गॉवों में मध्यम, निम्न मध्यम तथा गरीब श्रेणियों के लोगों के प्रति व्यक्ति उपभोग में अपेक्षाकृत थोड़ा सुधार हुआ और सबसे गरीब 5 प्रतिशत व्यक्तियों के प्रति व्यक्ति उपभोग में थोड़ी कमी हुई है। शहरी क्षेत्र में स्थिति अधिक गंभीर है। शहरी जनसंख्या के सबसे नीचे के 40 प्रतिशत व्यक्तियों के औसत प्रति व्यक्ति उपभोग में कमी हुई और सबसे गरीब 10 प्रतिशत जनसंख्या का उपभोग का स्तर 15 से 20 प्रतिशत गिर गया। विकास के लाभों का इस प्रकार का असमान वितरण, अंततः आर्थिक असमानता को बढ़ाता है और धनी तथा गरीब के बीच खाई चौड़ी करता है।
4. **प्रणव के. वर्धन के अनुमान (ESTIMATES OF PRANAV K. VARDHAN):** बर्धन ने कृषि में नवीन नीति के वितरण पर प्रभाव का अध्ययन

किया है। उनके अनुसार वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक के अन्त में भारत की लगभग 54 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या न्यूनतम स्वीकार्य जीवन स्तर के नीचे थी। बर्धन ने गरीबी की रेखा 1960–61 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति 15 रूपये मासिक निजी उपभोग के स्तर के अनुरूप स्वीकार की है। 1967–68 और 1968–69 में प्रचलित कीमतों के आधार पर इन वर्षों में गरीबी की रेखा क्रमशः 30.0 और 29.4 रू0 प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग के अनुरूप होगी। बर्धन के अनुमान के अनुसार इस वर्ष गरीबी की रेखा के नीचे आने वाले ग्रामीणों की संख्या 23 करोड़ थी, जो तत्कालीन ग्रामीण जनसंख्या की 54 प्रतिशत थी।

5. **बी. एस. मिन्हास के अनुमान (ESTIMATES OF B.S. MINHAS):** मिन्हास का विचार है कि 1960–61 के मूल्यों के आधार पर 200 रू0 वार्षिक के प्रति व्यक्ति निजी उपभोग द्वारा ग्रामीण परिवारों के लिये न्यूनतम जीवन स्तर को प्राप्त कर सकना संभव होगा। ''शहरी और ग्राम्य दोनों ही क्षेत्रों को मिलाकर देखने पर सारे देश के लिये सरकारी विशेषज्ञ समिति न्यूनतम जीवन स्तर के लिये 240 रू0 वार्षिक प्रति व्यक्ति निजी उपभोग की राशि इससे कम ही होनी चाहिये और मिन्हास इसे 200 रू0 मान लेते हैं।
6. **डॉ0 कोस्टा (DR. COSTA) ने अपने अनुमान** में गरीबी के तीन स्तर बताये हैं, अर्थात् अतिदीन, दीन और गरीब। उनके अनुमान के अनुसार 1963–64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अतिदीन जीवन व्यतीत करते थे। 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ व्यक्ति गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। अतिदीनता का जीवन गुजारने वाले लोगों का अनुपात 13.2 प्रतिशत था और गरीबी में रहने वालों का 34.9 प्रतिशत था।
7. **एम. एस. आहलूवालिया (M. S. AHLUWALIA)** ने भी गरीबी के अनुमान प्रस्तुत किये। 1956–57 में ग्रामीण जनता का 54.1 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा था। गरीब जनता का यह अनुमान 1960–61 में 38. 9 प्रतिशत ही रहा गया। इसके बाद 1967–68 तक गरीबों की संख्या में वृद्धि हुई। 1967–68 के बाद इस गरीबी अनुपात में कमी आयी और 1973–74 में यह गरीबी अनुपात ग्रामीण जनसंख्या का 46.1 प्रतिशत रह गया।

देश में गरीबी अनुपात के ताजा आँकड़े योजना आयोग ने मार्च 2007 में जारी किये हैं। **राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (National Sample Survey Office – N.S.S.O.)** ने गरीबी की स्थिति के आंकलन के लिये 2004–05 के अपने सर्वेक्षण में दो तरह की प्रश्नावली का प्रयोग किया है। जिसमें प्रथम 30 दिन के **यूनीफार्म रिकॉल पीरियड (Uniform Recall Period- U.R.P.)** उपभोग व्यय व दूसरा 365 दिन के संदर्भ वाले **मिक्स्ड रिकॉल पीरियड (Mixed Recall Period-M.R.P.)** पर आधारित था। इन दोनों ही आधारों पर गरीबी अनुपात अलग–अलग आँकलित किया गया है। U.R.P. आधारित ऑकलन में देश में गरीबों की संख्या 2004–05 में 30.7 करोड़ बतायी गयी है, जबकि M.R.P. आँकड़ों में यह 23.85 करोड़ है जिसमें ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में गरीबों की कुल संख्या क्रमशः 17.03 करोड़ व 6.82 करोड़ आँकलित है। इससे पूर्व 1999–2000 के आँकड़ों में देश के गरीबों की कुल संख्या (गरीबी रेखा से नीचे कुल जनसंख्या) 26.02 करोड़ (ग्रामीण क्षेत्रों में 19.32 करोड़ व शहरी क्षेत्रों में 6.7 करोड़) थी।

हमारे देश में गरीबी के माप हेतु गरीबी रेखा के निर्धारण करने का प्रयास सर्वप्रथम सरकार द्धारा गठित एक विशेषज्ञ दल द्धारा 1961 में किया गया। इस विशेषज्ञ दल ने 1960–61 की कीमतों पर 240 रू0 वार्षिक या 20 रू0 मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय को गरीबी रेखा माना था। इस विशेषज्ञ दल ने न्यूनतम उपभोग व्यय में शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किए जाने वाले व्यय का भार को नहीं लिया क्योंकि इनको सरकार स्वंय वहन करती है। उक्त विशेषज्ञ दल ने यह भी कहा था कि बाद के वर्षो के लिए गरीबी रेखा का अनुमान कीमत वृद्धि से उक्त राशि को समायोजित कर प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधार पर समय–समय पर विशेषज्ञो ने गरीबी रेखा तथा गरीबी के स्तर का अनुमान लगाया गया है। 1973–74 में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता को ध्यान में रखकर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 49.1 रू0 तथा नगरीय क्षेत्र में 56.6 रू0 मासिक व्यय से कम को गरीबी रेखा माना गया। बाद में इसमें संशोधन कर 1984–85 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों में 107 रू0 तथा नगरीय क्षेत्रों में 122 रू0 मासिक व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी। **2004–05 में इसमें पुन; संशोधित करके प्रतिव्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में 356.00 रू0 और शहरी क्षेत्रों में 538.6 रू0 मासिक** व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी। इससे स्पष्ट है कि हमारे देश में गरीबी रेखा का निर्धारण भौतिक अतिजीवन की संकल्पना के आधार पर किया गया है।

योजना आयोग द्वारा आंकलित गरीबों की संख्या को लेकर विवाद बना रहता है। 1993–94 में योजना आयोग ने प्रसिद्व अर्थविद डी0 टी0 लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ दल द्वारा योजना आयोग के पूर्व आँकडों को अविश्वसनीय बताते हुए गरीबी की माप के लिए वैकल्पिक फार्मूले का उपयोग करने का सुझाव दिया। जिसके अंतर्गत **शहरी गरीबी के आंकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक** एवं **ग्रामीण क्षेत्रो में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Index) को आधार** बनाया। **11 मार्च 1997** को योजना आयोग की पूर्ण बैठक में गरीबी रेखा की माप के लिए **लकड़वाला फार्मूले (Lakdawala Formula)** को स्वीकार कर लिया गया। इस न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक आय के विषय पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं है। 7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। इस वर्द्धित गरीबी रेखा के निर्धारण में मासिक वैयक्तिक उपभोग व्यय में सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, समाज कल्याण आदि पर किए जाने वाले प्रति व्यक्ति मासिक व्यय की राशि भी जोड़ दिया। इस प्रकार प्राप्त हुई धनराशि को वर्द्धित गरीबी रेखा का नाम दिया गया। वर्द्धित गरीबी रेखा पूरे देश के लिए समान नहीं होगा बल्कि इसका निर्धारण प्रत्येक राज्य के लिए अलग–अलग होगा। इस कारण योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार **"जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।"** जो व्यापक गरीबी की स्थिति को बताता है। जिसका विद्यमान होना चिन्ता का विषय है। इसी अवधारणा पर आधारित योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं विश्व बैंक द्वारा उपभोग व्यय से सम्बन्धित जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के अनुमापन का प्रयास किया गया।

8.6 भारत में गरीबी का अनुमान (POVERTY ESTIMATES IN INDIA)

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के विभिन्न दौर पर किए गये सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से सामान्य गरीबी का विश्लेषण तालिका 8.6.1 एवं 8.6.2 के आधार पर करते हैं तो गरीबी के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पाया गया– समग्र गरीबी का अनुपात 1993–94 से 2004–05 की अवधि के दौरान 36.0 प्रतिशत से कम होकर 27.5 प्रतिशत हो गया अर्थात् इसमें 8.50 प्रतिशत की कमी हुई जो इसके पूर्व की अवधि 1983–84 से 1993–94 के बीच भी 44.5 प्रतिशत से कम होकर 36.0 प्रतिशत अर्थात् इसमें भी 8.5 प्रतिशत की कमी हुई। शहरी क्षेत्र में यह अनुपात 1983–84 से 1993–94 की अवधि में 40.8 प्रतिशत से कम होकर 32.4 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी जो वर्ष 1993–94 से 2004–05 में 32.4 प्रतिशत से कम होकर 25.7 प्रतिशत अर्थात् इसमें 6.7 प्रतिशत की कमी हुई। ग्रामीण क्षेत्र में यह अनुपात 1983–84 से 1993–94 की अवधि में 45.7 प्रतिशत से कम होकर 37.3 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी हुई वर्ष 1993–94 से 2004–05 में 37.3 प्रतिशत से कम होकर 28.3 प्रतिशत अर्थात् 9.0 प्रतिशत की कमी हुई।

तालिका 8.6.1
समग्र देश में विभिन्न वर्षो में गरीबी का अनुमान
(वर्ष 1983–84 से 2004–05)

वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973–74	54.9	56.4	49.0
1983–84	44.50	45.70	40.80
1993–94	36.0	37.30	32.40
2004–05	27.5	28.30	25.70

स्रोत : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

ग्राफ संख्या– 8.6.1
भारत में गरीबी का अनुमान (वर्ष 1983–84 से 2004–05)

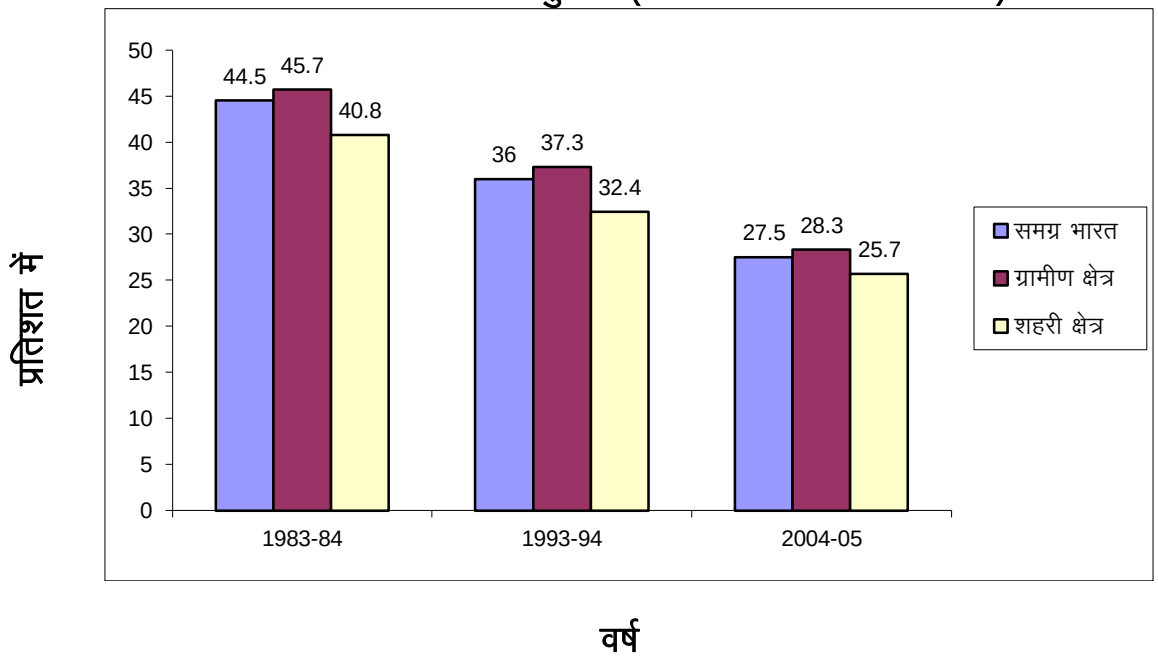

इसके साथ, शहरों में 8.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 26.8 प्रतिशत और ग्राम क्षेत्रों में 22.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 73.2 प्रतिशत है देश में गरीबों की कुल संख्या 30.2 करोड़ थी ।

तालिका 8.6.2
गरीबी में परिर्वतन (वर्ष 1973 से 2005)

प्रतिशत में

दस वार्षिक				वार्षिक		
वर्ष	**समग्र भारत**	**ग्रामीण**	**शहरी**	**समग्र भारत**	**ग्रामीण**	**शहरी**
1973–83	10.40	10.70	8.20	1.00	1.10	0.80
1983–94	8.50	8.40	8.40	0.83	0.81	0.87
1994–2005	8.50	9.00	6.90	0.78	0.80	0.59

स्रोत : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

इन आँकड़ों के विश्लेषण (तालिका 8.6.2) से यह निश्चित होता है वर्ष 1984–94 में समग्र भारत में गरीबी में कमी की दर जहाँ 0.83 प्रतिशत वार्षिक थी। वह वर्ष 1994से 2005 में कुछ मात्रा में घट कर 0.78 प्रतिशत वार्षिक हो गई। उन्हीं वर्षों में ग्रामीण क्षेत्र में 0.81 प्रतिशत से घटकर 0.80 प्रतिशत वार्षिक हो गई। वहीं शहरी क्षेत्र में 0.87 प्रतिशत से घटकर 0.59 प्रतिशत वार्षिक रह गई।

8.7 गरीबी का राज्यवार परिदृश्य (STATE WISE SCENARIO OF POVERTY)

राज्यों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से प्राप्त आँकडों का विश्लेषण करें तो वर्ष 1993–94 से 2004–05 कें युग में बड़े चुनौती युक्त परिणाम प्राप्त हुए। 61वें दौंर में गरीबी रेखा का अनुमापन समग्र भारत के आधार पर प्रति व्यक्ति मासिक व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 358.03 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 540.40 रुपये के आधार पर किया गया। और राज्यों के सन्दर्भ में यह अलग–अलग है जैसा तालिका 8.7.1 में दिया है।

तालिका 8.7.1
विभिन्न राज्यों में निर्धारित गरीबी रेखा (2004–05)

राज्य	ग्रामीण	शहरी
1	**2**	**3**
आन्ध्र प्रदेश	292.95	544.30
असम	387.64	378.38
बिहार	356.36	461.70
गुजरात	353.93	540.80
हरियाणा	414.76	504.20
हिमाचल प्रदेश	394.20	504.20
जम्मू व कश्मीर	391.26	504.20
कर्नाटक	324.17	603.50
केरल	429.07	562.00
मध्य प्रदेश	324.48	569.00

महाराष्ट्र	362.25	664.50
उड़ीसा	325.65	544.00
पंजाब	410.38	456.10
राजस्थान	374.57	531.10
तमिलनाडू	351.86	551.70
उत्तर प्रदेश	369.76	487.10
पश्चिम बंगाल	382.82	446.10
सम्पूर्ण भारत	358.03	540.40

स्रोत : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

राज्यों के सन्दर्भ में गरीबी के ज्ञात तथ्यों का तालिका 8.7.1 के आधार पर विश्लेषण करते है तो निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते है।

तालिका 8.7.2
विभिन्न राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या
(वर्ष 1993–94 से 2004–05)

राज्य	ग्रामीण		शहरी		कुल	प्रतिशत
	1993–94	2004–05	1993–94	2004–05	1993–94	2004–05
जम्मूकश्मीर	30.3	4.6	9.2	7.9	25.2	5.4
पंजाब	11.9	9.1	11.4	7.1	11.8	8.4
हिमाचल प्रदेश	30.3	10.7	9.2	3.4	28.4	10.0
हरियाणा	28.0	13.6	16.4	15.1	25.1	14.0
दिल्ली	1.9	6.9	16.0	13.2	14.7	14.7
केरल	25.8	13.2	24.5	20.2	25.4	15.0
आन्ध्र प्रदेश	15.9	11.2	38.3	28.0	22.2	15.8
गुजरात	22.2	19.1	27.9	13.0	24.2	16.8
असम	45.0	22.3	7.7	3.3	40.9	19.7
राजस्थान	26.5	18.7	30.5	32.9	27.4	22.1
तमिलनाडु	32.5	22.8	39.8	22.2	35.0	22.5
प0 बंगाल	40.8	28.6	22.4	14.8	35.7	24.7
कर्नाटक	29.9	20.8	40.1	32.6	33.2	25.0
महाराष्ट्र	37.9	29.6	35.2	32.2	36.9	30.7
उ0 प्र0	42.3	33.4	35.4	30.6	40.9	32.8
म0 प्र0	40.6	36.9	48.4	42.1	42.5	38.3
बिहार	58.2	42.1	34.5	34.6	55.00	41.4
उड़ीसा	49.7	46.8	41.6	44.3	48.6	46.4
उत्तराखण्ड	....	40.8	.....	36.5	.....	39.6

सम्पूर्ण भारत	37.3	28.3	32.4	25.7	36.00	27.5

स्रोत : योजना आयोग एवं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण

1. गुजरात और तमिलनाडु ऐसे राज्य थे जहाँ 1993–94 में ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी से कम थी, परन्तु वर्ष 1993 से 2004 में शहरी गरीबी में विशेष कमी हुई उस रुप में ग्रामीण गरीबी नहीं घटी।
2. अनेक सम्पन्न राज्यों में शहरी गरीबी में जिस अनुपात में कमी हुई उस अनुपात में ग्रामीण गरीबी में कमी नहीं हुई जैसे आन्ध्रप्रदेश में ग्रामीण गरीबी में कमी 4.7 प्रतिशत की हुई जबकि शहरी गरीबी में 10 प्रतिशत की कमी हुई। गुजरात में ग्रामीण में 3.1 प्रतिशत और शहरी गरीबी में 14.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई और तमिलनाडु में ग्रामीण गरीबी में 9.7 प्रतिशत की एवं शहरी गरीबी में 17.6 प्रतिशत की कमी हुई।
3. दिल्ली ऐसा प्रदेश रहा जहाँ ग्रामीण गरीबी 1.9 प्रतिशत से बढ़कर 6.9 प्रतिशत हो गई।
4. जम्मू कश्मीर,पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, केरल, असम, राजस्थान, प0 बंगाल एवं कर्नाटक में ग्रामीण गरीबी में विशेष सुधार हुआ।
5. हिमाचल प्रदेश (5.8), आन्ध्र प्रदेश (10.3), गुजरात (14.9), तमिलनाडु (17.6), पं0 बंगाल (7.6), कर्नाटक (7.5) आदि सम्पन्न राज्यो में शहरी गरीबी में दस प्रतिशत से अधिक या उससे थोडी कम की कमी हुई।
6. गरीबी का सर्वाधिक प्रतिशत उड़ीसा में 46.4 प्रतिशत था और सबसे कम अनुपात जम्मू और कश्मीर में 5.4 प्रतिशत था।
7. महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उत्तराखण्ड में गरीबी अनुपात 30 प्रतिशत से अधिक था। जबकि झारखण्ड, छत्तीसगढ, बिहार और उड़ीसा में गरीबी अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक रहा। और दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और जम्मू और कश्मीर ऐसे राज्य थे जहाँ गरीबी अनुपात 15 प्रतिशत से भी कम है।

8.8 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम (POLICIES AND PROGRAMMES FOR POVERTY ALLIVATION)

8.8.1 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ (POLICIES FOR POVERTY ALLIVATION)

भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय को सरकार की रणनीतियों का प्राथमिक उद्देश्य माना है।

- **प्रथम योजना (1951–56)** में ही यह विचार व्यक्त किया गया था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अंत:प्रेरणा का उदय गरीबी और आय, संपत्ति तथा अवसरों की असमानताओं से होता है और माना गया कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के बढ़ने के साथ रिसाव सिद्धान्त प्रभावी हो जायेगा एवं गरीबी और आय, सम्पत्ति की असमानता में कमी आएगी।
- **दूसरी योजना (1956–61)** में भी कहा गया है, *"आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली वर्गो तक पहुँचना चाहिए"।* प्राय सरकार

के सभी नीति विषयक प्रपत्रों में गरीबी निवारण और अपनाई जाने वाली रणनीतियों की चर्चा हुई है। इस सन्दर्भ में सरकार गरीबी निवारण के लिए त्रि–आयामी नीति अपनाई। प्रथम संवृद्धि आधारित जो प्रथम, दूसरी एवं तीसरी योजना में रही जो राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि का प्रभाव धीरे–धीरे गरीबी वर्ग तक पहुँचने पर आधारित था। जिसमें चुने क्षेत्रों का तीव्र औद्योगिक विकास हो।

- **तीसरी योजना (1961–66)** में लागू हरित क्रान्ति से कृषि का पूर्ण काया–कल्प कर समाज के अधिक पिछड़े वर्गो को लाभान्वित करना था। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में बहुत वृद्धि न हो सकी एवं साथ ही धनी एवं गरीबी की खाई और बढ़ गई। हरित क्रान्ति ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच खाई को और चौड़ा किया। जबकि भूमि के पुर्नवितरण की इच्छा तथा योग्यता का अभाव था।
- **चौथी योजना (1969–74)** तक गरीबी के निवारण हेतु प्रत्यक्ष कार्यवाही की जगह अप्रत्यक्ष नीति का सहारा लिया जाता रहा।
- **पाँचवी योजना (1974–1979)** में प्रथम बार गरीबी से मुक्ती को मुख्य उद्देश्य माना गया। योजना के अर्न्तगत गरीबी निवारण, स्वालम्बन की प्राप्ति, आय की विषमताओं में कमी और गरीबों के उपभोग स्तर में वृद्धि के मुख्य लक्ष्य नियत किए थे।
- **छठी योजना (1980–85)** में भी गरीबी निवारण को महत्ता प्रदान की गई। विकास कार्यक्रमो में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सामाजिक आर्थिक अन्तसंरचना को सुदृढ़ करने, ग्रामीण गरीबी का निवारण एवं क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम संचालित किए।
- **सातवीं योजना (1985–90)** में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि,रोजगार अवसरों में वृद्धि, आधुनिकीकरण, स्वालम्बन व सामाजिक न्याय के आधारभूत सिद्धान्त के आधार पर उत्पादकता में वृद्धि आने पर बल दिया गया जिससे गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव हो इसी रणनीति के तहत गरीबी से सन्दर्भित अनेक कार्यक्रम चलाये गयें।
- **आठवीं योजना (1992–97)** में नियोजित विकास हेतु 'मानव विकास' को मुख्य रूप से मानव विकास की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देते हुए न्याय संगत सामाजिक स्थिति के पुनरूस्थापन पर जोर दिया गया। यह सुनिश्चित किया गया कि योजना के केन्द्र में, आम लोगों की आवश्यकताएँ व उनका जीवन स्तर सुधार का लक्ष्य रहे। इसके लिए काम के अधिकार, ग्रामीण विकास की अनिर्वायता, विकेन्द्रीकरण व एकीकृत क्षेत्र आयोजना, कृषि का विकास, शहरी गरीबी व बेरोजगारी का निवारण व सामाजिक विकास शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तर में परिवर्तन, खाद्य व सामाजिक सुरक्षा की बेहतर स्थिति व जनसंख्या नियत्रंण की रणनीति प्रस्तावित की गयी।
- **नवीं योजना (1997–2002)** में उन योजनाओं को प्राथमिकता के आधार पर लागू किया गया जो कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गयी जिससें कि गरीबी का निवारण हो सके। इसके साथ ही योजना हेतु र्निदिष्ट स्कीमों में श्रम गहन होने पर जोर दिया गया जो दीर्घकालीन धारणीय लाभ प्रदान कर सके। योजना काल में आरम्भ किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के द्वारा जो संरचनात्मक सुधार लागू हुए उनका ध्येय भी गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करना ही था।

- **दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07)** के दौरान तीव्र वृद्धि के साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी में बड़ी कमी का लक्ष्य रखा गया। योजना में 8 प्रतिशत वार्षिक विकास का लक्ष्य रखा गया। इसके साथ प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता में वृद्धि करना, स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। परन्तु जहाँ वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत प्राप्त हुई वहीं गरीबी निवारण कार्यक्रमों में उतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई जितनी आशा थी।
- **ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2002–12)** में समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ शुरू की गई है। जिसमें गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार के अनेक दीर्घकालीन कार्यक्रमों को लागू किया गया है और इसे इस प्रकार क्रियान्वित किया जाना है कि आर्थिक व सामाजिक विकास में राज्यों के बीच अन्तर समाप्त हो जाए।

8.8.2 गरीबी निवारण के लिए कार्यक्रम (PROGRAMMES FOR POVERTY ALLIVATION)

गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार ने अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। इसमें से अधिकांश कार्यक्रम भौतिक सम्पदा के निर्माण जैसे– ग्रामीण आधारिक संरचना के अन्तर्गत सड़क, पीने का पानी की सुविधाओं, सीवरेज आदि से जुड़े है जबकि अन्य को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करना तथा व्यापार प्रारम्भ करने हेतु सहायता प्रदान करना है। स्वयं सहायता समूह भी लोगों के सतत् विकास हेतु प्रयत्नशील है। गरीबी निवारक कार्यक्रम निम्न है–

- **अस्थायी रोजगार सृजित करने वाले कार्यक्रम (TEMPORARY EMPLOYMENT GENERATING PROGRAMS):** जवाहर रोजगार योजना (जे0आर0वाई0), जवाहर समृद्धि योजना, दस लाख कुआं योजना, रोजगार गारंटी योजना, काम के बदले आनाज, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन0आर0ई0पी0), भूमिहीन ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (एन0आर0ई0जी0पी0), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम (2005)।
- **सतत् रोजगार एवं आय सृजित कार्यक्रम (SUSTAINABLE EMPLOYMENT AND INCOME GENERATING PROGRAMS):** स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वयंसिद्धा प्रोजेक्ट, संयुक्त वन प्रबन्धन कार्यक्रम, स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण वन प्रबन्धन कमेटी, सूक्ष्म वित्त एवं प्रबन्धन द्वारा लाभार्थी का व्यापक आर्थिक सुधार।
- **जीविका की लागत कम करने वाले कार्यक्रम (LIVELIHOOD COST REDUCTION PROGRAMS):** सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वजल धारा (ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की सुनिश्चितता करना), इन्दिरा आवास योजना।

इनमें से मुख्य कार्यक्रमों का विवरण निम्न है–

गरीबी निवारक कार्यक्रम

क्र. सं.	कार्यक्रम	वर्ष	उद्देश्य
1.	सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP)	1960–61	कृषकों को बीज, उर्वरक, औजार और ऋण उपलब्ध करना ।
2.	साख अधिकरण योजना	1995	RBI की चयनात्मक साख नीति

	(CAS)		की एक योजना
3.	बहु फसली कार्यक्रम (MCP)	1966–67	कृषि उत्पादन में वृद्धि करना
4.	विभेदीकृत ब्याजदर योजना	1972	समाज के कमजोर वर्गो को रियायती दर 4 प्रतिशत पर ऋण उपलब्ध कराना।
5.	ग्रामीण रोजगार के लिए नकद योजना	1972–74	ग्रामीण विकास हेतु
6.	मरूभूमि विकास कार्यक्रम	1977–78	मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण सन्तुलन
7.	काम के बदले अनाज कार्यक्रम	1977–78	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।
8.	अन्तोदय कार्यक्रम	1977–78	राजस्थान में गांव के सबसे गरीब परिवारों को स्वाबलम्बी बनाना।
9.	ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM)	15 अगस्त 1979	युवा वर्ग की बेरोजगारी को दूर करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम
10.	समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP)	2 अक्टूबर 1980	ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेतु ऋण उपलब्ध कराना।
11.	राष्ट्रीय ग्राम्य रोजगार कार्यक्रम (NREP)	1980	ग्रामीण निर्धनों को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
12.	ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास (DWCRA)	1982	BPL ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को कार्यक्रम के तहत् स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
13.	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (RLEGP)	15 अगस्त 1983	भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
14.	शिक्षित बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार प्रदान करने की योजना (SEEUY)	1983–84	स्वरोजगार हेतु वित्तीय व तकनीकी सहयोग।
15.	इन्दिरा आवास योजना	1985–86	ग्रामीण क्षेत्रों में गृह निमार्ण हेतु।
16.	शहरी निर्धनों हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम (SEPUP)	1986	स्वरोजगार हेतु वित्तीय एवं तकनीकी मद्द
17.	सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण	1988	ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नई साख नीति।
18.	प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम	1988	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में शिक्षा विस्तार।
19.	नेहरू रोजगार योजना	अक्टूबर	नगरीय बेरोजगारों को रोजगार देने

	(NRY)	1989	हेतु।
20.	जवाहर रोजगार योजना (JRY)	अप्रैल 1989	ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
21.	कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना (ARDRS)	1990	ग्रामीण कुशल श्रमिकों, कारीगरों बुनकरों को 10000रु0 तक ब्याज मुक्त ऋण देना।
22.	शहरी सूक्ष्म उद्यम योजना	1990	शहरी लघु उद्यमियों को वित्तीय सहायता।
23.	शहरी सवेतन रोजगार योजना	1990	एक लाख से कम जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में गरीबों के लिए मूल सुविधा की व्यवस्था करके मजदूरी रोजगार प्रदान करना।
24.	शहरी आवास एवं आश्रय सुधार योजना	1990	1 लाख से 20 लाख की जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में आश्रय उन्नयन के माध्यम से रोजगार प्रदान करना।
25.	रोजगार आश्वासन योजना।	1993–94	रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
26.	प्रधान मंत्री की शिक्षित बेरोजगार युवकों हेतु योजना	18 नवम्बर 1995	50000 से 1 लाख जनसंख्या वाले क्षेत्रों में रोजगार हेतु शिक्षित युवकों को वित्तीय सहायता।
27.	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995	विभिन्न योजनाओं द्वारा BPL लोगों को सहायता।
28.	उत्तर–पूर्व विकास बैंक	1995	उत्तर–पूर्व क्षेत्रों में उद्योंगों को सहायता।
29.	संगम योजना	1996	विकलांगों के कल्याण हेतु।
30.	कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना	15 अगस्त 1997	नीची महिला साक्षरता वाले जिलों में बालिका विद्यालय की स्थापना।
31.	स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)	1 दिसम्बर 1997	शहरी क्षेत्रों में लाभ प्रद रोजगार उपलब्ध कराना। योजना में तीन योजनाएं विलय कर दी गयी– (1) नेहरू रोजगार योजना (2) प्रधान मंत्री को समन्वित शहरी गरीबी निवारण कार्यक्रम (3) शहरी बेसिक सेवा गरीबी हेतु।
32.	जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	1 अप्रैल 1999	ग्रामीण निर्धनों का जीवन सुधारना और लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
33.	अन्नपूर्णा योजना	19 मार्च 1999	वृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज
34.	स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार	1 अप्रैल	सामूहिक प्रयास पर बल। सहायता

	योजना (SJGSY)	1999	प्राप्त गरीब व्यक्ति को 3 वर्ष में BPL के ऊपर लाना। इसमें छः कार्यक्रमों का विलय कर दिया गया 1. ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM) 2. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) 3. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास (DWCRA) 4. ग्रामीण क्षेत्रों में टूलकिट की आपूर्ति (SITRA) 5. मिलियन वेल्स योजना (MWS) 6. गंगा कल्याण योजना ;GKY)
35.	प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	2000	गाँवों का समग्र विकास।
36.	अन्तोदय योजना	2000	बी.पी.एल. पारिवारिक सर्वाधिक गरीबों को अनाज 2 रूपया गेहूँ 3 रूपया किलों चावल उपलब्ध कराना।
37.	आश्रय बीमा योजना	जून 2001	रोजगार छूटे कर्मचारियों को सुरक्षा कवच प्रदान करना।
38.	सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)	25 सितम्बर 2001	ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का सृजन
39.	बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना	2001, दिसम्बर	शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने हेतु।
40.	सर्वशिक्षा अभियान	2000–01	6–14 वर्ष के सभी बच्चों को 2010 तक निःशुल्क एवं आठवीं तक की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।
41.	गुणवता युक्त खाद्यान्न बैंक योजना	2001	घोषित ग्राम पंचायत स्तर पर खाद्यान्न बैंक की स्थापना।
42.	महिला स्वयं सिद्धि योजना	12 जुलाई 2001	महिलाओं का सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण/योजना में इन्दिरा महिला योजना और महिला समृद्धि योजना का विलय।
43.	प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना	25 दिसम्बर 2000	100ः केन्द्रीय स्कीम, 500 से अधिक जनसंख्या वाले गाँवों को जोड़ना।
44.	जय प्रकाश नारायण रोजगार गारन्टी	2002–03	देश के पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों को रोजगार व योजना जरूरत मन्दों उपलब्ध कराने हेतु।

45.	हरियाली योजना	27 जनवरी 2003	ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहन।
46.	ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं का प्रावधान (PURA)	15 अगस्त 2003	ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध शहरी सुविधाओं की उन्नत सुविधा उपलब्ध कराना।
47.	जवाहर लाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूअल मिशन	3 दिसम्बर 2005	भारतीय शहरों में अवस्थापनात्मक सुविधाओं और नगरीय सुविधाओं के विकास हेतु चरणबद्ध तरीके से योजना के लक्ष्यों को लागू करा।
48.	राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ अभियान	12 अप्रैल 2005	प्राथमिक स्वास्थय सुरक्षा को सुदृढ़ करना।
49.	भारत निर्माण योजना	16 दिसम्बर 2005	ग्रामीण अवसथापना सर्वागीण तथा व्यापक विकास योजना।
50.	प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना	2009–10	अनुसूचित जाति बहुल ग्राम विकास योजना।
51.	महिला किसान सशक्ति करण योजना	2010–11	ग्रामीण किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु
52.	महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MNREGA)	2 अक्टूबर 2009 मूलतः 2.2.2006	ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार का अधिकार देना

8.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन (CRITICAL EVALUATION OF POVERTY ALLEVIATION STRATEGY)

भारतीय योजनाकारों की आरम्भ से ही यह धारणा थी कि आर्थिक विकास प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जिसका प्रभाव रिसाव द्वारा नीचे तक स्वंय ही पहुँच जायेगा। जिसके साथ प्रगितिशील करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय का कल्याणकारी स्वरूप गरीबी में कमी लायेगा। परन्तु गरीबी निवारण की यह धारणा सफल न हो सकी। इस सन्दर्भ में गरीबी निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय के सृजन पर केन्द्रित रहा है। परिवार कल्याण, पैष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इन कार्यक्रमों में अपाहिज, बीमार तथा उत्पादक रूप से काम करने के अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं किया गया है। कामकाजी जनसंख्या लगातार छोटी होती जा रही है, स्वरोजगार उद्यमों पर या मजदूरों के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है।

वर्ष 1965–66 के बाद नई कृषि क्रान्ति के आने से गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अब कृषि उत्पादन में वृद्धि और अधिक भूमि के कारण नहीं बल्कि गहन खेती के कारण होने लगी। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऐसे परिर्वतन हुए जो गरीबों के लिए हितकर नहीं थे। जैसे मशीनों द्वारा श्रम का प्रतिस्थापन फलस्वरूप रोजगार के अवसर नहीं बढ़ सके। बड़े भूस्वामियों ने छोटे–छोटे काश्तकारों से बटाँई खेती लेकर स्वय कृषि कार्य करना शुरू कर दिया। बड़े कृषकों की आय बढ़ने एवं मँहगी कृषि आगत से साधन–विहीन सीमांत व छोटे

कृषकों की आय घटने से स्थानीय दस्तकारों व कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं की माँग गिरी और लोग ज्यादा गरीब हो गए।
जबकि आवश्यकता इस बात पर ध्यान देने की है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

8.10 गरीबी निवारण के उपाय (MEASURES OF POVERTY ALLEVIATION)

गरीबी की समस्या को दूर करने के लिए उन दशाओं को सुधारना आवश्यक है जिनके कारण गरीबी उत्पन्न होती है। जिस लिए एक बहुपक्षीय कूटनीति बहुत जरूरी है। इसके प्रमुख पक्ष निम्न है–

1. आर्थिक विकास दर को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए, विशेष रूप से सभी क्षेत्रों के मध्य का संतुलन बनाया जाए।
2. कृषि विकास एवं गरीबी के मध्य प्रत्यक्ष सह–सम्बन्ध दिखाई देता है। जिन राज्यों में कृषि क्षेत्र की संवृद्धि दर तेज पायी गई वहाँ गरीबी में कम देखी गई। हरित क्रान्ति का प्रभाव जैसे–जैसे सीमान्त एवं छोटे कृषकों तक पहुँचा गरीबी में कमी हुई। अतः कृषि विकास की नवीन रणनीति, लघु व सीमान्त कृषिकों तथा ऐसे भूमि क्षेत्रों को भी ध्यान में रखना है, जहाँ भूमि उपज न्यून है।
3. गरीबी के निवारण हेतु ग्रामीण एवं लघु कुटीर उद्योगों एवं ग्रमीण हस्तशिल्प का विकास किया जाना चाहिए। इस हेतु ग्रामीण औद्योगिकरण को बढ़ावा देते हुए ग्राम स्तर पर लघु कुटीर उद्योगों को स्थापित करने के लिए अधिक प्रयास करने होगें तथा इन्हें संसाधन, वित्त व बाजार की समस्त सुविधाँए प्रदान करनी होगी। लघु उद्योगों में नवीन शोध को बढ़ावा देकर अत्पादित वस्तु की गुणवत्ता को बढ़ाना होगा।
4. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी निवारण की अधिक सुस्पष्ट एवं महत्वपूर्ण नीति है। इसके द्वारा उत्पादकता वृद्धि ग्रामीण जनसंख्या के जीवन–स्तर में सुधार एवं स्वालम्बन युक्त विकास किया जाना सम्भव होगा। जिस परिप्रेक्ष्य में श्रम गहन कृषि विकास, कृषि आधारित लघु एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की स्थापना, एवं कार्यक्रमों के निर्माण में ग्राम जन की भागीदारी सुनिश्चित करना होगा।
5. जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने विकास को प्रभावहीन कर दिया। राष्ट्रीय आय में नगण्य वृद्धि हुई। इस हेतु एक प्रभावी नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन की आवश्यकता है।
6. आय एवं धन के वितरण में असमानता को कम करने हेतु तीव्र कदम उठाने चाहिए। प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से वितरण में समानता लाने का प्रयास किया जाए। भूमि एवं शहरी सम्पत्ति की अधिकतम सीमा का निर्धारण कर अतिरिक्त को जनकल्याण के कार्यो में लगाया जाना चाहिए।
7. बचत, निवेश और पूँजी–निर्माण को तीव्र प्रोत्साहन हेतु प्रभावी कदम उठाने चाहिए। बचत को प्रोत्साहन कर उन्हे उत्पादक कार्यो में लगाया जाना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में छोटी–छोटी बचतों को एकत्रीकरण के साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी को भी आकर्षित करना आवश्यक है।
8. गरीबी के मूल कारण से जुड़ी हुई आधार भूत आवश्यकताएं प्रभावी आय पर प्रहार आवश्यक है। इस सन्दर्भ में प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, सड़क, बिजली,

आवास एवं विद्युतीकरण के कार्यक्रमों को तीव्रता से लागू कर गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव है।

9. क्षेत्रीय असमानता को दूर करने एवं सीमान्त प्रदेशों में प्रेरित प्रवास रूपी कार्यक्रम आरम्भ करने चाहिए। जैसा कि ब्राजील, चीन, मलेशिया जैसे देशो में महज जनसंख्या प्रदेशों से भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम करने के लिए सीमान्त प्रदेशों में प्रवास को प्रेरित करने का व बसाव की विधि को अपनाया एवं सफलता पायी।

8.11 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

1. लघु प्रश्न

1. गरीबी का परिमाण से क्या आशय है ?
2. भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान किस विधि से करते है ?
3. सापेक्ष एवे निरपेक्ष गरीबी किसे कहते है?
4. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम की प्रमुख दो विशेषता बताइए।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें ।

1. भारत में ..... प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते है।
2. गरीबी रेखा की पुर्न परिभाषा हेतु ..... की अध्यक्षता में समिति गठित की गयी है।
3. गरीबी की माप के लिए सामान्यतः..... का प्रयोग किया जाता है
4. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना 1 जनवरी .....से प्रारम्भ हुई थी।
5. निर्धनता रेखा मापने का कैलोरी मापदण्ड ..... द्वारा दिया गया है।
6. शहरी गरीबी के आंकलन के लिए ..... को आधार बनाया।
7. ग्रामीण गरीबी के आंकलन के लिए .....को आधार बनाया।
8. भारत में गरीबी की माप .....प्रतिमान विधि से की जाती है।

8.12 सारांश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी है। 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना।गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों सापेक्षित प्रतिमान और निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है।7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया।योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं

की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

8.13 शब्दावली (GLOSSARY)

- **बी0पी0एल0 (B.P.L.):** गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगो को कहते है।
- **गरीबी का दुश्चक्र (VICIOUS CYCLE OF POVERTY):** अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यवधान डालने वाली उन समस्यओं एवं बाधाओं से है जो इन देशों के गरीबी के 'कारण व परिणाम के रूप में' वृत्ताकार आकार में घटित होती रहती है।
- **प्रति व्यक्ति आय (PER CAPITA INCOME):** राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है।
- **मानव विकास सूचकांक (HUMAN DEVELOPMENT INDEX):** विकास के तुलनात्मक अध्ययन हेतु मानव विकास रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम द्वारा (यू.एन.डी.पी.) द्वारा मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया। इस सूचकांक को जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक योग्यता तथा क्रय शक्ति आधारित प्रति व्यक्ति आय को शामिल करके निर्मित किया गया है एवं वर्तमान समय में यह विकास का महत्वपूर्ण पैमाना है।
- **महिला सशक्तिकरण (WOMEN EMPOWERMWNT):** महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं के आर्थिक सामाजिक उत्थान के साथ–साथ राजनैतिक चेतना के ऐसे विकास से है जहां महिला समाज के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता तथा सम्मानता पूर्वक योगदान कर सके एवं प्रत्येक स्तर पर निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभा सके।
- **ग्रामीण विकास (RURAL DEVELOPMENT):** ग्रामीण स्तर पर सभी को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराते हुये ग्रामीण जीवन स्तर सुधार करने की प्रक्रिया को ग्रामीण विकास कहते है।
- **क्रय शक्ति (PURCHASING POWER):** खरीदने की क्षमता को कहते है।

8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें ।

1. 39.6
2. प्रो0 सुरेश तेन्दुलकर
3. दो प्रतिमानों
4. 1999
5. योजना आयोग
6. औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
7. कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
8. निरपेक्ष

8.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Datt Ruddar (1997) Economic Reforms in India (A Unit).
- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.

- Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था – सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

8.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- अर्थव्यवस्था अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

8.17 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारत में गरीबी की समस्या का स्वरूप कैसा है? नियोजन काल में लागू किए गये प्रमुख कार्यक्रमों के आधार पर विश्लेषण कीजिए।
2. गरीबी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. गरीबी किसी भी समाज के लिए अभिशाप है। इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
4. किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?इसे कैसे दूर कर सकते है।
5. किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

इकाई 9 बेरोजगारी
(UNEMPLOYMENT)

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 बेरोजगारी
9.3.1 बेरोजगारी का आशय
9.3.2 बेरोजगारी के प्रकार
9.3.3 बेरोजगारी के कारण
9.4 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण
9.5 राज्यों में रोजगार का परिदृश्य
9.6 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव
9.7 बेरोजगारी निवारण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति
9.8 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम
9.9 अभ्यास प्रश्न
9.10 सांराश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्बादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बेरोजगारी को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगे। आप यह भी समझा सकेंगे कि बेरोजगारी के क्या कारण है, इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके दोष और देश में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण कर सकेगें। आप इससे जुड़ी नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ✓ बेरोजगारी के आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगे।
- ✓ भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बेरोजगारी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ भारत में बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ सरकार द्धारा बेरोजगारी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

9.3 बेरोजगारी (UNEMPLOYMENT)

अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है।

9.3.1 बेरोजगारी का आशय ;डम।छप्छळ ब्व न्छम्डच्स्व्ल्डम्छज्द्ध

बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्बादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है जिसकी जड़ गहरी पहुंच चुकी है। आज इसका स्परूप दीर्धता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। भारत में ही बेकारी नहीं अपितु बेकारी की समस्या विश्वव्यापी है। सामान्यतया जब एक व्यक्ति को

अपने जीवन निर्वाह के लिए कोई कार्य नहीं मिलता है तो उस व्यक्ति को बेरोजगार और इस समस्या को बेराजगारी कहते है। दूसरे शब्दों में जब कोई व्यक्ति कार्य करने का इच्छुक है और वह शारीरिक रुप से कार्य करने में समर्थ भी है लेकिन कोई कार्य नहीं मिलता जिससे की वह अपनी जीविका का निर्वाहन कर सके तो इस प्रकार की समस्या बेरोजगारी की समस्या कहलाती है। हम बेरोजगार जनसंख्या के उस बढ़े भाग को नहीं कहते हैं जो काम के लिए नहीं मिलते जैसे विद्यार्थी बढ़े उम्र के व्यक्ति घरेलू कार्यो में लगी महिलायें आदि। जैसा **प्रो0 पीगू** (Prof. Pigou) ने कहा है ***"एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता है। जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो।"*** *("Unemployment means, all those who are willing to work are not able to find job")*

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रकाशन के मुताबिक बेरोजगार शब्द में वे सब व्यक्ति शामिल किये जाने चाहिये जो एक दिये हुए दिन में काम की तलाश में और रोजगार में नहीं लगे हुए हैं किन्तु यदि कोई रोजगार दिया जाय तो काम में लग सकतें है।

समस्या को परिभाषित करने के लिए यह आवश्यक है कि आवश्यकता और साधन के बारे में विस्तृत विवेचन किया जाये। **बेरोजगारी के सन्दर्भ में जब हम दृष्टिपात करते है तो पाते है कि रोजगार के अवसरों और रोजगार के साधनों के संख्यात्मक मान में भी बहुत बढ़ा अन्तर है यही अन्तर बेरोजगारी चिन्तन के लिए हमें विवश करता है।**

बेरोजगारी मूलरुप से गलत आर्थिक नियोजन का परिणाम है। व्यक्ति जहां संसार में एक मुंह के साथ आता है वही श्रम हेतु दो हाथ भी लाता है। जब तक इन हाथों को श्रम के साधन प्राप्त नहीं होते तब तक अर्थव्यवस्था को पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था नहीं माना जा सकता है।

गाँधी जी का इस संन्दर्भ में विचार सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं होनी चाहिए उत्पत्ति के साधनों पर नियंत्रण होना चाहिए समाज में उपस्थित विभिन्न आर्थिक तत्व को नियोजित ढ़ंग से कुटीर और लघु उद्योगो को प्रश्रय देना चाहिए।

9.3.2 बेरोजगारी के प्रकार (TYPES OF UNEMPLOYMENT)

भारत में बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं, जो निम्नवत है

–

1. **प्रच्छन्न बेरोजगारी (DISGUISED UNEMPLOYMENT):** बेरोजगारी का वह स्वरूप है जो प्रत्यक्ष रूप में दिखायी नहीं देता और छुपा रहता है भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी कृषि में पायी जाती हैं। जिसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे हुए हैं। यदि इनमें से कुछ व्यक्तियों को खेती के कार्यो से अलग कर दिया जाता है तो उत्पादन में कोई अन्तर नहीं पड़ता हैं। इसका अर्थ यही है कि इस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा उत्पादन में कोई योगदान नहीं दिया जाता है। ऐसे व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगारी के अर्न्तगत आते हैं।

2. **अल्प रोजगार (SHORT UNEMPLOYMENT):** जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिलता है या पूरा कार्य नहीं मिलता है। तो इसे **अल्प रोजगार** कहते हैं। जैसे एक इंजीनियरिग की डिग्री प्राप्त व्यक्ति लिपिक या श्रमिक के रूप में कार्य करता हैं तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं ऐसे व्यक्ति कार्य करता हुआ दिखायी तो देता परन्तु इसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं होता है।
3. **खुली बेरोजगारी (OPEN UNEMPLOYMENT):** जब व्यक्ति कार्य के योग्य है और वह कार्य करना चाहते है लेकिन उन्हें कार्य नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति को **खुली बेरोजगारी** कहते है। भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी व्याप्त है यहाँ लाखों व्यक्ति ऐसे है जो शिक्षित है तकनीकी योग्यता प्राप्त है लेकिन उनको काम करने का अवसर नहीं मिल रहा हैं।
4. **मौसमी बेरोजगारी (SEASONAL UNEMPLOYMENT):** इस प्रकार की बेरोजगारी वर्ष के कुछ समय में ही होती है भारत में यह कृषि में पायी जाती हैं। जब खेती की जुताई एवं बुआई का मौसम होता है तो कृषि उद्योग में दिन रात कार्य होता है। इसी प्रकार जब कटाई का समय होता है तो फिर कृषि में कार्य होता है। लेकिन बीच के समय में इतना काम नहीं होता है। अत; इस प्रकार के समय में श्रमिकों को काम नहीं मिलता है। इस बेरोजगारी को **मौसमी बेरोजगारी** कहते है।
5. **शिक्षित बेरोजगारी (EDUCATED UNEMPLOYMENT):** खुली बेरोजगारी का ही एक रूप है। इसमें शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार होते हैं। शिक्षित बेरोजगारी में कुछ व्यक्ति अल्प रोजगार की स्थिति में होते है। जिन्हें रोजगार मिला हुआ होता है लेकिन वह उनकी शिक्षा के अनुरूप नहीं होता है। भारत में भी इस प्रकार की बेरोजगारी पायी जाती है।

   बेरोजगारी का स्वरूप देश के शहरी तथा ग्रामीण दोनो क्षेत्रो में विद्यमान है। शहरी बेरोजगारी दो प्रकार की है प्रथम शिक्षित लोगो की बेरोजगारी तथा द्वितीय औद्योगिक मजदूरों और शारीरिक श्रम करने वाले लोगो की बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी मुख्य रुप से तीन प्रकार की है प्रथम मौसमी बेरोजगारी, द्वितीय प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी और तृतीय प्रत्यक्ष बेरोजगारी।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के तीन परिकल्पनाएँ की जाती है–

6. **चिरकालिक बेरोजगारी या सामान्य स्थिति (CHRONIC UNEMPLOYMENT):** यह बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या के रुप में माप है जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार हो। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी के रुप में जाना जाता है।
7. **साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (WEEK BASIS UNEMPLOYMENT):** इसे भी व्यक्तियों की संख्या के आधार पर मापन किया जाता है अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हे सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हो।
8. **दैनिक स्थिति बेरोजगारी (DAILY BASIS UNEMPLOYMENT):** इसे व्यक्ति दिनों या व्यक्ति वर्षो के रुप में मापन करते है। अर्थात वे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान या एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न

हुआ हो। यह बेरोजगारी की व्यापक माप है। जिसमें सामान्य स्थिति बेरोजगारी और अल्परोजगार दोनो शामिल होते है।

9.3.3 बेरोजगारी के कारण (CAUSES OF UNEMPLOYMENT)

देश में बेरोजगारी के लिए बहुत से कारण जिम्मेंवार होते है इन्हें हम आन्तरिक और बाहरी कारणों में बाँट सकते है जोकि आन्तरिक कारणों (श्रमिकों के स्वभाव, शारीरिक, मानसिक व नैतिक कमियों) से सम्बन्धित होते है। प्राय; एक व्यक्ति अपनी इच्छा के बावजूद अपनी शारीरिक मानसिक कमजोरियों दोषपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि के कारण काम पाने में असमर्थ रहता है। इन परिस्थितियों में बेरोजगारी आन्तरिक कारणों का नतीजा होती है। बेरोजगारी के बाहरी कारण भी बहुत से होते हैं। श्रम बाजार में चक्रीय उतार चढ़ाव हो रहा है। मंदी के दिनों में व्यावसायिक क्रियायें एक न्यूनतम स्तर पर होती है और बेरोजगारी बढ़ती है। किन्तु दूसरी ओर तेजी के दौरान व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है और इस समय बेकारी की मात्रा घटने लगती हैं। मंदी और तेजी की ऐसी अवधियॉ विभिन्न कारणों से होती है जिन्हें व्यापार चक्रों के सिद्धान्तों द्वारा स्पष्ट किया जाता हैं। उद्योग में विवेकीकरण की योजनाओं को अपनाया जाना बेरोजगारी को उत्पन्न करता है। इसके अलावा कुछ व्यवसाय व आर्थिक क्रियायें स्वभाव से मौसमी होती है। जैसे बिल्डिंग निर्माण या कृषि। अन्त में आकस्मिक श्रम पद्धति भी जिसके अर्न्तगत श्रमिकों को कुछ कार्यों पर सिर्फ व्यवसायिक व्यवस्था के समय ही स्थाई रूप में लगाया जाता है दूसरे समय ऐसे श्रमिकों के लिए बेकारी पैदा कर दी जाती है।

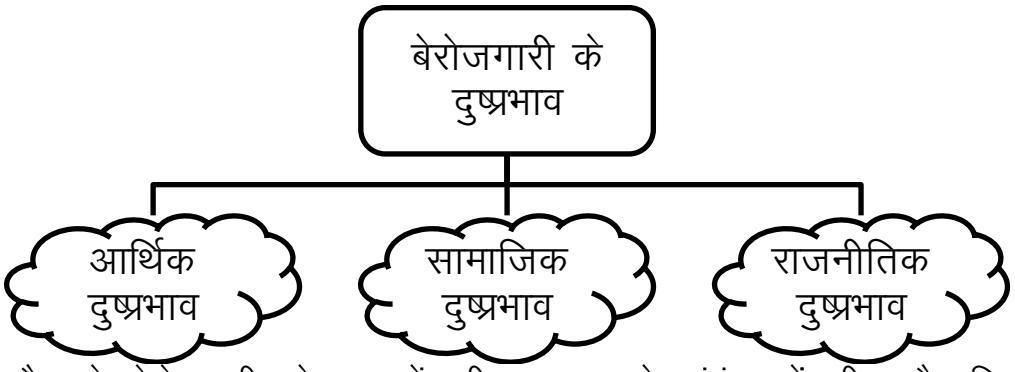

मोटे तौर से बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या के संबंन्ध में तीन सैद्धान्तिक विचारधाराएँ पायी जाती है।

1. पहली विचारधारा के मुताबिक बेकारी निर्बाध सिद्धान्त अर्थात स्वतंत्र प्रतियोगिता तथा स्वतंत्र व्यापार से डिग जाने का दण्ड होती है।
2. दूसरी विचारधारा के मुताबिक बेकारी व्यापार चक्रों के कारणों की जटिलताओं के कारण पैदा होती है.। इसे चक्रीये बेकारी के रूप में देखा जाता है।
3. तीसरी विचारधारा के मुताबिक बेकारी प्रभावी मांग की कमी उपभोग पर किये जाने वाले पूँजीगत व्यय की कमी या निवेश की कमी या दोनों ही के कारण पैदा होती है।

बेरोजगारी के दोष बहुत अधिक है। राष्ट्र के लिए बेरोजगारी समस्या एक गम्भीर समस्या है क्योंकि खाली मस्तिष्क शैतान का घर हैं। काल मार्क्स के मुताबिक कार्य मानवीय अस्तित्व के लिए मूल शर्त है। व्यापक बेरोजगारी एक ऐसी बुराई है जो गम्भीर आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक खतरों से भरी है। तकलीफ निराशा और

असंतोष पैदा करके बेरोजगारी राजनीति और सामाजिक जीवन को कडुवा बनाती है तथा सुरक्षा को ठेस पहुंचाती है। पेट की आग को बुझाने के लिए व्यक्ति कुछ भी कार्य कर सकता है। यदि उनको सही रूप से व्यवसाय नहीं मिलेगा जिससे वह अपने अनुकूल जीवन यापन कर सके तो निश्चित रूप से ही वह गलत कार्यों को करने के लिए प्रेरित होगें जिन्हें करना वह स्वंय भी उचित नहीं समझते किन्तु करना पड़ता है क्योंकि मरता क्या न करता।

बेरोजगारी से व्यक्ति में यह भावना आती है कि वह समाज के लिए गैर जरूरी है। वह परिवार में अपने को बोझ समझने लगता है। इसी कारण से वह अपराधी तक बन सकता है। किसी देश में निष्क्रिय मानव व्यक्ति का मतलब उत्पादन एवं आय का उस स्तर से नीचा होना है जिस पर कि वे सभी श्रमिकों को काम पर नहीं लगा सकते है। मानवीय दृष्टिकोण से इस बेरोजगारी का गम्भीर परिणाम व्यक्ति का स्वंय का नुकसान है। इसमें धीरे–धीरे व्यक्ति की कार्य क्षमता ह्रास होता है। उसकी इस शक्ति को यदि उचित रूप में काम में लिया जाये तो यह राष्ट्र के लिए उन्नति समृद्धि एवं सम्पन्नता का साधन बन सकती है।

जिस देश में बेरोजगारी होती है उस देश में नयी–नयी सामाजिक समस्यायें जैसे चोरी, डकैती, बेईमानी, अनैतिकता, शराबखोरी, जुआ–बाजी आदि पैदा हो जाती है। जिससे सामाजिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है शांति और सुरक्षा की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिस पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है। वर्तमान आतंकवाद की समस्या भी मेंरी समझ में किसी न किसी रूप में बेरोजगारी का ही एक परिणाम है।

बेरोजगारी की समस्या देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करती है। क्योंकि बेकार व्यक्ति हर समय राजनीति उखाड़–पछाड़ में लगे रहते हैं। आज राजनीति से जुड़े हुए बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में समाज में अपराधी रहे हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि दबाव और शक्ति से कानून को अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

देश में व्याप्त दीर्घस्थायी बेरोजगारी और अल्प–रोजगार की समस्या के लिए निम्न घटक उत्तरदायी है

देश में व्याप्त दीर्घस्थायी बेरोजगारी और अल्प–रोजगार की समस्या के लिए निम्न घटक उत्तरदायी है–

1. **जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि दर फलस्वरूप श्रम शक्ति में तीव्र वृद्धि दर (RAPID GROWTH RATE IN POPULATION RESULTING IN RAPID GROWTH IN LABOR FORCE):** जनांकिकीय दृष्टि से हम इतनी तेजी से आगे बढ़ रहे है कि प्रगति और परिवर्तनों के बावजूद हम आर्थिक दृश्टि से ठहरे हुए जान पड़ते है। नियोजन काल में राज्य की जनसंख्या तथा इसके फलस्वरूप श्रम–शक्ति कई गुना बढ गयी है। बढ़ती हुई श्रम–शक्ति के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध न कराये जाने के कारण बेराजगारी की मात्रा बढ़ती गई है।
2. **अनुप्रयुक्त शिक्षा प्रणाली एवं कार्य के प्रति संकुचित दृष्टिकोण (INAPPROPRIATE EDUCATION SYSTEM AND NARROW PERSPECTIVE FOR WORK):** देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के कारण शिक्षित युवक नौकरी पाने की इच्छा रखते हुए भी शारीरिक श्रम वाले रोजगार

से दूर भागते है। सरकार अभी तक शिक्षा प्रणाली को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं ढाल सकी है परिणामस्वरूप करोड़ों शिक्षित युवक और युवतियां रोजगार की तालाश में घूमते–फिर रहे है।

3. **कुटीर उद्योगों का पतन (COLLAPSE OF COTTAGE INDUSTRIES):** श्रम गहन होने के कारण इन उद्योगों का रोजगार की दृष्टि से विशेष महत्व है। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत पूंजी गहन बड़े उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिये जाने के कारण कुटीर और लघु उद्योगों का वांछनीय विकास नहीं हो पाया है। फलतः राज्य में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या निरन्तर गम्भीर होती चली गई है।
4. **कृषि की मानसून पर अधिक निर्भरता एवं सिचाई साधनों का अभाव (MORE DEPENDENCY ON AGRICULTURE MONSOON AND LACK OF IRRIGATION RESOURCES):** निर्धनता के उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में स्थायित्व तथा घरेलू बाजार के विस्तार की दृश्टि से कृषि के महत्व को जानते हुए तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार की आवश्यकता बार–बार स्वीकार करते हुए भी नियोजन काल में कृषि क्षेत्र को कुल निवेश योग्य साधनों में से उचित हिस्सा नहीं दिया गया है। फलतः गांवों से शहरों की ओर श्रम शक्ति के पलायन की प्रवृत्ति जोर पकड़ती गई तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अदृश्य बेरोजगारी की समस्या गहन होती चली गई।
5. **उत्पादन साधनों का असमान वितरण (UNEVEN DISTRIBUTION OF PRODUCTION RESOURCES):** भूमि और पूंजी जैसे उत्पादन साधनों का अत्यधिक असमान वितरण, आर्थिक विषमता और बेरोजगारी की समस्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरादायी है। 20 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या खेतिहर श्रमिकों के रूप में निर्धनता, शोषण, कुपोषण और अल्प रोजगार से ग्रस्त है। उत्तराखण्ड में 70 प्रतिशत किसानों की जोतें अनार्थिक आकार (एक हेक्टेयर से कम) की हैं जिन्हें सम्पूर्ण वर्ष में 5–6 महीने निष्क्रिय रहना पड़ता है। दूसरी ओर बहुत थोड़ी पूंजी वाले इस राज्य में उपलब्ध पूंजी गिने–चुने हाथों में केन्द्रित है। साधन सम्पन्न व्यक्तियों की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण विभिन्न व्यवसायों में श्रम की बचत करने वाल गहन तकनीक का उपयोग किया जा रहा है।
6. **अविकसित सामाजिक दशाएं (UNDERDEVELOPED SOCIAL CONDITIONS):** देश की दोषपूर्ण सामाजिक संस्थाएं (जाति–प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, छुआछूत, बाल–विवाह, प्रदा पर्था आदि) बेरोजगारी की समस्या को उग्र बनाने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायक हुई है। जनसाधारण की निरक्षरता, अन्धविश्वास और भाग्यवादिता ने भी युवकों को निष्क्रिय बनाये रखने में सहयोग दिया है। श्रम शक्ति का असन्तुलित व्यावसायिक वितरण, व्यावसायिक शिक्षण एवं शिक्षण सुविधाओं की अपर्याप्तता, श्रम शक्ति में गतिशीलता का अभाव आदि कारणों ने भी बेरोजगारी और बेरोजगार की समस्या को गम्भीर बना दिया है।
7. **पर्याप्त तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव (LACK OF ADEQUATE TECHNICAL TRAINING FACILITIES):** आज अधिकांश शिक्षा ऐसी दी जाती है कि केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक ही सीमित है और जिसका जीवन

में अधिक उपयोग नहीं है। बी0ए0, एम0ए0 करने के बाद भी लड़को को यह भी पता नही हो पता है कि अब उसे क्या करना है। तकनीकी शिक्षा के पूर्ण अभाव के कारण वह अपना कोई छोटा–मोटा व्यवसाय भी नहीं कर सकता।

8. **पूंजी निर्माण की धीमी गति (SLOW RATE OF CAPITAL FORMATION):** बेरोजगारी में वृद्धि होने के कारण प्रतिव्यक्ति आय बहुत कम होती जा रही है, परिणामस्वरूप बचत एवं विनियोग की दर में भी कमी हो रही है। इससे पूंजी निर्माण की गति बहुत धीमी हो गयी है जिसका प्रभाव उद्योग, व्यापार एवं अन्य सेवाओं पर पड़ रहा है और उनका विस्तार नही हो पा रहा है। इस चक्र के प्रभाव से बेरोजगारी की संख्या में और अधिक वृद्धि हो रही है।
9. **स्वरोजगार के प्रति उपेक्षा (DISREGARD OF SELF-EMPLOYMENT):** देश में शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने के मूल में यह कारण निहित है कि प्रत्येक युवा अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद नौकरी की तालाश में जुट जाता है। उसमें स्वयं का व्यवसाय करने की भावना का अभाव रहता है, परिणामस्वरूप बेरोजगारों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है।
10. **अन्य कारण (OTHER REASON):** बड़ी संख्या में शरणार्थी आगमन, समयबद्ध रोजगार नीति एवं कार्यक्रमों का अभाव, लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन और उनके पुर्नविकास की धीमी गति और आर्थिक सुधारों नीतियों का रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव।

बेरोजगारी के खराब असर बराबर बढ़ते जा रहे हैं। इसीलिए विलयम बेवरिज (William Beveridge) ने लिखा है कि बेरोजगार रखने के स्थान पर लोगों को गड्ढे खुदवाकार वापस भरने के लिए नियुक्त करना ज्यादा अच्छा है।

सार रुप में हमारे देश की बेरोजगारी का कारण उसकी संरचनात्मक अवस्था में निहित है। जो कृषि के अल्प विकास उद्योगो का असंतुलित विकास सेवा क्षेत्र के संकुचित आकार के श्रम की माँग में है जो और रोजगार के अवसर सीमित कर देते है। लोग विद्यमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तत्पर है परन्तु फिर भी कार्य की अनुउपलब्धता के कारण वह बेरोजगार है।

9.4 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण (ANALYSIS OF EMPLOYMENT AND UNEMPLOYMENT IN INDIA)

देश में रोजगार और बेरोजगारी के संबध में अनुमान लगाने के लिए अधिकांशत वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार का प्रयोग किया गया है। दैनिक स्थिति पर आधारित अनुमान बेरोजगारी की समेंकित दर है जिसमें समीक्षा वर्ष के दौरान एक दिन के आधार पर बेरोजगारी का औसत स्तर का उल्लेख किया गया है।

तालिका 9.4.1 रोजगार और बेरोजगारी मिलियन मानव वर्षो में
(वर्ष 1982 से 2004–05)

(दैनिक स्थिति के आधार के अनुसार)

	मिलियन में			वृद्धि प्रतिवर्ष (प्रतिशत)		
	1982	1993–94	2004–05	1983 से 1993–94	1993–94 1999–00	1999–00 2004–05
जनसंख्या	718.10	893.68	1092.83	2.11	1.98	1.69

श्रमबल	263.82	334.20	419.65	2.28	1.47	2.84
कार्यबल	239.49	313.93	384.91	2.61	1.25	2.62
बेरोजगारी दर (प्रतिशत)	9.22	6.06	8.28			
बेरोजगारो की संख्या	24.34	20.27	34.74			

स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

ग्राफ संख्या 9.4.1
रोजगार और बेरोजगारों की संख्या (वर्ष 1982 से 2004–05)
दैनिक स्थिति के आधार पर

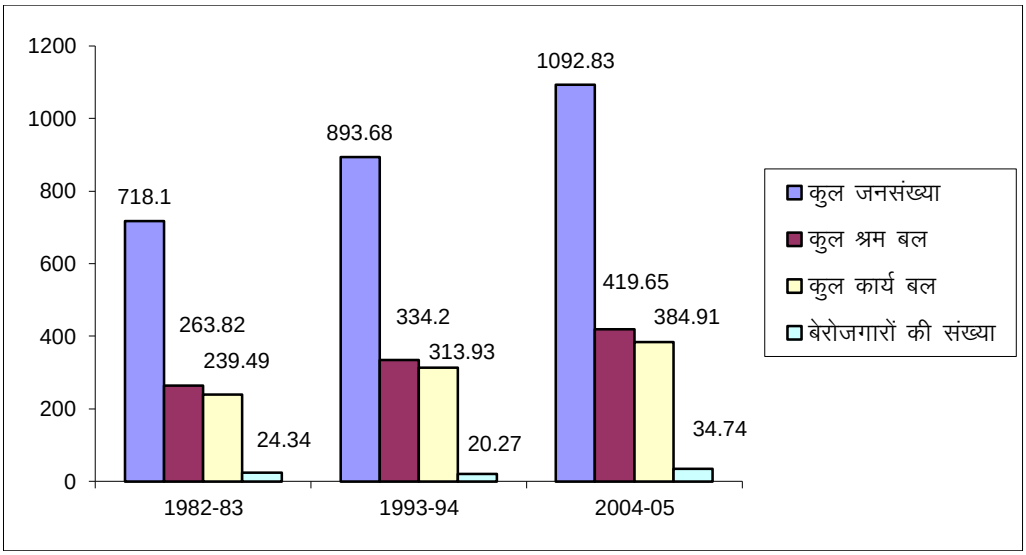

दैनिक स्थिति के आधार पर रोजगार और बेरोजगारी के अनुमान दर्शाते है जैसा कि तालिका 9.4.1 में दिया गया है कि वर्ष 1983–1993 के काल में लगभग 74.50 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वही वर्ष में 1993 से 2004–05 में लगभग 71 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वह भी 1999–2000 से 2004–05 में 46 मिलियन कार्य के अवसरो का सृजन हुआ। रोजगार में वृद्धि इन्हीं वर्षो में 1.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 2.62 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्राप्त हुई। परन्तु बेरोजगारी दर 1983 के 9.22 प्रतिशत से गिरकर 1993–94 में 6.06 प्रतिशत हुई थी। वह 2004–05 में बढकर 8.28 प्रतिशत हो गई परन्तु बेरोजगारों की संख्या इन्हीं वर्षो में 24.34 मिलियन से गिरकर 20.27 मिलियन थी वह भी बढ़कर 34.74 मिलियन हो गई जबकि जनसंख्या वृद्धि दर 1983 से 1993–94 के दौरान 2. 11 प्रतिशत से घटकर 1993–2000 में 1.98 प्रतिशत एवं 1999–2004–05 में 1.69 प्रतिशत ही रह गई।

तालिका 9.4.2 क्षेत्रीय रोजगार में हिस्सेदारी (वर्ष 1983 से 2004–05)
(वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार पर मिलियनो में)

क्षेत्र	1983		1993–94		2004–05	
कृषि	65.42	207.1	61.03	239.5	52.06	258.8
खनन एवं उत्खनन	0.66	1.8	0.78	2.7	0.63	2.5

विनिर्माण	11.27	32.3	11.10	39.8	12.90	55.9
बिजली, जल आदि	0.34	0.8	0.41	1.4	0.35	1.2
निर्माण	2.56	6.8	3.63	12.1	5.57	26.0
व्यापार, होटल और रेस्तरां	6.98	19.1	8.26	28.4	12.62	49.6
परिवहन, भण्डार और संचार	2.88	7.5	3.22	10.7	4.61	18.6
वित्त, बीमा, स्थावर संपदा और कारोबारी सेवाएँ	0.78	1.98	1.08	3.9	2.00	5.2
सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ	9.10	14.72	10.50	35.9	9.24	40.2
कुल	100.00	302.3	100.00	374.3	100.00	458.0

स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

एक अन्य विश्लेषण तालिका 9.2 के आधार पर करते है कि वर्ष 1993 से पहले रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र की जो सर्वोच्च स्थित थी वह लगातार बनी हुई है, इनके हिस्सेदारी में बहुत ही नाममात्र का परिवर्तन हुआ है कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी जो 1983 में 65.42 प्रतिशत थी वह 1993–94 में 61.03 प्रतिशत और आर्थिक सुधार काल में 2004–05 में 52.06 प्रतिशत पहुँच गई परन्तु इन्हीं वर्षो में संख्या 239.8 मिलियन से बढ़कर 258.8 मिलियन हो गई अर्थात हिस्सेदारी में 8.97 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 21.3 मिलियन की वृद्धि हुई। जबकि खनन एवं उत्खनन सेवाओं में आर्थिक सुधारों के काल (1993–2005) में हिस्सेदारी में 0.15 प्रतिशत और संख्या में 0.2 मिलियन की कमी हुई। इसी प्रकार बिजली जल आदि के क्षेत्र में भी 0.06 प्रतिशत के साथ 0.2 मिलियन की कमी हुई। बल्कि सामुदायिक सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ की हिस्सेदारी 1.26 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 4. 3 मिलियन की वृद्धि हुई।

9.5 राज्यों में रोजगार का परिदृश्य

आर्थिक सुधार प्रक्रिया के इस काल में राज्यों के संन्दर्भ में विश्लेषण के लिए तथ्यों को तालिका 9.5.1 एवं 9.5.2 में दिया गया है इन विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है– सम्पन्न राज्य जिनमें पंजाब महाराष्ट्र हरियाणा गुजरात एवं तमिलनाडु शामिल किया गया 1993–94 में रोजगार में हिस्सा 28.6 प्रतिशत था। इन राज्यों में वार्षिक रोजगार में आर्थिक सुधारो के प्राम्भिक वर्षो (1993–94 से 1999–2000) में अत्यंत मंद वृद्धि दर्ज की गई बल्कि तमिलनाडु जैसे राज्य में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 8.1 प्रतिशत था। रोजगार में वर्षिक वृद्वि दर शून्य थी। और महाराष्ट्र में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 10. 9 प्रतिशत था, रोजगार में वार्षिक वृद्धि दर मात्र 1 प्रतिशत थी। बाद के वर्षो में इनमें सुधार हुआ परन्तु तमिलनाडु में अभी भी यह मात्र 1.7 प्रतिशत वार्षिक थी।

तालिका 9.5.1 राज्यों में वार्षिक रोजगार वृद्धि (वर्ष 1993–94 से 2004–05)

प्रतिशत में

क्रम	राज्य	रोजगार में हिस्सा	रोजगार वृद्धिदर

		1993–94	1993–94 से 1999–2000	1999–00 से 2004–05	1993–94 से 2004–05
1	पंजाब	2.3	2.6	2.8	2.7
2	महाराष्ट्र	10.9	1.0	3.4	2.1
3	हरियाणा	1.9	1.2	5.6	3.1
4	गुजरात	5.5	2.3	2.6	2.4
5	तमिलनाडु	8.1	0.0	1.7	0.8
	औसत उच्च पांच	28.6	1.4	3.2	2.2
6	केरल	3.3	1.1	1.3	1.2
7	कर्नाटक	6.3	0.8	3.1	1.8
8	आन्ध्रप्रदेश	10.3	0.2	1.9	1.0
9	पं0 बंगाल	7.6	0.8	3.1	1.8
	औसत मध्यम दर	27.6	0.8	2.4	1.5
10	मध्य प्रदेश	9.1	1.1	2.7	1.8
11	राजस्थान	6.3	0.8	3.0	1.8
12	उ0 प्र0	15.5	1.1	3.8	2.3
13	उड़ीसा	4.1	0.8	2.5	1.6
14	बिहार	9.0	2.0	2.2	2.1
	औसत के नीचे के पांच	43.8	1.1	2.8	1.9
	कुल	100.00	1.0	2.8	1.8

स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

- दूसरी तरफ तालिका 9.4 कें विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि आर्थिक सुधारो के इस समय (1993–94 से 2004–05) में सम्पन्न राज्यों में विभिन्न क्षेत्रो की रोजगार की हिस्सेदारी में आमूल चूल परिवर्तन हुआ। तमिलनाडु राज्य में 1993–94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी 52.6 प्रतिशत से घटकर 2004–05 में 41.2 प्रतिशत पहुँच गई अर्थात 11.4 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई। वही पंजाब राज्य में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 56. 4 प्रतिशत से घटकर 47.4 प्रतिशत रह गई।

तालिका 9.5.2 राज्यों में क्षेत्रवार रोजगार की हिस्सेदारी
(वर्ष 1993–94 से 2004–05)

राज्य	1993–94			2004–05		
	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ
बिहार	76.7	4.9	15.6	68.9	7.2	18.0
उड़ीसा	73.7	7.5	15.0	62.3	11.4	19.1
उ0 प्र0	68.4	8.7	20.1	60.6	12.3	20.9
राजस्थान	69.2	6.2	15.3	61.3	9.1	18.2
म0 प्र0	77.2	5.5	13.4	69.1	7.5	18.2
औसत	73.1	6.6	15.9	64.4	9.5	18.9
प0 बंगाल	48.8	19.9	27.1	45.7	17.5	31.6
अ0 प्र0	67.1	9.2	19.6	58.4	11.0	24.8
कर्नाटक	65.1	10.7	19.7	60.8	10.6	23.8

केरल	48.3	14.3	29.6	35.5	14.4	37.7
औसत	57.3	13.5	24.0	50.1	13.4	29.5
तमिलनाडु	52.6	18.0	24.4	41.2	21.1	30.9
गुजरात	58.9	15.2	21.4	54.8	17.1	23.1
हरियाणा	56.9	9.1	27.7	50.0	13.5	27.7
महाराष्ट्र	59.4	11.3	25.1	53.1	12.5	28.7
पंजाब	56.4	10.3	28.1	47.4	13.5	29.8
औसत	56.8	12.8	25.4	49.3	15.5	28.0
कुल	64.5	10.5	20.7	57.0	12.4	24.1

स्रोत :राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

- मध्यम दर्जे में जिन राज्यों को रखा गया है उनमें केरल कर्नाटक आन्ध्र प्रदेश और पं0 बंगाल को शामिल किया गया है। इनका कुल रोजगार में हिस्सा 1993–94 में 27.6 प्रतिशत था जो आगे सुधारो के काल में सम्पन्न राज्यों से अधिक हो गई। केरल को छोड़कर अन्य तीनो में किसी राज्य की सुधार प्रक्रिया के प्रारम्भिक वर्ष (1993–94 से 1999–2000) में रोजगार में वृद्धि दर पूर्णांक में नहीं थी। आन्ध्र प्रदेश में तो यह 0.2 प्रतिशत वार्षिक थी, बाद में कर्नाटक एवं पं0 बंगाल में सुधार के परिणाम स्वरुप चारों राज्यों के सन्दर्भ में (1993–94 से 2004–05) 1.5 प्रतिशत वार्षिक रही। इसका विशेष कारण यह दिखा कि औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी जो 1993–94 में चारों राज्यों के सन्दर्भ में 13.5 प्रतिशत थी, से घटकर 13.4 प्रतिशत पर ही रह गई। जबकि इन्हीं राज्यों के सन्दर्भ में इसी अवधि में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 57.3 से घटकर 50.1 प्रतिशत रह गई। जैसा कि अनुमापन यही रहता है कि यदि कृषि क्षेत्र में रोजगार की हिस्सेदारी घटती है तो सेवा क्षेत्र के साथ ही औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी निश्चित रुप से बढ़ेगी।
- पिछ़डे राज्य जिनमें बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राज्यस्थान और मध्य प्रदेश को लिया गया है इनकी रोजगार में हिस्सेदारी 1993–94 में 43.8 प्रतिशत थी। आर्थिक सुधारों के इस दौर में रोजगार में विशेष वृद्धि नहीं प्रदर्शित किया 1993–94 से 1999–2000 के काल में यह सम्मिलित रुप में 1.0 प्रतिशत वार्षिक थी बाद के वर्षो में मामूली वृद्धि के परिणाम स्वरुप समग्र रुप से 1993–94 से 2004–05 की अवधि में 1.8 प्रतिशत वार्षिक हो गई। इसका कारण इन राज्यों में 1993–94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार की हिस्सेदारी 73.1 प्रतिशत थी जो 8.7 प्रतिशत घटकर 2004–05 में 64.4 प्रतिशत पर पहुॅच गई। विशेष रुप में उड़ीसा की हिस्सेदारी उन्हीं वर्षो में कृषि क्षेत्र में 73.7 प्रतिशत से कम होकर 62.3 प्रतिशत पर पहुँच गई और उत्तर प्रदेश की 68.4 प्रतिशत से घटकर 60.6 प्रतिशत हो गई।

तालिका 9.5.3 संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर (वर्ष 1983 से 2004)

	1983–1994	1994–2004
सार्वजनिक क्षेत्र	1.53	–0.70
निजी क्षेत्र	0.44	0.58
कुल संगठित क्षेत्र	1.20	–0.31

स्रोत : लोक उद्यम सर्वेक्षण वर्ष 2008–09

दूसरी तरफ संगठित क्षेत्र की कुल रोजगार में हिस्सेदारी समग्र रुप से 1994 में 7 प्रतिशत थी, वह घटकर 2005 में 5.5 प्रतिशत रह गई। सभी राज्यों की संगठित क्षेत्र में हिस्सेदारी घटी।

संगठित क्षेत्र के संन्दर्भ में बडी आश्चर्यजनक जानकारी तालिका 9.5.3 से मिलती है कि 1983 से 94 के समय में सार्वजनिक क्षेत्र की रोजगार वृद्धि दर जो 1.53 प्रतिशत वार्षिक थी वह आर्थिक सुधारो के काल में (1994–2004) ऋृणात्मक रुप में 0.70 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई अर्थात आर्थिक सुधारों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कटौती हो गई। इसी प्रकार निजी क्षेत्र में 1983 से 94 के काल में 0.44 प्रतिशत वार्षिक रोजगार वृद्धि दर बढ़कर 1994–2004 के समय में 0.58 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई। जबकि सम्मिलित रुप में संगठित क्षेत्र की रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1.20 से घटकर सुधार काल में ऋृणात्मक रुप में –0.31 प्रतिशत वार्षिक दर्ज हुई।

9.6 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव (SUGGESTION TO REMOVE UNEMPLOYMENT)

तेजी से बढ़ रही बेरोजगारी के प्रति अर्थशास्त्री, राजनेता, चिन्तक और विद्वान सभी चिन्तित है। बेरोजगारी की इस गम्भीर समस्या ने अनेक ऐसी समस्याओं को जन्म दिया है जिनका समाधान खोज पाना अत्यधिक दुश्कर हो गया है। यदि समय रहते सुरसा की भांति मुँह बाये खड़ी बेरोजगारी के समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास नही किये जा सके तो देश एवं समाज का विघटन अवश्यम्भावी है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ सुझाव निम्नानुसार हैः–

1. **तेजी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण (CONTROL THE RAPID GROWTH RATE OF POPULATION):** बेरोजगारी की गम्भीर समस्या के हल के लिए सर्वप्रथम राज्य में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की गति को नियन्त्रित किया जाना अति आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किये बिना बेरोजगारी की समस्या का समाधान सम्भव नही है।
2. **छोटे उद्योग धन्धो का विकास (DEVELOPMENT OF SMALL SCALE INDUSTRIES):** बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे–छोटे उद्योग धन्धों का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि सरकार द्वारा बेरोजगार युवकों को अत्यधिक सुविधाजनक शर्तों पर ऋण उपलब्ध करायें जायें और बेरोजगारों द्वारा स्थापित उद्योगों के उत्पादन की बिक्री की समुचित व्यवस्था की जाये।
3. **कृषि से सम्बद्ध उद्योगों का विकास (DEVELOPMENT OF AGRICULTURE RELATED INDUSTRIES):** देश की अर्थव्यवस्था में कृषि को प्रधानता प्राप्त है किन्तु अभी भी कृषि व्यवसाय मात्र ऋतुपरक या मौसमी रोजगार उपलब्ध कराता है। वर्ष के मात्र छः–सात माह के लिए कृषक और कृषि श्रमिक के पास रोजगार की व्यवस्था रहती है। शेष समय में कृषक और श्रमिक बेरोजगार रहते है, अतः इस खाली समय के उपयोग के लिए कृषि से सम्बद्ध सहायक उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए; जैसे– दूध का व्यवसाय, मुर्गीपालन, पशुपालन आदि।
4. **ग्रामों में रोजगार उन्मुख योजनाओं का क्रियान्वयन (IMPLEMENTATION OF EMPLOYMENT ORIENTED SCHEMES IN VILLAGES):** देश

में सर्वाधिक बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की सम्भावनायें भी बहुत अधिक है। सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऐसी योजनाएं तैयार करनी चाहिए जो ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायाक सिद्ध हो सकें। इन योजनाओं का क्रियान्वयन भी अत्यधिक प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए।

5. **रोजगार उन्मुख शिक्षा प्रणाली (EMPLOYMENT ORIENTED EDUCATION SYSTEM):** देश की प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरी तरह सैद्धान्तिक है। यह शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता नहीं करती। अतः सरकार को रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि युवक स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पूर्ण होने के बाद स्वयं का कोई व्यवसाय या रोजगार स्थापित करने में समर्थ व सक्षम हो सके।
6. **उद्योगों की पूर्ण क्षमता का उपयोग (UTILIZE THE FULL POTENTIAL OF THE INDUSTRIES):** देश में यद्यपि उद्योग तुलनात्मक रूप से कम लगे हुए है तथा उनका पूर्ण दोहन भी नहीं हो पा रहा है और आवश्यकता इस बात की है कि सिर्फ उद्योगों की संख्या को ही न बढ़ाया जाये बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता का भी पूर्ण उपयोग होना चाहिए।
7. **विनियोग ढ़ांचे में परिवर्तन (CHANGE IN INVESTMENT STRUCTURE):** आधारिक संरचना को मजबूत बनाकर विनियोग को प्रेरित किया जा सकता है जिससे रोजगार में बढ़ोत्तरी होगी तथा अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विस्तार भी होगा।
8. **तकनीकी को प्रोत्साहन (PROMOTION OF TECHNOLOGY):** नई तकनीकी का इस प्रकार से प्रयोग होना चाहिए जिससे रोजगार पर कोई विशेष फर्क न पड़ते हुए उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी हो।
9. **जनशक्ति नियोजन (MANPOWER PLANNING):** देश में बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि जनशक्ति का वैज्ञानिक ढंग से नियोजन होना चाहिए। जिससे जनशक्ति का गुणात्मक पक्ष मजबूत होगा और इसके लिए भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा संगठनात्मक पहलुओं स्वस्थ आधारों पर विकसित किया जाये। जनशक्ति का व्यवसाय वितरण, व्यवसायिक ढ़ाचा, रोजगार की सम्भावनाओं की स्थिति तथा जन–वृद्धि में होने वाले परिवर्तन आदि के बारे में विस्तृत एंव पूर्ण सूचनायें एकत्रित की जाये।
10. **अन्य सुझाव (OTHER SUGGESTIONS):** भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय श्रम ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु अनेक सुझाव दिये है; जैसे– देश में रोजगार के लिए एक राष्ट्रीय नीति सुनिश्चित की जाये, अखिल भारतीय स्तर पर मानव शक्ति सेवा का गठन किया जाये, शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये जाये और उसे रोजगारोन्मुख बनाया जाये, औद्योगिक सेवाओं को सुदृढ़ता प्रदान की जाये तथा देश के प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में कम से कम एक रोजगार कार्यालय की स्थापना की जाये।

उत्पादक गतिविधियों की पुर्नसंरचना द्वारा उत्पादन में वृद्धि लाकर सरकार द्वारा रोजगार सृजन की प्रक्रिया तो जारी है ही, किन्तु साथ ही सरकार प्रत्यक्ष रूप से युवाओं एवं अन्य बेरोजगारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए विशेष कार्यक्रम भी चला रही है।

9.7 बेरोजगारी निवारण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति

बेरोजगारी एक ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक अभिशाप है, जिसके रहते कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है। जैसा कि संविधान में नागरिको के लिए उचित रोजगार की व्यवस्था के मूलभूत दायित्व को इस प्रकार व्यक्त किया हैं–*''राज्य अपनी नीति को इस प्रकार निर्देशित करेगा कि जिससे समस्त पुरूषों एवं स्त्रियों के लिए जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन, समान कार्य के समान वेतन तथा आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर प्रत्येक के लिए कार्य करने और शिक्षा प्राप्त करने तथा बेकारी, वृद्धावस्था बीमारी एवं अयोग्यता की दिशा में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार की सुरक्षा के लिए प्रभावपूर्ण व्यवस्था हो सके।''* इस दायित्व को पूर्ण करने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओ में जो कार्य किए उनका विवरण निम्नवत हैः–

पहली पंचवर्षीय योजना में रोजगार वृद्धि से सम्बन्धित 11 सूत्री कार्यक्रम को ध्यान में रखा गया। श्रम प्रधान, कुटीर उद्योग, सड़क, परिवहन व सिंचाई परियोजनाओं को प्राथमिकता दी गई।

द्वितीय योजना के विकास प्रारूप में श्रम शक्ति के अधिकतम उपयोग का सैद्धान्तिक पक्ष मुख्य रूप से ध्यान में रखा गया। भारी व आधारभूत उद्योगों के साथ लघु व ग्रामीण उद्योगों के विस्तार को महत्व दिया गया।

तीसरी योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्वि हेतु ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण विनिर्माण कार्यों, जिला स्तर पर बेकारी दूर करने की योजना व बेरोगारी से पीड़ित विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष कार्यक्रम चलाये जाने को प्राथमिकता दी गई। 1 करोड़ 40 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि श्रम –शक्ति में जुड़ने वाले नए लोगो की संख्या 1 करोड़ 70 लाख आंकी गई थी।

अनेक प्रयासों के बावजूद भी रोजगार प्रदान करने में असफलता ही रही। पुराने बेरोजगारो को क्या नये को भी रोजगार प्रदान नही किया जा सका। योजना के अन्त मे 120 लाख लोगो के लगभग बेरोजगार होने का अनुमान था।

चतुर्थ योजना में श्रम–गहन कार्यक्रमों पर काफी बल दिया गया जैसे सड़क, लघु सिचाई, भू–संरक्षण, क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम, सहकारिता, सिचाई, बाढ़ नियत्रंण, ग्रामीण विद्युतीकरण, लघु उद्योग, आवास, डेयरी फार्मिंग आदि। तथा यह अनुभव किया गया कि ऐसे कार्यक्रमों के लिए भौतिक पूंजी के अतिरिक्त मानवीय पूंजी एवं कौशल निर्माण में भारी विनियोग करना आवष्यक होगा।

पाँचवी योजना का प्रमुख लक्ष्य गरीबी उन्मूलन था। गरीबी का प्रमुख कारण भूमि सम्पति की असमानता एवं रोजगार में कमी बतलाया गया। अतः श्रम प्रधान परियोजनाओं एवं स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न करने वाली परियोजनाओ को विशेष महत्व दिया गया। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर में वृद्धि हेतु विशेष जोर दिया गया। साथ ही गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार अवसरों में वृद्धि हेतु विकास केन्द्रो के विस्तार की योजना सामने रखी गई।

छठी योजना में अल्प रोजगार की समस्या व दीर्घकालीन बेरोजगारी दूर करने के उपायों को प्राथमिकता दी गई। इस उद्देश्य हेतु रोजगार उन्मुख तीव्र आर्थिक वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव किया गया। साथ ही अतिरिक्त रोजगार वृद्धि के लिए राष्ट्रीय युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना (टाइसेम), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई0 आर0 डी0 पी0), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन0 आर0 ई0 पी0) तथा ग्रामीण भूमिहीन गारण्टी कार्यक्रम प्रमुख थे।

सातवीं योजना में उत्पादन रोजगार प्रदान करने के लिए विनियोग व उत्पादन की उपयुक्त संरचना को विकसित करने तथा समुचित तकनीक व संगठानात्मक आधार को निर्मित करने की प्राथमिकता दी गई। अतिरिक्त रोजगार के लिए (1) ग्रामीण क्षेत्रों में सिचाई सुविधाओं का विस्तार तथा पशुपालन, डेयरी एवं सामाजिक वानिकी को बढ़ावा दिया गया है। (2)लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास, भवन निमार्ण, पर्यटन विकास एवं यातायात क्षेत्र के विकास के लिए विशेष व्यूह नीति बनाई गयी। (3) योजना में शिक्षित बेरोजगारी दूर करने के लिए अतिक्ति रोजगार उपलब्ध करने के प्रयास किये गये। (4) योजना के अन्तिम वर्ष 1989 में ग्रामीण रोजगार हेतु जवाहर योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना ''भोजन, काम तथा उत्पादकता '' को तीन केन्द्र–बिन्दु माना गया है।

आठवीं योजना में रोजगार पर प्रमुख बल दिया गया है। इस योजना के दौरान उचित विकास कार्यक्रमों से प्रत्येक नागरिक को काम करने के अधिकार की गारण्टी के प्रति वचनबद्धता को कार्यरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया । आठवीं योजना में कुल 5.8 करोड़ व्यक्तियों तथा 1992–2002 के दशक में कुल 9.4 करोड़ व्यक्तियों को काम देने की आवश्यकता स्वीकार की गई। इस योजना की विशेष बात यह रही कि शहरी बेरोजगारी के सन्दर्भ में विशेष ध्यान था। इस योजना में 4 कारोड़ अतिरिक्त रोजगार सृजित किये गयें।

नवीं योजना में रोजगार वृद्धि हेतु त्वरित कार्यक्रमों में तीव्रता लाने का लक्ष्य रखा गया। योजना काल में 5 करोड़ लोगो को अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य था।

दसवीं योजना का लक्ष्य रोजगार सृजन और समानता पर जोर देते हुए योजना अवधि के दौरान प्रगति की रफ्तार में तेजी लाना था। इसमें योजना अवधि के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। जिसमें 5 करोड़ अतिरिक्त रोजगार और स्वरोजगार अवसरों का लक्ष्य भी शामिल था। दसवीं योजना में श्रम शक्ति के साथ लाभदायक उच्च गुणवत्ता वाला रोजगार मुहैया कराने पर जोर दिया गया। इस योजना की रणनीति में तेज विकास के उन क्षेत्रों पर जोर दिया गया, जो सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यटन, वित्तीय सेवाए आदि की तरह उच्च गुणवत्तापूर्ण रोजगार अवसरों का सृजन करते है।

ग्यारहवीं योजना में रोजगार की गुणवत्ता में सुधार को सुनिश्चित करते हुए रोजगार के अवसरो में तेजी से विकास किया जायेगा। इसमें कुल रोजगारो में नियमित कर्मचारियों के हिस्से को बढ़ाने की आवश्यकता के साथ अनियमित रोजगार तदनुरूप कटौती किया जाना शामिल है। योजना में रोजगार सृजन नीति में अधोस्तरीय रोजगार में कटौती का पूर्वानुमान लगाते हुए कृषि क्षेत्र में लगे अतिरिक्त श्रम को उच्च मजदूरी वाले क्षेत्रों में और कृषि भिन्न क्षेत्र मे अधिक लाभकारी रोजगार मे लगाया जाएगा। विनिर्माण में रोजगार के 4 प्रतिशत पर बढ़ाने की आशा है। जबकि निर्माण और परिर्वतन तथा संचार में रोजगार के क्रमशः 8.2 प्रतिशत और 7.6 प्रतिशत बढ़ने की आशा है। योजना के दौरान कुल श्रम बल में 45 मिलियन की वृद्धि होने का पूर्वानुमान लगाया गया है जबकि 58 मिलियन रोजगार के अवसरों का सृजन किया जाएगा। फलस्वरूप बेरोजगारी की दर में 5 प्रतिशत से नीचे तक की गिरावट आएगी।

9.8 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम (GOVERNMENT PROGRAMS TO ALLEVIATE UNEMPLOYMENT)

बेरोजगारी को दूर करने के लिए सरकार द्वारा चलाये जा रहे प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार है।

1. **काम के बदले अनाज कार्यक्रम**– 14 नवम्बर 2004 को इस कार्यक्रम को देश के 150 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में शुरू किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य पूरक रोजगार सृजन करना था। यह योजना लोगों को खाद्य सुरक्षा देने से भी सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति को 100 दिन का रोजगार दिया जा सकेगा। यह कार्यक्रम 100 प्रतिशत केन्द्रिय प्रायोजित योजना के रूप में कार्यन्वित किया जा रहा है।
2. **ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम** (R.E.G.P.) – यह कार्यक्रम 1995 में ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों से शुरू किया गया। यह कार्यक्रम खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 25 लाख रुपये की लागत वाली परियोजनाओं के लिए उद्यमी खादी ग्रामोद्योग और बैंक ऋणों से प्राप्त मार्जिन धन सहायता का लाभ उठाकर ग्राम स्थापित कर सकते है।
3. **इन्दिरा आवास योजना** (I.A.Y.) – यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका वित्तपोषण केन्द्र एवं राज्यों के बीच 75.25 (केन्द्र शासित प्रदेश100) के अनुपात में किया जाता है। 1999–2000 से प्रारम्भ की गयी इन्दिरा भवन आवास योजना गांवो में गरीबो के लिए मुफ्त में मकानो के निर्माण की प्रमुख योजना है।
4. **जवाहर ग्राम समृद्धि योजना** (J.G.S.Y.) – इस योजना को अप्रैल 1999 से प्रारम्भ किया गया जो चली आ रही जवाहर रोजगार योजना (J.R.Y.) को ही पुनर्गठित तथा कारगार स्वरूप प्रदान करके किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक मांग वाले ग्रामीण आधारभूत संरचना जिसमें ग्रामीण स्तर पर टिकाउ परिसम्पत्तियाँ सम्मिलित हैं, को विकसित करना है।
5. **रोजगार आश्वासनकार्यक्रम** (E.A.S.) – इस याजना का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1993 को सूखा प्रवण, रेगिस्तान बहुल तथा पर्वतीय क्षेत्रों के चुने गये 1772 पिछड़े ब्लाकों में किया गया था। इसी योजना को एकल मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में 1 अप्रैल 1999 को पुनः तैयार किया गया है।
6. **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना** (S.G.R.Y.) –इस योजना को पहले से चल रही जवाहर ग्रामीण समृद्धि योजना (J.G.S.Y.) तथा रोजगार बीमा योजना (E.A.S.) को मिलाकर 25 सितम्बर 2001 को चलाया गया। यह अपने लक्ष्य स्वयं निर्धारित करने वाली योजना है। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त खाद्यान सुरक्षा प्रदान करना है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाउ सामुदायिक सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थापना सृजित करना है।
7. **शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम**– शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना (P.M.R.Y.) को 1993–94 में शहरी क्षेत्रों में चलाया गया।
8. **स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना** (S.J.S.R.Y.) –यह योजना दिसम्बर 1997 में लागू हुई जिसमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों–नेहरू रोजगार (N.R.Y.), शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाये योजना (U.B.S.P.) तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (P.M.I.U.P.E.P.) को एक में मिला दिया गया । इसका उद्देश्य स्वरोजगार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मजदूरी रोजगार

के सृजन के द्वारा गरीबी रेखा के नीचे नवीं दर्जा तक शिक्षित शहरी बेरोजगारों या अर्धरोजगारों को रोजगार प्रदान करना है।

9. **स्वशक्ति प्रोजेक्टर–** यह प्रोजेक्टर अक्टूबर 1998 में ग्रामीण महिला विकास तथा सशक्तिकरण प्रोजेक्टर के रूप में केन्द्र द्वारा बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, झारखण्ड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश में चलाया गया। यह प्रोजेक्टर वर्ल्ड बैंक तथा इन्टरनेशनल फण्ड फार एग्रीकल्चरल डेवेलपमेण्ट द्वारा संयुक्त रूप से प्राप्त सहायता से चल रही है।
10. **इन्दिरा महिला योजना** (I.M.Y.) का उद्देश्य महिलाओं की अधिकारिता प्रदान करना है।इस योजना को 1995–96 के दौरान 200 विकास खण्डों में चलाया गया था। योजना आयोग के एक अध्ययन दल की संस्तुति पर आई0 एम0 वाई0 को पुर्नगठित करके इसकी कमियो को दूर करके संशोधित रूप में अनुमोदित कर दिया गया है। महिला समृद्धि योजना को आई0 एम0 वाई0 के साथ जोड़ दिया गया है।
11. **बालिका समृद्धि योजना** (B.S.Y.) को 1997 में बालिकाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिर्वतन लाने के विशेष उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था।
12. **एकीकृत बाल विकास तथा सेवा स्कीम** (I.C.D.S.) 1975 में शुरू इस स्कीम का उद्देश्य 6 वर्ष तक के उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एकीकृत पैकेज प्रदान करना है, आँगनवाड़ी, भवनो, सीडीपीओ कार्यलयों एवं गोदामों के निर्माण के लिए ऋण प्रदान करना है।
13. **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना** (P.M.G.Y.) जिसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण लोगों की आवश्यक आवश्यकताओं (critical needs) को निर्धारित समयावधि में पूरा करना है।
14. **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना**– 25 दिसम्बर, 2000 को लागू की गयी। 60 हजार करोड़ रुपये की इस योजना का उद्देश्य 500 से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को 2007 तक हर मौसमी सड़क से जोड़ना है। यह एक 100 प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित योजना है। इसका वित्तपोषण डीजल पर उपकर से होता है।
15. **अन्नपूर्णा योजना–** 1999–2000 की बजट में घोषित अन्नपूर्णा योजना का आरम्भ गाजियाबाद के सिखोड़ा ग्राम से हुआ। ज्ञातव्य है कि इस योजना को उद्देश्य देश के अत्यन्त निर्धन लागों के रोटी की व्यवस्था करनी है।
16. **शिक्षा सहयोग योजना–** यह योजना 1 अप्रैल 2001 से लागू, 2001–02 के बजट में प्रस्तावित योजना है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के बच्चों के माता–पिता को 100 रुपये प्रतिमाह शैक्षिक भत्ता प्रदान किया जायेगा जिससे वे 9 से 12 वीं कक्षा तक की शिक्षा के व्यय को पूरा कर सके।
17. **अन्तोदय अन्न योजना**– यह योजना दिसम्बर 2000 में चालू की गयी। इसके तहत लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत पहचान किये गये बी.पी. एल. परिवारों में से 1 करोड़ निर्धनतम परिवारों को चुना जाता है। शुरू में इसके अन्तर्गत प्रत्येक अर्ह परिवारों को 25 किलोग्राम अन्न 2 रुपया प्रति किलो गेहूं तथा 3 रुपया प्रति किलों ग्राम चावल दिया जाता था। अप्रैल 2002 से 25 किलोग्राम को बड़ाकर 35 किलो ग्राम कर दिया गया।

18. **दीन दयाल स्वालम्बन योजना–** केन्द्रीय युवा मामलें व खेल मंत्रालय द्वारा ग्रामीण युवकों को स्वयं सहायता समूहों के रूप में संगठित कर उनमें स्वरोजगार के जरिये आय अर्जित करने के लिए क्रियान्वित।
19. **प्रधानमन्त्री आदर्श ग्राम योजना**– 2009–10 बजट में प्रस्तावित नयी योजना है जो उन 44000 गांवों के समन्वित विकास से सम्बन्धित है जिनकी जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 50प्रतिशत से अधिक है।
20. **प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (P.M.E.G.P.)** –15 अगस्त 2008 से प्रारम्भ प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (P.M.E.G.P.) अपने ढंग का एक नया प्रयास है जिसका प्रमुख उद्देश्य सब्सिडि पर कराये गये ऋण के माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में माइक्रो इन्टरप्राइज़ेज़ की स्थापना के द्वारा रोजगार के अवसर सृजित करना है। पहले से चली आ रही दो रोजगार योजनाओं प्रधानमंत्री रोजगार योजना (P.M.R.Y.) तथा ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (R.E.G.P.) को इसमें मिला दिया गया है।
21. **राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा फण्ड**– असंगठित क्षेत्रीय कामगारों सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के अनुपालन में इस फण्ड को 1000 करोड़ रुपये के व्याय के साथ 2010 –11 बजट से चालू किया गया हैं। यह फण्ड धुनियों, रिक्सा चालकों, बीड़ी कारगरों आदि से सम्बन्धित स्कीमों को सहायता देगा।
22. **स्वावलम्बन**–2010–11 से शुरू यह स्कीम नयी पेंशन स्कीम में असंगठित लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहन करने से सम्बन्धित है। ऐसे लोग जो न्यूनतम 1000 रु. तथा अधिकतम 12000 रु. से इस स्कीम को अपना खाता खोलकर ज्वाइन करेंगे उसमें 1000 रु. सरकार अंशदान के रूप में देगी। यह तीन वर्ष तक उपलब्ध होगी।
23. **महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना–** 2010–11 से शुरू परियोजना है जो किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। यह राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (N.R.L.M.) के एक उप भाग के रूप में 100 करोड़ रुपया से शुरू की गयी है।
24. **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण योजना गारन्टी एक्ट 2004 (मनरेगा) तथा राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी कार्यक्रम**–नेशनल रूरल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी एक्ट (N.R.E.G.A.) नरेगा सितम्बर 2005 को पारित हुआ तथा 2 फरवरी, 2006 को इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र प्रदेश के बन्दापाली से की गयी। **2 अक्टूबर 2009 इसका नाम बदलकर महात्मागांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी ऐक्ट कर दिया गया।**

2 फरवरी को सरकार ने रोजगार दिवस के रूप में घोषित कर दिया। शुरू में यह योजना 200 जिलों में लागू की गयी पर 2007–08 बजट में इसे बढ़ाकर 330 जिलों में कर दिया गया।इस समय यह देश के सभी 614 जिलों में लागू है। रोजगार सृजन करने वाली यह पहली योजना है और इस दृष्टि से यह सभी स्कीमों से भिन्न है, जो पार्लियामेंट द्वारा पारित एक्ट के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार प्राप्त करने की गारण्टी के साथ कानून द्वारा अधिकार प्रदान करती है।

(1) प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम से कम एक प्रौढ़ सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन का गारण्टी रोजगार प्रदान की जिम्मेदारी होगी, जिसमें कम से कम 1/3 स्त्रियां होंगी।

(2) इसके तहत दिया गया रोजगार अकुशल शारीरिक श्रम रोजगार होगा जिसके लिए वैधानिक न्यूनतम मजदूरी देय होगी तथा जिसका भुकतान कार्य किये जाने के 7 दिन के भीतर देय होगी।

(3) रोजगार दिये जाने के सम्बन्ध में आवेदन के 15 दिन के भीतर रोजगार प्रदान किया जायेगा तथा रोजगार श्रमिक के निवास से 5 किलोमीटर दूरी के भीतर होगा। इससे बाहर काम दिए जाने पर श्रमिक को 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी। जॉब कार्ड प्राप्त होने के 15 दिन तक काम न पाने पर वह बेरोजगारी भत्ता प्राप्त करेगा। जॉब कार्ड 5 वर्ष तक वैध रहेगा।

(4) यदि इस समय सीमा के भीतर रोजगार नहीं प्रदान किया गया तो आवेदक को बेराजगारी भत्ता देय होगा जो न्यूनतम वैधानिक मजदूरी के 1/3 से कम नहीं होगा।

(5) सम्पूर्ण ग्राम राजगार योजना (S.G.R.Y.) तथा कार्य के लिए राष्ट्रीय अनाज योजना का इसमें विलय।

(6) केंद्रीय रोजगार गारंटी परिषद तथा प्रत्येक राज्य द्वारा राज्य परिषद की स्थापना जो इससे सम्बन्धित कार्य सम्पादित कर सके।

(7) जिला स्तर पर पंचायत अपने सदस्यों की स्थाई समिति बनाएगी जो जिला के भीतर कार्यक्रमों की देखरेख, निगरानी तथा क्रियान्वयन देखेगी।

(8) इस स्कीम के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकार प्रत्येक ब्लाक के लिए कार्यक्रम अधिकारी की नियुक्ति करेगी।

(9) ग्राम पंचायत परियोजनाओं की पहचान, क्रियान्वयन तथा देखरेख के लिए जिम्मेदारी होगी।

(10) केन्द्र सरकार इसकी निधिकरण की व्यवस्था के लिए राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कोष तथा राज्य सरकार राज्य रोजगार गारंटी कोष की स्थापना करेगी।

(11) पूरी स्कीम इस अर्थ में स्वचयनात्मक (Self selecting) होगी कि गरीबों में जो लोग न्यूनतम मजदूरी पर कार्य करने के इच्छुक हैं वे स्वयं इस स्कीम में कार्य के लिए आयेगें।

(12) यह प्रस्तावित है कि परियोजना से सम्बन्धित मजदूरी भाग का भुगतान (जो कुल लागत की लगभग 80 होगी) केन्द्र सरकार करेगी जबकि उसमें लगने वाली सामग्री (materials) की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का कुछ भाग केन्द्र सरकार वहन करेगी तथा शेष राज्य सरकार वहन करेगी। इसमें होने वाले व्यय को केन्द्र तथा राज्य सरकार 90:10 में वहन करती हैं।

(13) ग्राम पंचायत इस स्कीम की क्रियान्वयन इकाई है तथा परिवार लाभ प्राप्तकर्ता इकाई है।

इस योजना के अन्तर्गत जल सम्भरण, वाटरशेड मैनजमेन्ट, बाढ़ तथा सूखा संरक्षण, फोरेस्ट्री, भूमि विकास, गांवों को सड़क के द्वारा जोड़ना, मरूस्थल विकास आदि से सम्बन्धित परियोजनाओं में रोजगार प्रदान किया जायेगा, इस प्रकार रोजगार के द्वारा अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति सृजन होगा।

उल्लेखनीय है कि इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान 'एकाउन्टपेयी चेक' या पोस्ट आफिस में खाते के द्वारा ही होना है जिससे मध्यस्थों या बिचोलियों से मुक्ति मिल सके।

निःसन्देह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना सर्वथा अलग योजना है। अन्य रोजगार सृजन कार्यक्रमों की तरह इसकी सफलता इसके क्रियान्वयन तथा उसके साथ जुड़े हुए भ्रष्टाचार घूसखोर, फर्जीहाजिरी, जबावदेही आदि के स्तर पर निर्भर करेगी। रोजगार सृजन की यह योजना सार्वजनिक वस्तुओं को विकसित करने के लिए मजदूरी की व्यवस्था करती है। चूंकि सार्वजनिक वस्तु किसी की अपनी नहीं होती है, इसीलिए इसके सृजन में होने वाले हर सम्भव दुरूपयोग सम्भव हैं। आवश्यकता इसकी है कि पूरी योजना इस प्रकार से योजनाबद्ध हो कि जहां एक ओर यह गरीबों को अधिक से अधिक लाभप्रद रोजगार प्रदान करे वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र आर्थिक विकास सुनिश्चित हो।

9.9 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

1. प्रच्छन्न बेरोजगारी और खुली से आप क्या समझते है ?
2. बेरोजगारी के प्रमुख कारण क्या है ?
3. बेरोजगारी के दुष्प्रभावों को संक्षेप में बताइए।
4. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के विभिन्न स्वरूप को बताइए।
5. बेरोजगारी को दूर करने के प्रमुख कार्यक्रम क्या है ?

9.10 सांराश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या बेरोजगारी है। बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता हैं,जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो। इस बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिए हैं, सरकार ने अनेक बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए हैं, जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या बेरोजगारी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

9.11 शब्दावली (GLOSSARY)

- **बेरोजगरी की दर** = $\frac{\text{बेरोजगारों की संख्या}}{\text{कुल श्रम शक्ति}} \times 100$
- **माइग्रेशन** – एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहने लगना।
- **अदृश्य बेरोजगारी** – खेतों पर से यदि अतिरिक्त लोगों को हटा लिया जाय और उत्पादन में कमी न आये।
- **कुशलतम प्रयोग** – न्यूनतम नुकसान पर अधिकतम इस्तेमाल द्वारा उत्पादन करना।

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

टिप्पणी लिखिए– 1–देखिए 7.4, 2–देखिए 7.8,3–देखिए 7.9, 4–देखिए 7.4,5–देखिए 7. 11।

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy, Academic Foundation.
- दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था – सर्वेक्षणतथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

9.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री (USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

9.15 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. किसी देश के अविकसित रहने के लिए बेरोजगारी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।
2. बेरोजगारी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।

इकाई 10 समानान्तर अर्थव्यवस्था

(PARALLEL ECONOMY)

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 भारत में असमानता
10.3.1 भारत में बढ़ती आर्थिक असमानताएं
10.3.2 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण
10.3.3 भारत में आर्थिक असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ
10.4 काला धन
10.4.1 काले की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र
10.4.2 काले धन का अनुमान
10.4.3 काले धन पर सरकार की पहल
10.4.4 काले धन को रोकने के उपाय
10.4.5 काले धन की वृद्धि के प्रभाव
10.5 वित्तीय कार्रवाई कार्यदल
10.6 अभ्यास प्रश्न
10.7 सांराश
10.8 शब्दावली
10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सची
10.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों से आप अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

वर्तमान इकाई में आप देश में बढ़ती आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था एक प्रमुख आर्थिक समस्या के रूप में विद्यमान है । यहाँ आगे आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था का आशय, उससे जुड़े कारणों, समस्याओं एवं नीतियों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था को सामान्य दृष्टि से समझ सकेंगे। आप यह भी समझ सकेंगे कि आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के क्या कारण एवं इसके क्या दुष्प्रभाव है। देश और राज्यों में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था का विश्लेषण कर सकेगें और इसे दूर करने के उपाय और उपलब्धियों को जान सकेंगे।

10.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ✓ भारत में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था की प्रकृति को जान सकेंगे।
- ✓ भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताओं के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ भारत में आर्थिक विषमताओ असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियों को जान सकेंगे।

10.3 भारत में असमानता (INEQUALITY IN INDIA)

किसी भी देश का आर्थिक विकास केवल राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन में वृद्धि में ही निहित नहीं, वरन उसका एक महत्वपूर्ण पहलू आय एवं उत्पादन का न्यायोचित वितरण भी है। वितरण का स्वरूप कैसा है। व्यक्तिगत एवं प्रादेशिक वितरण की स्थिति कैसी है, वितरण में समानता है अथवा असमानता और विषमता का आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव है? इन कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय के वितरण से है जिसका अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

- ➢ **आर्थिक असमानता का अर्थ (MEANING OF ECONOMIC INEQUALITY)** आर्थिक असमानता अथवा आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण से अभिप्राय अर्थव्यवस्था की उस परिस्थितियों से है जिसमें कि राष्ट्र के कुछ लोगों की आय, राष्ट्र की औसत आय से बहुत अधिक तथा अधिकांश लोगों की आय, राष्ट्र की औसत आय से बहुत कम होती है। आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण की समस्या का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्तिगत आय के वितरण में विषमताओं से होता है। इससे अभिप्राय यह है कि कुछ व्यक्तियों की आय बहुत अधिक है जबकि अधिकतर लोगों की आय बहुत कम है।

- **आय के वितरण का अर्थव्यवस्था में महत्व (IMPORTANCE OF INCOME DISTRIBUTION IN THE ECONOMY)** किसी भी राष्ट्र में आय और धन के वितरण का इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब तक आय का वितरण वैयक्तिक एवं प्रादेशिक स्तर पर समान रहता है तो आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है, समृद्धि बढ़ती है और राजनीतिक शान्ति के साथ–साथ सामाजिक सद्भावना बनी रहती है, व्यक्तिगत कुशलता एवं प्रेरणा बढ़ती है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है, गरीबी और अमीरी की घृणा नहीं पनपती और सर्वत्र शान्ति एवं सौहार्द पनपता है।

  इसके विपरीत समाज में धन एवं आय का असमान वितरण और देश में व्याप्त आर्थिक विषमताओं से अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। देश में आय तथा धन की वैयक्तिक एवं प्रादेशिक वितरण जितना विषम एवं असमान होगा उतनी ही आर्थिक विकास की गति धीमी होगी। समाज में वर्गसंघर्ष और तनाव से राजनीतिक अशान्ति होगी क्योकि देश के किसी भी भाग में व्याप्त गरीबी से विश्व सदृढ़ता को खतरा होगा यह कहना अति समृद्धि के लिए सबसे बड़ा खतरा है। आर्थिक क्षेत्र में विषमताएं आर्थिक शोषण को बढ़ावा देती हैं। अमीरों से गरीबों का द्वेष ही क्रान्ति को बुलावा देता है। गरीबी में नीचा जीवनस्तर उत्पादन क्षमता को अधिक गरीब बनाता है जबकि दूसरी ओर विलासिता में डूबे धनी लोग उन्हीं आर्थिक साधनों को कम उपयोगी क्षेत्रों में ले जाकर सामाजिक कल्याण में कमी करते हैं।

- **भारत में आर्थिक असमानता की प्रकृति एवं विस्तार (NATURE AND EXTENT OF ECONOMIC INEQUALITY IN INDIA)** भारत में आर्थिक असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है। भारत में आय के वितरण की जांच करने के लिए सरकार ने सर्वप्रथम प्रो. महालनोबिस की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। सी.पी. इस समिति के अतिरिक्त राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research), भारतीय रिज़र्व बैंक तथा कई अर्थशास्त्रियों जैसे लाइइल. ओझा और भट्ट रानाडिवे. अहमद, भट्टाचार्य आदि ने आय के वितरण के सम्बन्ध में जांच की है। भारत में कई प्रकार की आर्थिक असमानताएं पाई जाती है। इनमें से निम्नलिखित प्रकार की असमानतायें अधिक महत्वपूर्ण है।

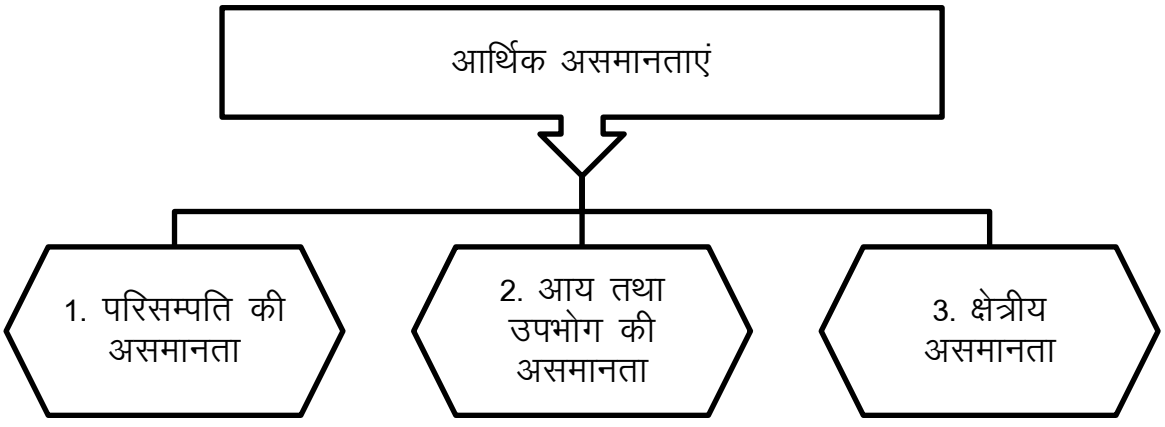

10.3.1 भारत में बढ़ती आर्थिक असमानताएं (INCREASING ECONOMIC DISPARITIES IN INDIA)

चाहे अर्थव्यवस्था का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, प्रत्येक में कुछ न कुछ आर्थिक विषमताएं अवश्य होती हैं। जहाँ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताएं नगण्य और आर्थिक विकास के अनुकूल, सामाजिक दृष्टि से न्यायोचित और राजनीतिक दृष्टि से उपयुक्त हैं वहीं पूजीवादी, विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक विषमातएं बहुत व्यापक और कष्टदायी हैं। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक विषमताएं अनेक प्रकार से देश को झकझोर रही हैं और उनकी बढती प्रवृत्ति ने कई प्रकार की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को जन्म दिया है। भारत में आर्थिक विषमता के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं

1. वैयक्तिक आर्थिक विषमता असमानताएं (PERSONAL ECONOMIC INEQUALITY INEQUALITIES) यद्यपि भारत में व्यक्तिगत आय वितरण के आंकड़ें संकलित नहीं किए जाते, किन्तु समय– समय पर किए गए अध्ययनों के मोटे अनुमानों से पता लगता है कि राष्ट्रीय आय के व्यक्तिगत वितरण में भारी असमानताएं हैं।

आयंगर एवं मुकर्जी (Iyengar and Mookerji) के अनुसार 1956–57 में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत हजम कर जाते थे जबकि नीचे के 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 8.5 प्रतिशत भाग ही मिलता था।

प्रो लिण्डाल ने अनुमान लगाया कि जहाँ ऊपर के 5 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 23 प्रतिशत, ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 34 प्रतिशत तथा ऊपर के 50 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 75 प्रतिशत हड़प कर जाते, वहीं नीचे के 20 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का केवल 9.5 प्रतिशत तथा नीचे के 50 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का केवल 25 प्रतिशत ही मिल पाता था।

राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research), ने 1960 के अनुमान में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत वितरण की असमानता अलग है। इसके अनुमानों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग प्राप्त करते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में उनका भाग 42.4 प्रतिशत है जबकि नीचे के 10 प्रतिशत लोग दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय का प्रतिशत भाग ही प्राप्त करते हैं।

व्यक्तिगत आर्थिक वितरण की असमानायें केवल आय में ही नहीं दिखतीं, वरन व्यक्तिगत उपभोग व्यय के अनुमानों में भी झलकती है। राष्ट्रीय पतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (Ntional Sample Survey Organisation (N.S.S.O.)) 1959–60 के अनुमानों के अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत लोगों का उपभोग व्यय कुल का 42 प्रतिशत था। वहीं नीचे के 20 प्रतिशत लोगों का भाग केवल 8 प्रतिशत अर्थात् बहुत कम था। इसी प्रकार का अनुमान **राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research)** के 1964–65 के अध्ययन में दृष्टिगोचर होता है। इसके अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों का कुल व्यय में 33 प्रतिशत भाग था वहीं नीचे के 20 प्रतिशत परिवारों का उपभोग व्यय में केवल 13 प्रतिशत ही भाग था। **दाण्डेकर एवं रथ** (Dandekar and Rath) के अनुसार 1960–61 की कीमतों के स्तर पर 1967–68 में शहरी क्षेत्र के केवल 5

प्रतिशत लोगों का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग व्यय 1,330 रू था, जबकि नीचे के 5 प्रतिशत लोगों का यह व्यय मात्र 78 रू ही था। इस प्रकार दोनों में 17 गुना अन्तर वैयक्तिगत असमानता को उजागर करता हैं।

प्रो. महालनोबिस (Prof P. C. Mahalanobis) ने भी राष्ट्रीय आय वितरण सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में इस असमानता पर विचार व्यक्त करते हुए बताया कि देश के 1 प्रतिशत धनिक राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत भाग को हड़प जाते हैं जबकि नीचे के 50 प्रतिशत गरीबों को राष्ट्रीय आय का केवल 22 प्रतिशत भाग ही मिलता है। ये विभिन्न अनुमान संक्षेप में निम्न तालिका में दर्शाये गये हैं।

विश्व विकास प्रतिवेदन (World Development Report) 1988 के अनुसार 1975–76 में भारत के सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग मिल रहा था जबकि निम्नतम 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का केवल 7 प्रतिशत भाग प्राप्त हो रहा था। जहां ऊपर के 20 प्रतिशत धनी राष्ट्रीय आय का 49.4 प्रतिशत भाग हड़प रहे थे वहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत भाग मिल रहा था।

तालिका 10.3.1.1 भारत में वैयक्तिक आय वितरण की असमानता के अनुसार (प्रतिशत के रूप)

लोग	भारतीय रिजर्व बैंक		लिण्डाल के अनुमान	आयंगर एवं मुकर्जी के अनुसार	NCAER के अनुमान	
	गाँव	शहर			गाँव	शहर
ऊपर के 5 प्रतिशत लोग	17	26	23	17.5	–	31
ऊपर के 10 प्रतिशत लोग	25	37	34	25	33.6	42.4
ऊपर के 50 प्रतिशत लोग	69	75	75	–	79.3	83

वैयक्तिक आय वितरण की असमानताएं और कई गुना बढ़ जायें अगर हम काले धन के वितरण का भी समावेश कर लें क्योंकि काले धन का सर्वाधिक भाग धनिकों की जेब में जाता है और भारत में काले धन का बाहुल्य किसी से भी छिपा नहीं है।

2. परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता (ECONOMIC INEQUALITY OF ASSETS) भारत में परिसम्पत्ति की असमानता के संबंध में प्राप्त आंकड़े अपर्याप्त तथा अविश्वसनीय है। परन्तु उपलब्ध आकंडे स्पष्ट करते हैं कि भारत में परिसम्पत्ति की असमानता काफी अधिक एवम् व्यापक है। परिसम्पत्ति की असमानता का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है

1. ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता (ECONOMIC INEQUALITY OF ASSETS IN RURAL AREAS)

भारत की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण क्षेत्र में विद्यमान सम्पत्ति की असमानता निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट हो जाती हैः (रिजर्व बैंक द्वारा किये गये अखिल भारतीय ऋण एवम् कुल परिसम्पत्ति का असमान वितरण) सारा निवेश सर्वेक्षण के अनसार, ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता का विस्तार काफी अधिक है।

तालिका 10.3.1.2 ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पत्ति का विवरण व्यक्ति

व्यक्ति	कुल सम्पत्ति में प्रतिशत भाग	
	1961	1971
नीचे के 10 प्रतिशत	0.1	0.1
ऊपर के 10 प्रतिशत	51.4	51.0
नीचे के 30 प्रतिशत	2.5	2.0
ऊपर के 30 प्रतिशत	79	81.9

तलिका 10.3.1.2 में प्रस्तत ग्रामीण क्षेत्रों की सम्पत्ति के वितरण सम्बन्धी आकड़ों से निम्न तथ्य स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाते हैंः

(क) गांवों में निवास करने वाली जनसंख्या का नीचे के 10 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण परिसम्पत्ति में केवल 0.1 प्रतिशत भाग है। जबकि ऊपर के 10 प्रतिशत वर्ग का लगभग 51 प्रतिशत भाग है। अन्य शब्दों में ऊपर के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों में से एक व्यक्ति के पास इतनी सम्पति है, जितनी की नीचे के वर्ग के 510 व्यक्तियों के पास है। सन् 1961 से 1971 तक के 10 वर्षों में इस असमानता में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

(ख) तालिका यह भी इंगित करती है कि नीचे के (30 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण सम्पत्ति में भाग सन् 1961 में 2.5 प्रतिशत था सन् 1971 में यह कम होकर 2 प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत ऊपर के 30 प्रतिशत का भाग जो 1961 में 79 प्रतिशत था वह 1971 में बढ़कर 81.9 प्रतिशत हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता कम होने के स्थान पर बढ़ती जा रही है।

2. भूमि के वितरण में असमानता (INEQUALITY IN LAND DISTRIBUTION) ग्रामीण क्षेत्र में भूमि उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है। कृषि के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के वितरण में काफी असमानता पाई जाती है। इस समय भारत में लगभग 9 करोड़ 77 लाख जोतें या खेत हैं। इनके वितरण की असमानता निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

तलिका 10.3.1.3 कार्यशील भूजोतों का आकार के अनुसार वितरण

भू जोतों का आकार (हेक्टेयर)	1970–71		1985–86	
	कुल जोतो का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	कुल जोतो का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.0 हेक्टेयर से कम	51	9	58	13.1
1 से 2 हेक्टेयर	18.9	11.9	18.2	15.5
2 से 4 हेक्टेयर	15	18.5	13.6	22.2
4 से 10 हेक्टेयर	11.2	29.7	8.2	28.7
10 से अधिक हेक्टेयर	3.9	30.9	2.00	20.5
कुल	100	100	100	100

Source : Agricultural Situation in Brief 1988

उपरोक्त तालिका

1.सन् 1985–86 में सीमान्त जोतों (1 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा लघु जोतों (2 हैक्टेयर तक की) जोतों की संख्या कुल कार्यशील जोतों की (76 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का 28 प्रतिशत भाग था। इसके विपरीत मध्यम (10 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा बड़ी जोतों (10 हैक्टेयर से अधिक तक की जोतो केवल की संख्या कुल जोतों की (10 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 49 प्रतिशत भाग था। इस प्रकार 10 प्रतिशत जोतों के स्वामी धनी किसानों का 49 प्रतिशत कृषि भूमि पर स्वामित्व है। इसके विपरीत 76 प्रतिशत निर्धन किसानों का केवल 28 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है । सन् 1970–71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है। सन् 1970–71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व था। तालिका –10.3.1.2 में प्रस्तुत आंकड़ों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि भारत में भूमि के स्वामित्व की असमानता काफी अधिक है।

3. शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता (ECONOMIC INEQUALITY OF ASSETS IN URBAN AREAS)

भारत के केवल ग्रामीण क्षेत्रों में ही नहीं अपितु शहरी क्षेत्रों में भी सम्पत्ति की असमानता बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसे निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट किया जा सकता है

1. भवन सम्पत्ति का स्वामित्व (BUILDING PROPERTY OWNERSHIP) शहरों में सम्पत्ति के वितरण की असमानता और भी अधिक है।नेशनल सैम्पल सर्वे के आठवें दौर के अनुसार शहरी क्षेत्र के ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी जमीन का 93 प्रतिशत भाग था। इनमें से सबसे अधिक धनी 5 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी भूमि का 52 प्रतिशत भाग था। नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के अनुसार शहरी क्षेत्र के सबसे उच्च वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 57 प्रतिशत भवन सम्पत्ति केन्द्रित है। इसके विपरीत नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 1 प्रतिशत से भी कम भवन सम्पत्ति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण में काफी असमानताएं पाई जाती हैं।

2. शेयर सम्पत्ति का स्वामित्व (OWNERSHIP OF SHARE PROPERTY) भारत में शेयर सम्पत्ति से सम्बन्धित असमानताएं और भी अधिक हैं । महालनोबिस समिति के अनुसार आय कर देने वालों में सबसे धनी वर्ग 10 प्रतिशत लोगों को शेयरों के लाभांश से प्राप्त कुल आय का 52 प्रतिशत लाभ मिला था। नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों का भाग केवल 2.5 प्रतिशत था। इकोनोमिक टाइम्स रिसर्च ब्यूरों के अनुसार भारत में 20 व्यावसायिक घरानों की परिसम्पत्ति 10,000 करोड़ रूपये से भी अधिक है। इन 20 बड़े घरानों का अर्जित लाभ 900 करोड़ रूपये से भी अधिक है। इससे सिद्ध होता है कि देश में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण होने के फलस्वरूप सम्पत्ति की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है। संक्षेप में, भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती हैं। पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में कमी होने के बजाय बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

4. भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं (REGIONAL DISPARITIES IN INCOME DISTRIBUTION IN INDIA)

भारतीय अर्थव्यवस्था एक विशाल अर्थव्यवस्था है और उसके विभिन्न क्षेत्रों में भी आय वितरण में काफी असमानताएं हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित एवं प्राकृतिक दृष्टि से सम्पन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है जबकि पिछड़े राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। नेशनल कौन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के एक सर्वेक्षण के अनुसार 1960–61 में बिहार में प्रति व्यक्ति आय 220.6 रू सबसे कम थी जबकि दिल्ली में प्रति आय सर्वाधिक .871.61 रुपये थी। महाराष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय 668.5 रु तथा पश्चिमी बंगाल में 464.6 दूसरे और तीसरे स्थान पर थे। योजनाबद्ध विकास में यद्यपि लक्ष्य प्रादेशिक विषमताओं को यथासम्भव कम करने का था, किन्तु वास्तविकता यह रही कि धनी राज्य और अधिक धनी एवं समृद्ध हुए और पिछड़े राज्यों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के बावजूद धनी राज्यों के मुकाबले कम रही। इस विषमता की झलक निम्न तालिका से मिलती है।

तलिका 10.3.4 भारत में प्रादेशिक आय वितरण (प्रति व्यक्ति आय)

राज्य	1981–82	1985–86	1987–90	1992–95	2005–06	राज्यों में स्थान
पंजाब	3122	4084	6303	12538	30701	3
महाराष्ट्र	2519	3208	5368	11369	32170	2
हरियाणा	2581	3322	5371	10563	32712	1
गुजरात	2211	2814	4602	8829	28355	4
राजस्थान	1417	2069	2878	5665	16593	11
उड़ीसा	1308	1754	2684	4263	13601	15
बिहार	995	1417	2026	3482	5772	17

उपर्युक्त तालिका 10.3.4 से स्पष्ट है कि 2003–04 में हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक थी जबकि बिहार में सबसे कम है। दोनों की प्रति व्यक्ति आय में साढ़े चार गुना अन्तर है। राजस्थान की प्रति व्यक्ति आय पंजाब से आधी से भी कम है जबकि बिहार से ढाई गुना है। हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रति व्यक्ति आय बिहार, उड़ीसा, केरल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुकाबले कहीं अधिक है।

10.3.2 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण (REASONS OF UNEVEN DISTRIBUTION OF INCOME AND WEALTH IN INDIA)

भारत में आय तथा सम्पत्ति में पाई जाने वाली असमानता का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा के फलस्वरूप भूमि के स्वामित्व में विद्यमान असमानता है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में जमींदारी प्रथा पाई जाती थी। इसके फलस्वरूप भूस्वामित्व में भारी असमानता पाई जाती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् – जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई परन्तु भूमि के स्वामित्व की असमानता में कोई विशेष कमी नहीं हुई है।इस समय देश के 10 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास कृषि भूमि का 56 प्रतिशत भाग है तथा 70 प्रतिशत जनसंख्या के पास केवल 14 प्रतिशत भाग है। भूमि के स्वामित्व में पाई जाने वाली असमानता ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली आय की असमानता का मुख्य कारण है। ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन कृषि श्रमिकों तथा छोटे किसानों की आय बहुत कम है। वे बड़ी कठिनाई से अपना जीवन

निर्वाह कर पाते हैं। इसके विपरीत बड़े किसानों की आय बहुत अधिक है तथा इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। इन किसानों के पास पूंजी अधिक होती है इसलिए ये ट्रैक्टर, ट्यूबवैल, रासायनिक खाद, उत्तम बीज आदि का प्रयोग करके अधिक उत्पादन करते हैं। इससे इनकी आय में और अधिक वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत छोटे किसान पूंजी के अभाव में अपने खेतों से अधिक उत्पादन नहीं कर पाते। वे पिछड़े तथा निर्धन रह जाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में भूस्वामित्व की असमानता के कारण आय तथा सम्पत्ति की असमानता में वृद्धि होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानताओं के कई कारण है। वैयक्तिक आय में भिन्नता, योग्यता, अवसर कुशलता एवं सम्पत्ति स्वामित्व पर निर्भर है जबकि क्षेत्रीय विषमताएं तो कई कारणों का सामूहिक परिणाम है, अतः उनमें प्रमुख कारण इस प्रकार हैं जन्मजात योग्यताओं में अन्तर यह वैयक्तिक आय में सम्पत्ति की असमानताओं का एक प्रमुख – कारण है। कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान, योग्य, परिश्रमी एवं कुशल होते हैं और ऐसे लोगों की आय कम बुद्धिमानों, अयोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ही होगी।

1. अवसरों की असमानता (INEQUALITY OF OPPORTUNITIES) व्यक्तियों के जन्मजात गुणों में समानता होते हुए भी उन व्यक्तियों की अधिक आय एवं सम्पत्ति प्राप्त होती है जिन्हें अच्छा अवसर मिल जाता है। जिन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल पाता वे पिछड़ जाते हैं। जहां धनी वर्ग के सामान्य बुद्धि वाले बच्चे उचित अवसर मिलने से आर्थिक उन्नति कर जाते हैं जबकि कुशाग्र बुद्धि वाले परिश्रमी एवं योग्य बच्चे अच्छे अवसर के अभाव में पिछड़ जाते हैं।

2. आर्थिक शोषण (ECONOMIC EXPLOITATION) व्यक्तिगत लाभ एवं सम्पत्ति के स्वामित्व की लालसा व्यक्ति को मानव से दानव भी बना सकती है। यही भावना पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण, उत्पादकों एवं व्यापारियों द्वारा उपभोक्ता का शोषण, धनी व्यक्तियों द्वारा गरीबों का शोषण तथा सबलों द्वारा निर्बलों के शोषण की प्रवृत्ति समाज में धन एवं आय में अन्तराल पैदा करती है। भारत में शोषणकर्ताओं की आय शोषितों के मुकाबले काफी अधिक है।

3. सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की भावना (THE FEELING OF OWNERSHIP AND PROPERTY) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की असमानता आर्थिक विषमता का मुख्य घटक है। यह आर्थिक असमानता को बढ़ाने के साथ–साथ ही उसे स्थायी बनाती है, क्योंकि वितरण का आधार व्यक्ति की कुशलता नहीं, वरन् साधनों की मात्रा से है, जितनी ही जिसके पास सम्पत्ति एवं पूँजी अधिक है उसको राष्ट्रीय आय में इतना ही अधिक भाग मिलता है। भारत में जागीरदारों, बड़े–बड़े भूस्वामियों, उद्योगपतियों एवं सम्पत्ति स्वामियों को राष्ट्रीय आय में भूमिहीनों, श्रमिकों और सम्पत्तिहीनों से कहीं अधिक हिस्सा मिलता है जो आर्थिक विषमता को बढ़ाता है।

4. उत्तराधिकार (SUCCESSION) भारत प्रचलित उत्तराधिकार प्रथा से पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकारियों को मिलती रहती है। धनी घर में जन्म लेने वाले बच्चे भाग्यशाली होते हैं और चाँदी का चम्मच मुँह में लेकर जन्मते हैं जबकि निर्धन घर में जन्म लेने वाले बच्चों को गरीबी, ऋणग्रस्तता एवं भुखमरी विरासत में मिलती

प्रो टाजिंग ने ठीक ही कहा है, *"उत्तराधिकार प्रथा ही पूँजी तथा आय अर्जित करने वाली सम्पत्तियों की असमानताओं को स्थायित्व प्रदान करती है और धनी तथा निर्धनों के बीच गहरी खाई की व्याख्या करती है।"*

5. शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति का निजी स्वामित्व (PRIVATE OWNERSHIP OF PROPERTY IN URBAN AREA) शहरी क्षेत्र में उद्योगों, व्यापार, भूमि, मकानों आदि सम्पत्ति पर निजी स्वामित्व पाया जाता है। कुछ लोगों के अधिकार में अधिकतर शहरी सम्पत्ति होती है। इसके विपरीत शहरों की अधिक जनसंख्या निर्धन होती है। शहरों में पूंजीपति, उद्योगों, व्यापार, यातायात तथा अन्य व्यवसायों में पूंजी का निवेश करके अधिक आय प्राप्त कर पाते हैं, परन्तु शहरों का मध्यम तथा निर्धन वर्ग अपना जीवन निर्वाह भी बड़ी कठिनाई से कर पाता है। यद्यपि यह वर्ग अधिक शिक्षित तथा योग्य होता है परन्तु पूंजी की कमी के कारण इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार सम्भव नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप शहरी क्षेत्र में भी आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमनता बनी रहती है।

6. **उत्तराधिकार के नियम (RULES OF SUCCESSION)**

7. व्यावसायिक प्रशिक्षण में असमानता (INEQUALITY IN VOCATIONAL TRAINING) आय की असमानता का ज्ञान उपभोग व्यय के वितरण से किया जा सकता है। विभिन्न स्रोतों द्वारा एकत्रित किये गये उपभोग सम्बन्धी आंकड़े निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये।

तालिका 10.2.1 भारत में उपभोग की असमानता के अनुमान

व्यक्ति	NCAER	N.S.S.
ऊपर के 20 प्रतिशत	42.39	37.87
नीचे के 20 प्रतिशत	8.66	8.47

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से आभास होता है कि नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च NCAER के अनुसार सबसे ऊंचे वर्ग के 20 प्रतिशत व्यक्तियों का कुल उपभोग में 42.39 प्रतिशत भाग था सबसे निचले 20 प्रतिशत लोगों का केवल 8.66 प्रतिशत भाग था। इसी प्रकार राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे N.S.S. के अनुसार उपरोक्त वर्गों का कुल उपभोग में क्रमशः भाग 37.87 प्रतिशत तथा 8.47 प्रतिशत था। इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में आय की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है।

उपरोक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप आर्थिक असमानता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती है। योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

10.3.3 भारत में आर्थिक असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ (MEASURES AND ACHIEVEMENTS TO ADDRESS ECONOMIC DISPARITIES IN INDIA)

भारत के संविधान में ही समानता का अधिकार है। समानता का कतई यह अभिप्राय नहीं है कि सबकी समान आय तथ सम्पत्ति हो, निरपेक्ष समानता न तो सम्भाव है और न वांछित ही। निपुण और अकुशल, योग्य और अयोग्य, श्रेष्ठ एवं सामान्य व्यक्ति की मजदूरी, वेतन एवं आय में कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए, क्योंकि इसके बिना कुशल श्रमशक्ति का विकास सम्भव नहीं। अतः आर्थिक विषमता में यथासम्भव कमी करना ही आर्थिक समानता का आदर्श है। आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए समाजवादी राष्ट्रों में तो उग्र उपायों का सहारा लिया जाता है जिसमें निजी सम्पत्ति का बिना मुआवजा दिये राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है। सभी व्यक्तियों को जाति, लिंग एवं धर्म के भेदभाव किये बिना समान आय प्रदान की जा सकती है, किन्तु पूँजीवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए उदार उपाय किये जाते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विषमताओं को यथासम्भव कम करने के लिए द्वि दिशा आक्रमण–(Two Pronged Attack) के उदार उपायों का सहारा लिया है। जहां एक और वैधानिक एवं प्रजातान्त्रिक तरीकों से धनी व्यक्तियों की आय और सम्पत्ति को कम किया जा रहा है वहां दूसरी ओर निर्धनों की आय, उत्पादन क्षमता, धनोपार्जन विधियों में वृद्धि की जा रही है। धनी एवं निर्धनों के अन्तराल को पाटने के लिए काफी उपाय किये गये हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि देश में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई नीति की मुख्य विशेषताएं या सरकार द्वारा अपनाए गए मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं–

भूमि सुधार (LAND REFORMS) ग्रामीण क्षेत्र में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करने के लिए भूमि सुधार किये गए हैं। भूमि सुधार सम्बन्धी नीति का मुख्य उद्देश्य भूमि स्वामित्व की असमानता में कमी लाना है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने स्वतन्त्रता के शीघ्र पश्चात् ही भूमि उन्मूलन सम्बन्धी कानून बना दिए थे। इसके फलस्वरूप जमींदारी समाप्त कर दी गई तथा जमींदारी की उच्चतम सीमा से अधिक भूमि का वितरण उस पर काश्त करने वाले काश्तकारों में कर दिया गया। कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए कानून बनाए गए हैं। सीमा से ऊपर की जमीन उनके स्वामियों से ली जा रही है। इस जमीन का वितरण उन लोगों में किया जा रहा है जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि थी या जो भूमिहीन थे। परन्तु भारत में भूमि सुधार की प्रगति बहुत धीमी रही है। भूमि सुधार के अधिकतर उद्देश्य अधिक सफल नहीं हो सके हैं।

रोजगार में वृद्धि (INCREMENT IN EMPLOYMENT) भारत में आर्थिक विषमता एवं गरीबी मिटाने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत पिछले 56 वर्षों में लगभग 26.5 करोड़ से अधिक अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया है। सातवीं योजना में 4 करोड़ अतिरिक्त मानक मानव वर्ष को रोजगार दिये जाने का लक्ष्य था। जहाँ पहली योजना में 75 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया वहां चौथी योजना में लगभग 170 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया। गरीबी हटाओ कार्यक्रम के अन्तर्गत भी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार तथा ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारन्टी योजना द्वारा रोजगार दिया जा रहा है। जवाहर रोजगार योजना के तहत भी गरीबी रेखा के नीचे 4–6 करोड़ परिवारों को रोजगार देने का लक्ष्य था। आठवीं योजना में रोजगार में 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था। दसवीं योजना में 5 करोड आर्थिक रोजगार का लक्ष्य था।

सार्वजनिक क्षेत्र का विकास (DEVELOPMENT OF PUBLIC SECTOR) सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विकास करने की नीति को अपनाया है। इस क्षेत्र के विकास के कई उद्देश्य आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करना है। यह क्षेत्र निजी क्षेत्र के स्वामित्व के विस्तार को रोकने में सहायक है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का भी यह एक मुख्य उद्देश्य है। इसके फलस्वरूप निजी लोगों के हाथ में धन तथा आय में केन्द्रीयकरण को रोकने तथा इस प्रकार समानता को बढ़ाने में मदद मिलेगी। किन्तु सरकार द्वारा जिस आदर्श की प्राप्ति हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की नीति का अनुकरण किया गया उसमें असफलता ही प्राप्त हुई। अतः विवशतावश अब सार्वजनिक क्षेत्र की बजाय निजी क्षेत्र को विकसित किये जाने को अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

जनकल्याण कार्यक्रमों में वृद्धि (INCREMENT IN PUBLIC WELFARE) भारत में आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए जनकल्याण कार्यक्रमों में निरन्तर वृद्धि की है

ताकि गरीबों का आर्थिक स्तर ऊपर उठे। इस दिशा में समाज कल्याण विभाग द्वारा सहायता, अनुदान, बेकारी भत्ता, चिकित्सा सुविधायें, न्यायिक सहायता, निःशुल्क शिक्षा, 20–सूत्रीय कार्यक्रम द्वारा आय एवं रोजगार में वृद्धि महत्वपूर्ण है, किन्तु कुल व्यय जनसंख्या को देखते हुए नगण्य है, अतः स्थिति में विशेषकर सुधार नहीं हुआ है।

लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन (PROMOTION OF SMALL AND COTTAGE INDUSTRIES) पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने की नीति को अपनाया गया है। इन उद्योगों को प्रोत्साहन देने से आय तथा सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने में सहायता प्राप्त होगी, सम्भावना है। इस नीति के फलस्वरूप बेरोजगार मजदूरों को रोजगार दिया जा सकेगा। इस प्रकार निर्धन लोगों की आय में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता कम होगी। कुटीर उद्योगों के विकास के फलस्वरूप निम्न आय वाले लोगों को अपनी आय में वृद्धि करने के अवसर प्राप्त हो सकेंगें।

जनसंख्या नियन्त्रण (POPULATION CONTROL) गरीबों के अधिक बच्चे और कम आय आर्थिक विषमता को बढ़ाते हैं, अतः जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए देश में पिछले 56 वर्षों में 50,100 करोड़ रू व्यय किया गया है और उसमें नसबन्दी, लूप तथा परिवार नियोजन पद्धतियों से लगभग 30 करोड़ बच्चों का जन्म रोका गया है। सातवीं योजना में भी परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया गया। भारत में जन्मदर – घटकर सातवीं योजना के अन्त तक 30 प्रति हजार हो गई और आठवीं योजना में 23 से 25 प्रति हजार करने का लक्ष्य था किन्तु 2005 में जन्म दर–23.8 प्रति हजार रही।

एकाधिकारी तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक व्यवहार पर नियंत्रण (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act)

शहरी सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए सन् 1969 में एकाधिकार तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act 1969) पास किया गया है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना है। सरकार ने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए औद्योगिक लाइसेंस की नीति को भी अपनाया है। औद्योगिक लाइसेंस की नीति के द्वारा औद्योगिक तथा व्यावसायिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में हजारी समिति, दत्त समिति आदि की रिपोर्टों से ज्ञात होता है, ये सभी उपाय अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके हैं।

मुद्रा–स्फीति पर नियंत्रण (INFLATION CONTROL) गरीबों को महंगाई की मार से बचाने तथा मुद्रास्फीति द्वारा साधनों का – हस्तान्तरण गरीबों से अमीरों के हित में रोकने के लिए हीनार्थ प्रबन्ध एवं फिजूलखर्ची पर नियंत्रण किया है। उत्पादक विनियोग को बढ़ावा दिया गया है। आवश्यकता की वस्तुओं के लिए गल्ले की 4.6 लाख दुकानें खोली गई हैं। अधिकतम मूल्यों पर नियन्त्रण रखा गया है । मुनाफाखोरी एवं चोरबाजारी को नियन्त्रित किया गया है। गरीबों को सस्ती गल्ले की दुकानों से आधी दर पर खाद्यान्न बेचने की व्यवस्था की जा रही है।

रोजगार तथा मजदूरी नीतियां (EMPLOYMENT AND WAGE POLICIES) देश की बेरोजगार जनता को रोजगार प्रदान करके भी आय की असमानता को कम किया जा सकता है। पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार के अवसर अधिक से अधिक बढ़ाने पर जोर दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में अनेक विशेष योजनाओं जैसे छोटे किसानों के विकास की एजेन्सी, सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक एजेन्सी (M.F.A.L.A.), सूखा क्षेत्र

कार्यक्रम, काम के बदले अनाज आदि को लागू किया गया था। पांचवी योजना के अन्त में देश में रोजगार के अवसर अधिक बढ़ाने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा छठी योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। सातवीं योजना में जवाहर रोजगार योजना आरम्भ की गई थी। देश में रोजगार कार्यालयों की संख्या में भी काफी वृद्धि की गई है। परन्तु इन योजनाओं का आय तथा सम्पत्ति के वितरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। अभी हाल ही में सरकार द्वारा आर्थिक असमानता कम करने हेतु पूर्व में घोषित कार्यक्रमों के स्थान पर नवीन कार्यक्रमों की घोषणा की है। इन कार्यक्रमों में प्रमुख सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक सुधार (SOCIAL REFORM) प्रदर्शनात्मक प्रभाव (Demonstration Effect) से प्रेरित होकर गरीब लोग जब धनिकों जैसी फिजूलखर्ची करें तो आर्थिक विषमता में वृद्धि होती है। अतः सरकार ने मृत्यु, विवाह तथा दहेज की रोक के लिए, भोज एवं विवाहोत्सवों के भारी व्यय पर रोक लगा रखी है। बाल अधिनियम पारित किये हैं, पर प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो पाया है।

'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों का क्रियान्वन (IMPLEMENTATION OF 'REMOVE POVERTY' PROGRAMS) इस कार्यक्रम के अन्तर्गत समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P.), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (N.R.E.P.), ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारण्टी योजना (R.L.G.E.P.) तथा 20–सूत्रीय कार्यक्रम लागू करके देश में लगभग 4.5 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाया है जबकि सातवीं योजना में लगभग 6 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का लक्ष्य था। जवाहर रोजगार योजना से भी गरीबी मिटाने का प्रयास चालू है।

कीमत तथा वितरण नीतियां (PRICE AND DELIVERY POLICIES) आय की असमानता को कम करने के लिए कीमत तथा वितरण नीतियों को भी अपनाया गया है। उनका उद्देश्य समाज के निर्धन वर्ग को सहायता देना है। आवश्यकता की कई वस्तुओं जैसे चीनी, कपड़ा, कागज आदि के लिए सरकार ने दोहरी नीति अपनाई है। इसके फलस्वरूप निर्धन वर्ग को सम्पन्न वर्ग की तुलना में वस्तुएं सस्ती प्राप्त होती हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा निर्धन वर्ग को आवश्कताओं की वस्तुएं कम कीमत पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस उपाय का आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में आर्थिक विषमता को कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं, पर देश में प्रजातान्त्रिक मित्रित अर्थव्यवस्था में काला धन, भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद–, रिश्वतखोरी, प्रशासनिक अकुशलता, गरीबी निवारण की असफलता तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में आर्थिक विषमता घटने के बजाय बढ़ती जा रही है। मुद्रास्फीति ने आय का वितरण अमीरों के पक्ष – में कर आर्थिक विषमताओं को और बढ़ाया है और आर्थिक विषमता की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। अतः इन सामाजिक बुराईयों एवं आर्थिक विषमता के कारणों को जब तक प्रभावी ढंग से नियन्त्रित नहीं किया जाता, आर्थिक समानता की कल्पना एक राजनीतिक नारा बनकर रह जायेगी।

10.4 काला धन (BLACK MONEY)

10.4.1 काले धन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र (MEANING, SOURCES AND SECTORS OF BLACK MONEY)

काले धन की समस्या में सौदों का आदान प्रदान छुपकर किया जाता है ताकि कानून के दायरे से ये सौदे बाहर रहें और इनमें होने वाली आय से सरकार को जो अंश मिलना चाहिए उससे वंचित हो जाती है, इसी को काले धन की समस्या कहते है। इसके विपरीत श्वेत धन वो धन होता है जिसका लेन देन खुले रूप से होता है ताकि कानूनी तौर पर जो अंश सरकार को प्राप्त होना है वह उसको मिल जाये। काले धन की समस्या के लिए कुछ बातें जिम्मेदार है। काला धन एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न होता है और उसको चोरी छिपे ही खर्च किया जाता है। काले धन के इस क्षेत्र को समानान्तर अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है, क्योंकि यह श्वेत धन के साथ साथ चलती है। इसका कुप्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कितना पड़ता है उसको उसी समय समझा जा सकता है जब हम ये जाने कि देश में काला धन कितनी मात्रा में है। जब काला धन श्वेत धन के साथ साथ चलता है और इसकी मात्रा बढ़ती जाती है तो इससे देश को अत्यधिक हानि होती है और इस प्रकार काले धन को रखने वाले सरकारी निर्णय को भी प्रभावित करने लगते है। अतः ऐसे कदम उठाये जाने चाहिए कि जिससे इस प्रकार के प्रभाव को जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके। हमें सह समझना चाहिए कि इस समस्या से देश में वित्तीय स्रोतों की कमी आ जाती है और विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है।

दूसरे इससे समाज के विभिन्न वर्गो में आय विषमता बढ़ने के कारण समाज के विभिन्न वर्गो में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसके कारण कुछ असामाजिक तत्व देश के धन के एक बड़े भाग को अनुचित रूप से हथिया कर बैठ जाते है।

काला धन की परिभाषा (MEANING OF BLACK MONEY)

वे धन जिस पर कर न चुकाया गया हो या अवैधानिक तरिके से आय सृजित की गई हो, जिसका खुलासा न किया जा सके या आयकर के अंतर्गत घोषित सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति को कालाधन कहते है। भारत कालाधन की मार से त्रस्त है, कालाधन के व्यवस्थित करने के उपाय होने के कारण भ्रष्टचार को बढ़ावा मिलता है और भ्रष्टाचार के कारण कालाधन बढ़ता है। कालेधन का अर्थव्यवस्था में प्रयोग से ही मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के सरकार के राजकोषीय एवं आरबीआई की मौद्रिक नीति निष्प्रभावी हो जाती है, जिससे अर्थव्यवस्था का सही दिशा में विकास कर पाना तथा निर्धनों की स्थिति में सुधार नहीं हो पाता है।

काला धन, काली आय अथवा छिपाई हुई आय का प्रयोग उस आय अथवा धन के लिए किया जाता है जिसको कानून की नजर से बचाकर रखा जाता है। इसको चुरा छिपा कर रखा जाता है तथा इस पर कर नहीं दिया जाता। अतः इसका विकास तेजी से होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार श्वेत अर्थव्यवस्था के साथ साथ समानान्तर अर्थव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

काले धन का उदय द्वितीय युद्ध काल में हुआ जबकि बाजार में वस्तुओं की कमी हो गई थी और व्यापारियों ने वस्तुओं को अधिक दाम पर बेचने के लिए उसका संग्रह करना शुरू कर दिया। दूसरा वस्तु आम आदमी को प्राप्त नहीं होती थी पर वहीं वस्तु अत्यधिक दाम पर चोरी छिपे धनी वर्ग को बेची जाती थी। इस प्रकार से प्राप्त आय को व्यापारियों ने चोरी छिपे रखना शुरू कर दिया ताकि वे कानून की नजर से दूर रहें और उस पर किसी प्रकार के कर के भुगतान से बचा जा सके।

कालेधन की उत्पत्ति के स्रोत– काला धन तीन प्रकार से उत्पन्न होता है।

1.कर वंचन

2.कर न देना

3.श्वेत धन का चोरी छिपे इस्तेमाल।

इन तीनों ही से कर योग्य आय को छिपाया जाता है और सरकार को कर से वंचित रखा जाता है। धन सरकार को न मिलकर गलत तरीके के व्यापारियों के हाथ में जाता है, जो उसका अनुचित प्रयोग करते है तथा सरकार पर गलत असर डाल सकते है। इस प्रकार का लाभ कभी साथ बड़े बड़े सरकारी अधिकारी भी ले भागते है। अर्थात वे सरकारी संगठनों अथवा उद्योगों के धन को चुरा छिपाकर अपने कब्जे में कर लेते है।

1. कर वंचन (TAX EVASION) कर वंचन का अर्थ यह है कि इसके द्वारा कर देने वाला खातों में हेर–फेर करके कर कम देता है या कर देने से बच जाता है। कर वंचन के अनेक तरीके हो सकते है, जैसे बही खाते में हेर–फेर करना अथवा कई प्रकार के बही खाते रखना अथवा कृत्रिम नाम से खाते खोलना जिसे बेनामी खाता कहते है। इसी प्रकार ठेके अथवा व्यापार कृत्रिम नाम से करना, व्यापारिक लेन देन को खाते में न दिखाना, सम्पत्ति का कम मूल्य आंकना तथा विदेशी विनियम के साथ हेर–फेर करना। इस प्रकार व्यापारी तथा काले धन का धंधा करने वाले समाज तथा सरकार को धोखा देते है। जिसके लिए वे एक साथ कई खाते विभिन्न बैंको में खोलते हैं ताकि आयकर अधिकारी को उसकी सही आय का पता न लग सके। हमारी बैंकिंग पद्धति कुछ इस प्रकार है, कि हम खाता खोलने वालों के बारे में पूरी जानकारी नहीं प्राप्त करते। विभिन्न बैंकों में प्रतिस्पर्धा के कारण भी ऐसा होता है कि किसी पार्टी के बारे में संदेह होने पर भी बैंक चुप्पी साध लेते है अथवा पार्टी इतनी प्रभाव शाली होती है कि वह उसके बारे में कुछ पूछताछ तो करता नहीं और यदि करता भी है तो उसे सही बात का पता नहीं चलता। कभी– कभी ठेके विभिन्न नामों से लेकर ठेकेदार आयकर बचा जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ति का मूल्य कम दिखाकर आयकर अधिकारियों को धोखा दिया जाता है। कभी कभी जमीन तथा मकान की बिक्री का एक ही भाग श्वेत धन के रूप में दिखाया जाता है और शेष चोरी छिपे दिया जाता है। उपर्युक्त केवल कुछ उदाहरण ही कर वंचन है।

2. कर न देना (DO NOT PAY TAX) इसका अर्थ ये है कि व्यापारी तथा सरकारी कर्मचारी कानून के अन्तर्गत अपनी आय को इस प्रकार दिखाता है कि उस पर या तो बहुत थोड़ा कर पड़ता है अथवा कर से वो पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यहां पर व्यापारी आयकर कानून की कमियों से फायदा उठाता है अतः उसे प्रायः गैर कानूनी या अनैतिक नहीं समझा जाता। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है, जैसे धार्मिक ट्रस्ट खोलना, पति–पत्नि की आय को एक साथ न दिखाना। उपहार कर, मृत्यु कर इत्यादि से बचना। वैसे तो समाज में गरीबों के लिए, यतिमों के लिए, असहाय औरतों तथा बच्चों के लिए या धर्म कर्म के लिए धन व्यय करना, बहुत अच्छा माना गया है परन्तु अभाग्यवश आजकल इस प्रकार की संस्थायें चलाने के पीछे समाज सेवा का उद्देश्य उतना नहीं है जितना कि सरकार तथा समाज को धोखा देना। समाज के ठेकेदार तथा धर्मात्मा इसका प्रयोग कर से बचने के लिए कर रहे है। कभी कभी कर से बचने के लिए निजि कम्पनियां बनाई जाती है जिससे बीबी बच्चे तथा दूसरे परिवार के लोग, सदस्य या अंश धारक बना दिये जाते हैं। इस प्रकार के बहुत से कार्य करके व्यक्ति कर से बच जाता है।

3. श्वेत धन का चोरी छिपे प्रयोग (STOLEN USE OF WHITE MONEY.) यहां पर हम ये देखेंगे कि किस प्रकार से जब बड़े बड़े ठेके दिये जाते है तो उसमें अत्यधिक

भ्रष्टाचार छिपा रहता है जैसे ठेका सही दाम पर न देना, अत्यधिक कमीशन लेना। अतः श्वेत धन का प्रयोग सरकारी अधिकारियों को देकर ठेकेदार ठेके अथवा खाते के मूल्य बढ़ा देता है इससे सरकार को नुकसान होता है और सरकारी अधिकारी तथा ठेकेदार को लाभ होता है। हम सब जानते है कि ये पद्धति अत्यधिक प्रचलित है पर इसको रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया जा रहा है। इसी में सामान की तस्करी तथा सामान का संग्रह व चोर बाजारी भी शामिल है। निम्नलिखित कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनके द्वारा काले धन का जन्म होता है।

1. मूल्यवान धातुओं तथा विलासिता की वस्तुओं की तस्करी,
2. आम उपभोग की वस्तुओं का संग्रह,
3. सट्टा मुनाफाखोरी तथा काला बाजार पद्धति,
4. रिश्वत तथा कमीशन के द्वारा,
5. शहरी क्षेत्रों में चल तथा अचल सम्पत्ति में विनियोग,
6. बेनामी खाते तथा बेनामी व्यापार,
7. धार्मिक तथा सामाजिक सेवा ट्रस्ट,
8. धनी वर्ग का विलासितापूर्ण रहन सहन।

10.4.2 काले धन का अनुमान (ESTIMATES OF BLACK MONEY)

भारत वर्ष में कितना काला धन है इसका केवल एक ही अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि इसकी सही मात्रा को जानना सरल नहीं। काले धन का लेन देन चोरी छिपे होता है अतः इसे सही तरीके से आंकना संभव नहीं। काले धन को सफेद में परिवर्तित किया जाता है और सफेद को फिर काले में परिवर्तित कर लिया जाता है। कभी कभी तो केवल वस्तु विनियम से ही लेन देन हो जाता है। ऐसा इसलिए सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनका पूरी तरह से मौद्रीकरण नहीं है और न कच्चे माल के उत्पादन से अन्तिम उत्पादन तक की विभिन्न अवस्थाओं को समन्वित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार हमें मुख्य रूप से ये समझना है कि काले धन का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर किस प्रकार पड़ता है? भारत में जहां प्रायः आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जाता है वहां इसके महत्व को आसानी से समझा जा सकता है।

1. अंतर्राष्ट्रीय निगरानी संस्था ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रिटी के ताजा अध्ययन के अनुसार, 1948 से 2008 के बीच भारत से 462 अरब डॉलर की रकम काले धन के रूप में विदेश ले जाई गई। यह रकम 2008 के अंत में भारत के सकल घरेलू उत्पादन का करीब 16.6 प्रतिशत थी और 12 नवम्बर 2010 को भारत के करीब 300 अरब डॉलर के कुल विदेशी मुद्रा भंडार के डेढ़ गुना से ज्यादा है।
2. मैलकौम अधिशिसय्या का अनुमानः इसके अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य पर यदि लिया जाये तो इसका लगभग 40 प्रतिशत काले धन के रूप में है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक सर्वेक्षण के अनुसार काला धन वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय उत्पादन का 50 प्रतिशत है।
4. कोल्डर के अनुसार कर वंचन की मात्रा 1956–57 में लगभग 200–300 करोड़ थी।
5. वांचू कमैटो के अनुसार, (1971 रिपोर्ट) 1961–62 में इसकी मात्रा 700 करोड़ थी, 1965–66 में 1000 करोड़ तथा 1968–69 में 1400 करोड़ थी।
6. डॉ रगनेकी के अनुसार, 1961–62 में इसकी मात्रा 1150 करोड़, 1965–66 में 2350 करोड़, तथा

7. 1968–69 में 2833 करोड़ और 1969–70 में 3080 करोड़ थी।
8. सूरज बी. गुप्ता के अनुमान के अनुसार वर्ष 1987–88 में काली मुद्रा की मात्रा 1,49,297 करोड़ रुपये थी जो जीएनपी का 50.7 प्रतिशत थी वित्त पर संसदीय स्टेन्डिग कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1994–95 में चालू मूल्यों पर काली मुद्रा की मात्रा 11,00,000 करोड़ थी जबकि इस वर्ष जीएनपी 843294 करोड़ थी इस प्रकार काली मुद्रा जीएनपी का 130 प्रतिशत थी अर्थात जीएनपी से भी अधिक हमारे देश में काली मुद्रा प्रचलित थी।

उपर्युक्त अनुमानों से यह विदित है कि देश में काले धन की समस्या अत्यंत विकराल है। द ड्राइवर्स एंड डायनामिक्स ऑफ इल्लिसिट फाइनेंशियल फ्लोज फ्रॉम इंडिया (1948–2008) नामक इस अध्ययन को बड़े पैमाने पर अंजाम दिया गया है और इसमें 61 वर्षों की अवधि से जुड़ें तमाम कारकों और रूझानों पर गौर किया गया। जीएफआई अमेरिका की गैर सरकारी संस्था है, जो काले धन के खिलाफ विरोध कर रही है। भारत पर इस समय करीब 230 अरब डॉलर विदेशी कर्ज है। इतना काला धन भारतीय इकनॉमी में जायज तरीके से रहता तो देश न केवल अपना कर्ज चुका पाता, बल्कि बाकी रकम से गरीबी उन्मूलन और आर्थिक विकास कार्यक्रमों को रफ्तार दे पाता। काले धन के बारे में यह जानकारी भारत में अपनाए गए उदारीकरण के मॉडल की चमक को कुछ फीकी है। अध्ययन के अनुसार, देश से बाहर जाने वाले कुल काले धन का करीब 50 प्रतिशत हिस्सा साल 1991 के बाद ले जाया गया। जब भारत में आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत हुई।

10.4.3 काले धन पर सरकार की पहल (GOVERNMENT INITIATIVE ON BLACK MONEY)

करीब 25 साल बाद सरकार को एक बार फिर देश में काले धन का पता लगाने की सुध आई है। सरकार ने इस बारे में राष्ट्रीय संस्थानों से प्रस्ताव मांगे है। वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने चार संस्थाओं से कहा कि वे देश में काले धन के आंकड़े और उनकी प्रकृति का पता लगाने के बारे में सुझाव दें। राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (N.I.P.F.P.), राष्ट्रीय सांख्यिकी संस्थान (I.S.I.), नेशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (N.C.E.R.) तथा राष्ट्रीय वित्त प्रबंधन संस्थान (N.I.F.M.) को अपने प्रस्ताव सौपने को कहा गया है। केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (C.B.D.T.), केंद्रीय उत्पादन एवं सीमा शुल्क बोर्ड (C.B.E.C.), प्रवर्तन निदेशालय और आर्थिक मामलों के विभाग और निर्यातकों के संगठन फियो के अधिकारी की भी मदद ली जाएगी। गृह मंत्रालय विदेशी मंत्रालय कैबिनेट सचिवालय और सांख्यिकी व कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के अधिकारियों का भी सहयोग लिया जाएगा। संसद की वित्त पर एक स्थाई समिति ने पहले भी इस तरह का अध्ययन कराने का प्रस्ताव किया था। करीब 50 प्रतिशत काला धन वर्ष 1991 के बाद देश से बाहर गया है। जबकि 2000–2008 के बीच इसमें करीब एक तिहाई राशि देश से बाहर भेजी गई है। सर्वेक्षण के जरिए यह पता लगाया जाएगा कि देश में कितना काला धन है और क्या इस धन को देश या देश के बाहर जमा किया गया है। अध्ययन में यह भी पता लगाया जाएगा कि अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र में काले धन का सृजन सबसे ज्यादा हो रहा है और इससे देश की राष्ट्रीय सुरक्षा को क्या खतरा है।

10.4.4 काले धन को रोकने के उपाय (MEASURES TO STOP BLACK MONEY)

काले धन को रोकने के दो उपाय हैं

(1) प्रथम विधि के अनुसार काले धन रखने वाले लोगों को प्रोत्साहन देकर काले धन को बाहर निकालना। इसे नरम पद्धति भी कहा जा सकता है।

(2) दूसरी पद्धति के अनुसार कानून के द्वारा सख्ती करके काले धन को बाहर निकालना इसे दृढ़ पद्धति भी कहा जा सकता है।

1. नरम पद्धति– इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है
2. स्वेच्छा से काले धन को बताने की योजना,
3. धारक बॉडस द्वारा काले धन को बाहर निकालना,
4. काले धन को सही दिश में प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना,
5. समझौते से काले धन को बाहर निकालना।

स्वेच्छा से काले धन की मात्रा को बताने की योजना काफी उत्साह वर्धक सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें यह नहीं पूछा जाता कि व्यक्ति काला धन कहां से लाया है, अभाग्यवश इसमें अन्त में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा ही धारक बॉड योजना में है। इसमें भी कोई सफलता नहीं मिली। इसके असफल होने के मुख्य कारण ये हो सकते है कि पहले तो इसमें ब्याज की दर बहुत कम है। दूसरे लोगों को डर था कि इस प्रकार उन्हें अन्ततः कर के जाल में फंसा लिया जायेगा। इसी प्रकार काले धन को अन्य सामाजिक रूप से लाभदायक स्रोत जैसे सड़क तथा पुल बनाना आदि की योजना भी असफल हो गई क्योंकि इसमें लाभ कम और जोखिम अधिक था, समझौता योजना भी सफल न हो सकी क्योंकि बड़े बड़े कर दाता अन्ततः कर के जाल में नहीं आना चाहते।

दृढ़ उपाय (STRONG MEASURES) इस प्रकार के उपाय मुख्य रूप से काल्डर ने सुझाये थे जैसे, एक न्यूनतम आय के ऊपर वाले कर दाताओं के खातों की अनिवार्य जांच करना। प्रत्येक कर दाता के लिए स्थायी खाता संख्या देना, कर अधिकारियों की शक्ति को बढ़ाना तथा बही खातों के निरीक्षण में अथवा उनके जब्त कर लेने में पूर्ण छूट देना तथा उन व्यक्तियों पर जो दोषी पाये जायें जुर्माना लगाना और उनका आम जनता में प्रचार करके अन्य लोगों को डराना इत्यादि। इसी प्रकार की सिफारिश बांचू कमैटी ने की थी। इन दोनों के ही अनुसार एक निश्चित आय के ऊपर वाले करदाताओं के खातों का अनिवार्य रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिए। अथवा ये निरीक्षण तथा आडिट चार्टड एकाउन्टेन्ट के द्वारा किया जाना चाहिए इस संम्बध में न्यूनतम आय सीमा एक लाख से पांच लाख तक सुझाई गई थी। इस प्रकार के प्रयास किये गये थे कि चार्टड एकाउन्टेन्ट इस कार्य में मदद करेगें उन पर बड़े बड़े करदाताओं का प्रभाव न पड़े और इसी लिए सरकार ने उनको दिये जाने वाले पारिश्रमिक का एक भाग स्वंय वहन करने की घोषणा की। काल्डार का ये विचार था कि भारी जुर्माने और जनता में बदनामी का असर करदाताओं पर अत्यधिक पड़ेगा। और कर की चोरी करने वाले कर देने को तैयार हो जायेंगे। परन्तु इसके लिए कर अधिकारियों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए। उनमें कर की चोरी करने वालों पर छापा मारने की क्षमता तथा हिम्मत होनी चाहिए। साथ ही साथ उनमें एक सीमा तक ईमानदारी भी होनी चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस कार्य को ईमानदारी से किया जाये तो पर्याप्त काला धन बाहर लाया जा सकता है और समस्या का समाधान किया जा सकता है। परन्तु जैसा कि हम जानते है कि वर्तमान परिस्थितियों में जहां कर अधिकारियों की कार्य क्षमता तथा ईमानदारी का स्तर नीचा है वहां पूर्ण सफलता मिलने में कठिनाई होती है। अभाग्यवश राजनीतिज्ञ भी इसके भागी हो जाते है और इस प्रकार वे भी इस योजना के असफल होने के जिम्मेदार हैं। शायद लोक आयुक्त की

नियुक्ति से तथा हर सरकारी अधिकारी की आय व सम्पत्ति का ब्यौरा लेकर इस क्षेत्र में कुछ किया जा सकता है।

कालाधन (बजट 2012–2013) (BLACK MONEY)

पिछले वर्ष काले धन के सृजन और उसके चलन की बुराई तथा भारत के बाहर इसके गैर कानूनी अंतरण की समस्या का सामना करने के लिए एक मंच आयामी कार्यनीति को रेखांकित किया गया था। सरकार ने इस कार्यनीति को अमल में लाने के लिए सक्रिय कदम उठाए है। इसके फलस्वरूपः

1. 82 दोहरे कराधान परिहार करार (डीटीएए) और 17 कर सूचना आदान प्रदान करारों (टीआईई) को अंतिम रूप दिया गया है और भारतीयों द्वारा विदेशों में धारित बैंक खातों और परिसंपत्तियों के संबन्ध में सूचना प्राप्त होना शुरू हो चुकी है। कुछ मामलों में अभियोजन शुरू किया जाएगा।
2. संधि किए गये देशों के साथ कर सूचना के शीघ्र आदान–प्रदान हेतु समर्पित सूचना आदान–प्रदान प्रकोष्ठ सीबीडीटी में कार्य कर रहा है।
3. भारत कर मामलों में पारस्परिक प्रशासनिक सहायता संबंधी बहुपक्षीय सम्मेलन का 33वां हस्ताक्षरकर्ता देश बन गया है।
4. सीबीडीटी में आयकर अपराधिक अन्वेषण निदेशालय की स्थापना की गई है। ससंद के वर्तमान सत्र में काले धन पर सदन में एक श्वेत पत्र प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है।

सरकारी अधिप्राप्ति कानून सरकार एक सरकारी अधिप्राप्ति कानून को अधिनियमित करने के प्रति वचनबद्ध है ताकि सरकारी खरीद में विश्वास बढ़ाया जा सके और इस प्रक्रिया में पारदर्शिता और कार्यदक्षता सुनिश्चित की जा सके। इस सम्बन्ध में संसद के बजट सत्र में विधेयक लाया जाएगा। भ्रष्टाचार रोधी ढांचा मजबूत करने के लिए निम्नलिखित विधायी उपाय अधिनियम के विभिन्न चरणों में है।

1. धन शोधन रोकथाम (संशोधन) विधेयक, 2011 संसद में प्रस्तुत किया गया है, ताकि इस अधिनियम के कतिपय उपबंध वैश्विक मानकों के अनुरूप हों।
2. बेनामी लेन–देन (निषेध) विधेयक, 2011 की वित्त संबंधी स्थायी समिति द्वारा जांच की जा रही है। यह बेनामी लेन–देन (निषेध)अधिनियम, 1988 का स्थान लेगा।
3. राष्ट्रीय स्वापक और मनोसुख सामाग्री (संशोधन) विधेयक, 2011 संसद में प्रस्तुत किया गया है, ताकि स्वापक दवा तथा मनोसुख की सामाग्री संबंधी राष्ट्रीय नीति को अमल में लाने के कानूनी उपबंधों को मजबूती प्रदान की जा सके।

10.4.5 कालेधन की वृद्धि के प्रभाव (EFFECTS OF INCREASE OF BLACK MONEY)

काले धन से होने वाले वित्तीय प्रभाव (THE FINANCIAL IMPACT OF BLACK MONEY) ये होते है कि विभिन्न राज्यों या सरकार की आय घट जाती है और इनके विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र जिसका महत्व अत्यधिक है उसके लिए भी धनाभाव हो जाता है। इस प्रकार देश महत्वपूर्ण सेवा योजना को पूरा नहीं कर पाता अथवा कुछ आवश्यक पूँजीगत वस्तुयें प्राप्त नहीं करता। इसका कुप्रभाव आधुनिक तकनीक पर भी पड़ता है। एक प्रकार से हम इसी कारण दूसरे देशों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते है ताकि आवश्यक

विनियोगों के लिए धन की कमी को पूरा किया जा सके। अभाग्यवश हमारे निर्यात इतने नहीं है कि हम विदेशी ऋण के भार को आसानी से वहन कर सकें। अतः विदेशी ऋण का भार हमारी अर्थव्यवस्था पर दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, और ऋण जाल की समस्या उत्पन्न हो गई है। इस कमी को पूरा करने के लिए आधुनिक तकनीक के आयात के लिए छूट देनी पड़ी। इसका भी प्रभाव देश में बहुत अच्छा नहीं पड़ा। और इस संम्बध में काफी वाद विवाद उत्पन्न हो गया कि बाहरी तकनीक को हम किस हद तक बढ़ावा दें। एक और प्रभाव इसका ये हुआ कि हमारे सार्वजनिक उद्योगों की लागत बढ़ गई है और हमारी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति घट गई है।

कर चोरी के कारण सरकार को आंतरिक प्रशासन के लिए भी धनाभाव हो जाता है जिसके कारण सरकार को आंतरिक ऋण लेना पड़ता है। और इस प्रकार इससे उत्पन्न होने वाली कई प्रकार की बुराइयों को झेलना पड़ता है जैसे जब इस धन का प्रयोग अनुत्पादक कार्यो के लिए किया जाता है तो देश में मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने लगती है। यदि एक प्रकार से देखा जाये तो मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण काला धन है।

नियोजन की प्राथमिकता पर प्रभाव (EFFECT ON PRIORITY OF PLANNING)

हमारे नियोजन का प्रमुख उद्देश्य आय विषमता को दूर करके गरीबी तथा बेकारी की समस्या को सुलझाना है। इसके लिए सरकार को पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है ताकि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया जाये और नये नये रोजगार के स्रोत खोले जायें। परन्तु जब देश में धन का एक बड़ा भाग चोरी छिपे कुछ लोगों के हाथ में हैं जो उसे अपनी व्यक्तिगत विलासिता पर व्यय करते है तो निश्चिय ही राष्ट्र के पास अपनी उपर्युक्त योजनाओं के लिए धनाभाव हो जाता है। काले धन से धनाभाव बढ़ता है तथा मुद्रा स्फीति भी। कुछ लोग बड़े–बड़े बंगलों में विलासिता की जिंदगी गुजारते है जबकि करोड़ों लोग आवश्यक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

राजनैतिक ढांचे में भ्रष्टाचार (CORRUPTION IN POLITICAL STRUCTURE)

काले धन के कारण देश के राजनैतिक ढ़ाचे में भी भ्रष्टाचार उत्पन्न हो जाता है क्योंकि ये बड़े–बड़े धनवान राजनीतिक को तो खरीद लेते है या उन पर अत्यधिक प्रभाव बना लेते है। र्दुभाग्यवश हमारे राजनीतिक लोग अपनी ईमानदारी के स्तर को एक निश्चित स्तर तक बनाये रखने में असफल रहे है। यही नहीं ऐसा भी देखा गया है कि कभी कभी तो कानून के रखवालों को भी इनके सामने झुकना पड़ता है। पैसे में बड़ी शक्ति है और ये लोग इसे समझते है कि इससे किसी को भी अपने वश में किया जा सकता है। इस प्रकार काले धन के प्रभाव अत्यंत विनाशकारी है। अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के अनुमान के मुताबिक, मनी लांउडरिंग कारोबार दुनिया के कुल जीडीपी के लगभग 2 से 5 प्रतिशत (हर साल 800 अरब डॉलर से 2 लाख करोड़ डॉलर के बीच) हो सकता है। भारत को हाल ही में फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स की सदस्यता दी गई है।

10.5 वित्तीय कार्रवाई कार्यदल (FINANCIAL ACTION TASK FORCE)

बहुराष्ट्रीय 'फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स' एक अंतर्सरकारी संगठन है। 1978 में इसकी स्थापना विश्व के सात बड़े औद्योगिक देशों (जी–7) ने मनी लांडरिंग और टेरर फाइनेंसिंग के खिलाफ लड़ाई के लिए नीतियां तैयार करने के उद्देश्य से की थी। एफएटीफ ने कहा कि जिन देशों से भारत संधि मजबूत करने के प्रयास कर रहा है, क्योंकि इन देशों के सहयोग के चलते हवाला ऑपरेटरों (कालाधन विदेश में भेजने और आतंकियों को धन देने वाले लोग) को पकड़ने में सरकार को बाधा आ रही है। 36 देशों का एक अंतर्राष्ट्रीय

संगठन है। जो मनी लांड्रिग और आतंकी संगठनों को फंडिंग रोकने के लिए बनाया गया है। मार्च 2010 में भारत को इसकी सदस्यता मिली है। भारत 4 साल तक पर्यवेक्षक रहने के बाद यह संस्था का पूर्ण सदस्य हो गया है। एफएटीएफ के 40.9 सिद्धांत है जो मनी लाउंडरिंग पर अंकुश लगाने के लिए पॉलिसी बनाने और उसे बढ़ावा देने की जिम्मेदारी उठाई है। इन सिद्धान्तों का पालन किसी वित्तीय सेवा देने वाले संस्थान के लिए जरूरत बन गई है। इसके अलावा एफएटीएफ, विश्व बैंक और आईएमएफ करेगा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फत्फ की अनुशंसा को काफी महत्व दिया जाता है। नकली भारतीय नोट छापने के मामले में भारत अब पाकिस्तान को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बेनकाब करेगा। यह मुद्दा भारत फत्फ (फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्से–एफएटीएफ) में उठाने के बाद आईएमएफ और विश्व बैंक में भी उठाएगा।

वित्तीय कार्रवाई कार्यदल की सदस्यता का महत्व (IMPORTANCE OF MEMBERSHIP OF FINANCIAL ACTION TASK FORCE) एफएटीएफ की सदस्यता से भारत को इंटरनैशनल फाइनेंस के प्लेटफॉर्म पर बड़ी शक्ति बनने की अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में सहायता मिलेगी। इससे उसे आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए जरूरी इंफ्रास्ट्रक्चर तैयार करने, आतंकवादियों को मिलने वाले फंड का पता लगाने, मनी लाउडरिंग की जांच करने और आतंकवादियों को फंड मुहैया कराने वाले दोषियों का पता लगाने में सहायता मिलेगी। इससे भारत को मनी लाउंडरिंग और आतंकवादियों को फंडिग पर ताजा हालात की जानकारी मिलेगी। इससे वित्तीय व्यवस्था में संगठित आपराधिक समूहों की घुसपैठ या दुरूपयोग की आशंका को खत्म करते हुए अधिक पारदर्शी और स्थित वित्तीय व्यवस्था कायम करने में मदद मिलेगी। आर्थिक वृद्धि की तेज और टिकाऊ रफ्तार और व्यापक भौगोलिक फैलाव के चलते भारत के सामने मनी लाउंडरिंग और आतंकवादियों की फंडिंग के जोखिम संबंधी समस्याएं बढ़ी है। इसे देखते हुए भारत के लिए फत्फ की सदस्यता का महत्व काफी बढ़ गया है। भारत में मनी लाउंडरिंग का सबसे बड़ा स्रोत कई तरह की आपराधिक गतिविधियां है। इनमें वित्तीय जालसाजी, जाली नोटों का कारोबार, नशीले पदार्थ और मानव तस्करी और भ्रष्टचार शामिल है।

10.6 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

1. ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है ?
2. शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है?
3. भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के चार कारण बताइये ?
4. भारत में आर्थिक विषमताओं असमानताओं को दूर करने के उपाय बताइये?
5. काले धन के अनुमान किन प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते है ?
6. काले धन का राज्य के आर्थिक स्रोतों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
7. काला धन देश में आय विषमताओं को बढ़ाता है ऐसा कहा जाता है। काला धन इसे किस प्रकार बढ़ता है?
8. फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स पर टिप्पणी लिखिए ?

10.7 सांराश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था है। अर्थव्यवस्था को आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था असमानता के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

10.8 शब्दावली (GLOSSARY)

- **उदारीकरण (LIBERALIZATION)** अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्ध से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ है आर्थिक संबन्धी निर्णय एवं व्यापार संबन्धी निर्णय की स्वतंत्रता उद्योगों को होगी।
- **निजीकरण (PRIVATIZATION)** निजीकरण एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों के संचालन, स्वामित्व और नियंत्रण में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है।
- **भूमण्डलीकरण (GLOBALIZATION)** भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किए जाने से है।
- **आर्थिक संवृद्धि (ECONOMIC GROWTH)** प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को संवृद्धि कहते हैं।
- **आर्थिक विकास (ECONOMIC DEVELOPMENT)** सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं।
- **प्रिवेंशन ऑफ मनी लॉड्रिंग एक्ट (पीएमएलए) (PREVENTION OF MONEY LAUNDERING ACT (P.M.L.A.))** यह कानून प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) को आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और उसकी सम्पत्ति को जब्त करने का अधिकार देता है।

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House
- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947,
- Academic Foundation
- Kapila, Uma (2008&09), Indian Economy,Academic Foundation
- दत्त, रूद्र एवं के सुन्दरम .एम.पी.(2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एसचन्द एण्ड कम्पनी
- लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस लाल के.एवं एस .एन. (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षणतथा विश्लेषण,
- शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

10.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री (USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- www-ibef-org/economy/agriculture-asp
- www-economywatch-com/database/agriculture-
- business-gov-in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना योजना आयोग (विभिन्न अंक), नई दिल्ली।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारत में आर्थिक असमानता की समस्या का स्वरूप कैसा है? इसे दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ का विश्लेषण कीजिए।
2. आर्थिक असमानता के कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. आर्थिक असमानता किसी भी समाज के लिए अभिशाप है। इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
4. समानान्तर अर्थव्यवस्था का अर्थ बतायें ? भारत वर्ष के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में इसका महत्व क्यों अत्यधिक हैं?
5. काले धन के प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए? उन क्षेत्रों को भी बताइयें जहां काला धन प्रचलित है?

इकाई 11 भारतीय लोकवित्त
(INDIAN PUBLIC FINANCE)

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 भारत में बजटरी व्यवस्था
11.3.1 संचित कोष
11.3.2 सार्वजनिक खाता
11.3.3 आकस्मिक कोष
11.4 बजट के भाग
11.4.1 राजस्व बजट तथा राजस्व व्यवहार
114.1.1 राजस्व प्राप्तियां
11.4.1.2 राजस्व व्यय
11.4.2 सब्सिडी तथा अनुदान
11.4.3 पूँजी बजट
11.5 बजटरी घाटा की विभिन्न अवधारणाएं
11.6 सार्वजनिक ऋण
11.7 अभ्यास प्रश्न
11.8 सांराश
11.9 प्रश्नावली
11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय लोकवित्त की अध्ययन सामग्री का केन्द्र भारत सरकार की राजस्व एवं बजटरी नीतियां तथा गतिविधियां हैं। भारत सरकार के वित्तीय स्वास्थ्य, वित्तीय नीतियों तथा गतिविधियों का हमारी अर्थव्यवस्था पर इतना व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ता है कि इनके बहुमुखी अध्ययन के बिना देश की अर्थव्यवस्था और समाज के लिए हितकर नीतियों की रचना करना असंभव है।

राजकोषीय या बजटरी नीति से आशय सरकार की सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण तथा उसके प्रबन्ध से सम्बन्धित उन नीतियों से है जिनका प्रयोग सरकार अर्थव्यवस्था में रोजगार, राष्ट्रीय उत्पादन (आय) आन्तरिक तथा वाह्य आर्थिक स्थिरता, आर्थिक समता आदि आर्थिक नीतियों के प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करती है।

करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण राजकोषीय नीति के तीन महत्वपूर्ण अस्त्र हैं। घाटा वित्तीयन को जो एक प्रकार की केन्द्रीय बैंक से ली जाने वाली ऋण व्यवस्था है जिसे सरकार देश के केन्द्रीय बैंक से नये नोटों के निर्गमन के द्वारा प्राप्त करती है, चौथे अस्त्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, पर यह एक विशुद्ध राजकोषीय अस्त्र नहीं है क्योंकि यह सरकारी व्यय तथा मुद्रा की पूर्ति दोनों को प्रभावित करती है। सार्वजनिक व्यय को बढ़ाना इसका राजकोषीय पहलू है। इसीलिए घाटे के वित्तीयन को हम राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति की सीमा पर स्थित मानते हैं। सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा निजी क्षेत्रों के लिए संसाधनों की उपलब्धता, आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका तथा संसाधनों के आवंटन तथा विनियोजन ढांचे को प्रभावित करती है।

11.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं–

- ✓ भारतीय लोकवित्त के अन्तर्गत बजटरी व्यवहार के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करना।
- ✓ भारत में बजटरी घाटा की विभिन्न अवधारणाओं को प्रस्तुत करना।
- ✓ भारतीय लोकवित्त के बजटरी व्यवहार में सार्वजनिक ऋण की स्थिति स्पष्ट करना।

11.3 भारत में बजटरी व्यवस्था (BUDGETARY SYSTEM IN INDIA)

संविधान के अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए, जो अप्रैल 1 से 31 मार्च तक चलता है, केन्द्र सरकार की अनुमानित प्राप्तियों तथा व्ययों का एक विवरण पार्लियामेण्ट के सामने रखना आवश्यक होता है। इस वार्षिक वित्तीय विवरण को केन्द्र सरकार का बजट कहा जाता है। बजट में तीन लगातार वर्षों के व्ययों तथा प्राप्तियों का विवरण दिया रहता है, आने वाले वर्ष के लिए बजट अनुमान, चालू वर्ष कें लिए संशोधित अनुमान तथा इसका कारण तथा एक वर्ष पीछे के लिए वास्तविक प्राप्तियां तथा व्यय। राज्य सरकारों के बजट के सम्बन्ध में व्यवस्था अनुच्छेद 202 में दी हैं। संविधान के अनुच्छेद 266 तथा 267 में बजट का ढाँचा दिया हुआ है जिसके अनुसार तीन प्रकार के खातों के रूप में सरकारी व्यवहार को प्रस्तुत किया जाता है।

11.3.1 संचित कोष (ACCUMULATED FUND)

संचित कोष वह कोष है जिसमें सरकार की सम्पूर्ण राजस्व प्राप्ति, ट्रेजरी बिल्स, सरकारी ऋणों के निर्गमन, अर्थोपाय अग्रिमों तथा ऋणों की अदायगी से प्राप्त प्राप्तियों को प्रदर्शित किया जाता है। बिना पार्लियामेण्ट से अधिकृत हुए इस फण्ड से किसी भी रकम की निकासी नहीं हो सकती। किसी व्यय के लिए चाहे समेकित फण्ड से होने योग्य ही हो या जिसको पार्लियामेण्ट द्वारा स्वीकृत ही कर दिया गया हो तब तक रकम संचित कोष से नहीं निकाली जा सकती जब तक कि विनियोजन अधिनियम द्वारा इस व्यय को अधिकृत नहीं किया गया हो।

11.3.2 सार्वजनिक खाता (PUBLIC ACCOUNT)

संविधान की धारा 266(2) के तहत संचित फण्ड से सम्बन्धित सामान्य स्वभाव की प्राप्तियों तथा व्ययों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जो सरकारी खाते में आते हैं। ये ऐसी प्राप्तियां होती हैं जो वास्तव में सरकार की नहीं होती हैं, बल्कि सरकार दूसरों के लिए अपने पास रखती है तथा जिन्हें बाद में उन्हें लौटा देती है। ऐसे व्यवहारों को सार्वजनिक खाते में प्रदर्शित किया जाता है और इससे निकालने के सम्बन्ध में (जब जमाकर्ता को भुगतान किया जाता है) पार्लियामेण्ट की स्वीकृति नहीं ली जाती।

11.3.3 आकस्मिक कोष (CONTINGENCY FUND)

संविधान की धारा 267 के तहत आकस्मिक कोष एक प्रकार का आकस्मिक व्यय को पूरा करने के लिए राशि है जो केन्द्र सरकार के सम्बन्ध में राष्ट्रपति तथा राज्य सरकार के सम्बन्ध में राज्यपाल के पास प्रयोग के लिए रहता है जिससे कुछ आकस्मिक तथा अनिश्चित व्ययों की पूर्ति की जा सके जिन्हें पार्लियामेण्ट की स्वीकृति तक के लिए टाला नहीं जा सके। ऐसे व्ययों को आकस्मिक कोष से निकासी के द्वारा पूरा कर लिया जाता है, बाद में पार्लियामेण्ट से अधिकृत होने पर संचित फण्ड से निकालकर इसमें डाल दिया जाता है।

11.4 बजट के भाग (PARTS OF BUDGET)

अनुच्छेद 112(2) (ब) के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि सरकार राजस्व व्ययों तथा अन्य व्ययों के बीच अन्तर प्रदर्शित करे। इसलिए बजट को दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है– राजस्व बजट तथा पूंजी बजट। राजस्व बजट तथा पूंजी बजट में प्रदर्शित सम्पूर्ण प्राप्तियां, संचित फण्ड की सम्पूर्ण प्राप्तियां प्रदर्शित करेंगी तथा राजस्व बजट में प्रदर्शित सम्पूर्ण व्यय संचित फण्ड के सम्पूर्ण व्यय या संवितरण प्रदर्शित करेंगे।

11.4.1 राजस्व बजट तथा राजस्व व्यवहार (REVENUE BUDGET AND REVENUE BEHAVIOR)

चालू वित्तीय व्यवहार को राजस्व व्यवहार कहते हैं। राजस्व बजट के दो भाग होते हैं–

11.4.1.1 राजस्व प्राप्तियां

11.4.1.2 राजस्व व्यय

11.4.1.1 राजस्व प्राप्तियां (REVENUE RECEIPTS)

ऐसी प्राप्तियां जिनके लौटाने का दायित्व सरकार पर नहीं हो उन्हें हम राजस्व प्राप्तियां कहते हैं। इन प्राप्तियों के कारण सरकार की देयता में वृद्धि नहीं होती। ये राजस्व प्राप्तियां सरकार की आय होती हैं। 'प्राप्तियां' अधिक विस्तृत हैं जिसमें राजस्व प्राप्तियों के अतिरिक्त वे प्राप्तियां भी सम्मिलित हैं जिनके लौटाने का दायित्व सरकार के ऊपर होता है। राजस्व प्राप्तियां दो प्रकार की होती हैं– कर राजस्व तथा गैर–कर राजस्व।

कर राजस्व (TAX REVENUE) कर एक प्रकार का अनिवार्य भुगतान है जो उस व्यक्ति को अनिवार्य रूप से सरकार को देना पड़ता है जो कर आधार से सम्बन्धित होता है तथा जिसके बदले करदाता को आवश्यक रूप से कोई लाभ नहीं प्राप्त होता। कर आधार से आशय उससे है जिसको आधार बनाकर कर लगाया जाता है जैसे आयकर का कर आधार है आय। यदि जिसकी आय सरकार द्वारा निर्धारित सीमा से ऊपर होगी उसे अनिवार्यतः कर देना पड़ेगा। कर दो प्रकार के होते हैं– प्रत्यक्ष कर एवं परोक्ष कर।

प्रत्यक्ष कर (DIRECT TAX) उन करों को कहते हैं जिनके मौद्रिक बोझ को दूसरों पर विवर्तित (टाला) नहीं किया जा सके जिनके सम्बन्ध में कर से उत्पन्न कराघात तथा करापात उसी व्यक्ति पर पड़ते हैं जिनके ऊपर सरकार कर लगाती है तथा जिन करों के बोझ को विवर्तित किया जा सकता है उन्हें **परोक्ष कर** कहते हैं।

प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों से सम्बन्धित सभी राजस्व समस्याओं का नियमन तथा नियन्त्रण राजस्व विभाग द्वारा होता है जो दो सांविधिक बोर्डों– सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ डाइरेक्ट टैक्सेज तथा सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ एक्साइज एण्ड कस्टम, द्वारा इसका नियमन होता है।

सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ डाइरेक्ट टैक्सेज (C.B.D.T.) का गठन सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ रेवेन्यू एक्ट 1963 के अन्तर्गत होता है। इसने **1 जनवरी, 1963** से कार्य करना शुरू किया। इसमें अध्यक्ष के अलावा 5 सदस्य होते हैं। यह प्रत्यक्ष करो की उगाही से जुड़े सभी मामलों का निपटारा करता है और प्रत्यक्ष कर से सम्बद्ध कानूनों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है।

केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष कर

व्यक्तित आयकर (Personal Income Tax)
निगम कर (Corporate Tax)
उपहार कर (Gift Tax) (समाप्त)
अस्तिकर (Estate Duty) (समाप्त)
व्यय कर (केल्डार) (Expenditure Tax) (समाप्त)
सम्पत्ति कर (Wealth Tax)
पूंजी लाभ कर (Capital Gains Tax)
लाभांश कर (Dividend Tax)
ब्याज कर (Interest Tax)
फ्रिन्ज बेनिफिट (सीमान्त लाभ) कर (F.B.T.)– 2005–06 में शुरू
प्रतिभूति व्यवहार कर (S.T.T.)– 2006–07 में शुरू

बैंकिंग कैश ट्रैंजेक्शन कर (B.C.T.T.)– 2007–08 में शुरू तथा समाप्त
कमोडिटीज ट्रैंजेक्शन कर (C.T.T.)– 2008–09 में शुरू
लाभांश वितरण कर (D.T.T.)– 2007–08 से शुरू

केन्द्र सरकार के परोक्ष कर

संघीय उत्पाद शुल्क (U)
सीमा शुल्क
सेवा कर
बिक्री कर
व्यय कर या होटल टैक्स
भारतीय आयकर का नियमन इनकमटैक्स ऐक्ट 1961 द्वारा होता है।

कर के साथ ही दो शब्द और प्रयोग में आते हैं–ड्यूटी या शुल्क, लेवी तथा फीस। ड्यूटी तो एक प्रकार का कर है, और बहुत देशों में इसे करारोपण ही कहा जाता है जैसे इक्साइज टैक्सेशन पर भारत में ड्यूटी प्रयोग में आती है जैसे उत्पादन शुल्क या सीमा शुल्क। जब बिना आवश्यक रूप से लाभ प्राप्त किये हुए कर आधार से सम्बन्धित होने के कारण भुगतान किया जाता है तो उसे तो हम कर कहते हैं पर जब सरकार द्वारा प्रदत्त किसी सेवा के बदले (जिसमें प्राप्त होने वाला लाभ स्पष्ट है) अनिवार्य अंशदान किया जाता है तो इसे फीस कहते हैं (भुगतान सम्बन्धी अनिवार्यता है यदि आप उस सेवा का प्रयोग करते हैं) पर यदि सरकार द्वारा प्रदत्त कुछ स्पष्ट सुविधाओं जैसे सरकार द्वारा अवस्थापना के प्रयोग से या लाभ प्राप्त करके कोई आर्थिक क्रिया करते हैं जैसे उत्पादन क्रिया जिसमें उत्पादक सरकार द्वारा प्रदत्त सड़क संवहन, संचार, बैंकिंग आदि से परोक्ष रूप से लाभान्वित हुआ या आयात तथा निर्यात जिसमें वह इन सुविधाओं के अतिरिक्त पोर्ट या अन्य सुविधाओं से लाभान्वित हुआ, तो इनके प्रयोग से परोक्ष रूप से लाभान्वित होने के कारण जो अनिवार्य भुगतान करना होगा, वह भी कर होगा पर इसे 'ड्यूटी' कहते हैं जैसे इक्साइज ड्यूटी तथा कस्टम ड्यूटी।

कर, उपकर तथा अधिभार (TAXES, CESS AND SURCHARGE)

कर एक प्रकार का अनिवार्य अंशादान है जिसे करदाता बिना किसी प्रतिफल के सरकार को कर आधार से सम्बन्धित होने के लिए देता है। किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए कर नहीं लगाया जाता जबकि उपकर तथा अधिभार दोनों ही किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए राजस्व की उगाही के लिए लगाये जाते हैं। उपकर कर के साथ कर आधार पर ही किसी विशेष प्रयोजन के लिए लगाया गया कर है। जबकि अधिभार कर के ऊपर कर है जिसकी गणना कर दायित्व पर की जाती है। सामान्यतया अधिभार प्रत्यक्ष कर पर लगाया जाता है जबकि उपकर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों दोनों के साथ होता है। वैसे सिद्धान्ततः उपकर (शिक्षा) कर आधार पर लगाया जाता है जबकि अधिभार कर दायित्व पर लगाया जाता है। पर भारत में हाल में लगाया गया उपकर अधिभार की ही तरह कर दायित्व पर लगाया जा रहा है।

अधिभार तथा उपकर की प्राप्ति को राज्यों के वितरण योग्य पूल में नहीं डाला जाता है, इसके राजस्व को उन उद्देश्यों पर लगाया जाता है जिनके लिए इन्हें लगाया गया है।

11.4.1.2 राजस्व व्यय (REVENUE EXPENDITURE)

राजस्व व्यय वे व्यय हैं जो सरकारी विभागों तथा सेवाओं को सामान्य रूप से चलाने, विगत वर्षो में लिए गए ऋणों पर ब्याज अदायगी तथा राज्य सरकारों को दियें जाने वाले अनुदान से सम्बन्धित होते हैं। स्पष्ट है ये ऐसे व्यय होंगे जिनके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति या पूँजी का सृजन नहीं होगा।

बजट प्रपत्र में राजस्व व्ययों के दो भागों में बांटा जाता है– योजनागत राजस्व व्यय तथा गैर योजनागत राजस्व व्यय। योजनागत व्यय केन्द्रिय योजना तथा राज्यों एवं संघ क्षेत्र की योजनाओं के लिए दी गयी सहायता से सम्बन्धित होते है, इनके अतिरिक्त अन्य व्यय जो सरकार के सामान्य, सामाजिक तथा आर्थिक सेवाओं से सम्बन्धित होते है, गैर योजनागत व्यय होते है। किसी योजनागत व्यय का वह भाग जो उस वर्ष में पूरा नही होता बल्कि अगले वर्ष को टल जाता है उसे अगले वर्ष में गैर योजनागत व्यय मानते हैं।

यह मानना गलत है कि सभी आयोजन व्यय विकासात्मक व्यय होते हैं और सभी गैर योजना राजस्व व्यय गैर विकासात्मक होते हैं तथा यह भी मानना ठीक नहीं है कि आयोजन व्यय आवश्यक रूप से पूँजीगत व्यय होंगे तथा गैर योजना व्यय राजस्व व्यय होंगे।

गैर योजनागत राजस्व व्ययों को मोटे तौर पर चार वर्गों में बांटा जा सकता है–सामान्य सेवाओं पर व्यय, सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाओं पर व्यय, आर्थिक सेवाओं पर व्यय तथा अन्य अनावंटनीय व्यय– सामान्य सेवाओं का सम्बन्ध देश की सुरक्षा तथा सरकार के सामान्य रूप से कार्य करने से है, सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाएं उपभोक्ता के रूप में नागरिकों को आधारभूत सुविधाओं को पहुँचाने से सम्बन्धि है, आर्थिक सेवायें नागरिकों को उत्पादक के रूप में लाभ पहुंचाती हैं तथा जिन्हें हम किसी शीर्षक में नहीं रख पाते उन्हें अनावंटनीय में रख देते हैं। पर इन व्ययों में तीन प्रमुख व्यय हैं– (क) ब्याज अदायगी (ख) सुरक्षा तथा (ग) सब्सिडीज। भारत में सुरक्षा व्यय को सदैव ही गैर योजनागत व्यय माना जाता है तथा विकासात्मक व्यय के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। सीमा पर सड़कों के निर्माण पर व्यय भी गैर विकासात्मक माना जाता है। सुरक्षा गैर योजनागत राजस्व व्यय तथा गैर योजनागत पूँजीगत व्यय दोनों ही हो सकता है। उल्लेखनीय यह है कि राष्ट्रीय लेखांकन में सुरक्षा व्यय को उपभोग व्यय माना जाता है।

आर्थिक सर्वेक्षण में सार्वजनिक व्ययों को एक दूसरे आधार पर वर्गीकृत किया गया है और वह है– विकासात्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय। प्रतिरक्षा, ब्याज अदायगी, कर वसूली व्यय, सब्सिडी, प्रशासनिक व्यय आदि को गैर विकासात्मक व्ययों में रखतें है।

11.4.2 सब्सिडी तथा अनुदान (SUBSIDY AND GRANT)

किसी भी वस्तु या सेवा को उसके उत्पादन लागत मूल्य या आर्थिक लागत मूल्य से कम पर आपूर्ति करने के दोनों के अन्तर को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा जो व्यय किया जाता है उसे सब्सिडी कहते हैं। इस प्रकार

सब्सिडी = लागत – मूल्य जिसपर वस्तु या सेवा लोगों को दी गयी

ऐसी वस्तुएं तथा सेवाएं सामान्यतया मेरिट वस्तुएं होंगी। जब सरकार किसी वस्तु या सेवा की आपूर्ति नहीं करे बल्कि किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली किसी क्रिया जैसे मकान बनवाना, ट्यूबवेल लगवाना, की लागत का कुछ भाग वहन कर ले तो इसे अनुदान कहते हैं। बजट की दृष्टि से सब्सिडी तथा अनुदान एक ही वर्ग के हैं, इसलिए इन्हें एक साथ राजस्व खाते में दिखाया जाता है।

उल्लेखनीय है कि केन्द्र सरकार से केन्द्रीय करों में से राज्यों को हस्तान्तरण तथा अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार से राज्यों को दिये गये अनुदान को राजस्व व्यय मानते हैं। विदेशों को दिये गये अनुदान को गैर योजनागत राजस्व व्यय मानते हैं।

11.4.3 पूँजी बजट (CAPITAL BUDGET)

पूँजी बजट में सरकार की पूँजीगत प्राप्तियां तथा पूँजीगत व्यय प्रदर्शित होते हैं। यह बजट सरकार की पूँजी आवश्यकता तथा उसके वित्तीयन के स्रोत पर प्रकाश डालती है। पूँजी आवश्यकता की पूर्ति के प्रमुख स्रोत हैं– राजस्व आधिक्य, आन्तरिक बाजार उधारी, अल्प बचत (गैर बाजार उधारी) तथा भविष्य निधि, ऋण तथा अग्रिमों की वापसी, विनिवेश, विदेशी ऋण तथा सहायता, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे मुद्राकोष, एशियन विकास बैंक, विश्व बैंक आदि से प्राप्त सहायता। इन्हें पूँजीगत प्राप्तियां कहते हैं।

पूँजीगत व्ययों को दो भागों में रखा जाता है– योजनागत पूँजीगत व्यय तथा गैर योजनागत पूँजीगत व्यय। योजनागत व्यय केन्द्रीय योजना तथा राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता से सम्बन्धित होता है।

ऋण अदायगी को पूँजीगत व्यय माना जाता है पर उस पर दिये जाने वाले ब्याज का भुगतान राजस्व व्यय होता है। इसी ऋण की वसूली से प्राप्ति पूँजीगत प्राप्ति है पर उस पर ब्याज की प्राप्ति पूँजीगत प्राप्ति नहीं बल्कि राजस्व प्राप्ति है। केन्द्र सरकार से राज्य सरकारों को दी जाने वाली अनुदान तथा सहायता को सामान्यतया राजस्व व्यय माना जाता है पर यदि यह अनुदान पूँजीगत योजना को पूरा करने के लिए हो तो पूँजी व्यय होगा।

गैर योजनागत पूँजीगत व्ययों को चार भागों में बांटा जा सकता है– सामान्य सेवाओं पर व्यय, सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाओं पर व्यय आर्थिक सेवाओं पर पूँजीगत व्यय तथा ऋण एवं अग्रिमों के रूप में भुगतान।

पूँजीगत प्राप्तियां दो प्रकार की होती है– (क) ऐसी प्राप्तियां जो केन्द्र सरकार के दायित्व या ऋण में वृद्धि लाती हैं तथा (ख) ऐसी प्राप्तियां जो केन्द्र सरकार की सम्पत्तियों में कमी लाती हैं अर्थात् जो केन्द्र सरकार की सम्पत्तियों के बेचने से जैसे विनिवेश से प्राप्ति या किसी को दिये गये ऋण की वापसी से प्राप्त होती है। पूँजीगत व्ययों तथा राजस्व घाटा को पूरा करने के लिए पूँजीगत प्राप्तियों की आवश्यकता होती है।

11.5 बजटरी घाटा की विभिन्न अवधारणाएं (DIFFERENT CONCEPTS OF BUDGETARY DEFICIT)

कोई भी सरकार अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित अपनी राजकीय क्रियाओं को सम्पादित करने के लिए कुछ सार्वजनिक व्यय करती है तथा इन व्ययों को पूरा करने के लिए कुछ धन प्राप्त करती है जिन्हें सार्वजनिक प्राप्तियां कहते हैं। सार्वजनिका घाटा वस्तुतः

सार्वजनिक व्ययों तथा उनको पूरा करने के लिए सार्वजनिक प्राप्तियों के अन्तर से सम्बन्धित है।

सार्वजनिक व्ययों तथा सार्वजनिक प्राप्तियों से सम्बन्धित वित्तीय व्यवहारों को संक्षिप्त रूप में नीचे चार्ट में प्रदर्शित किया गया है–

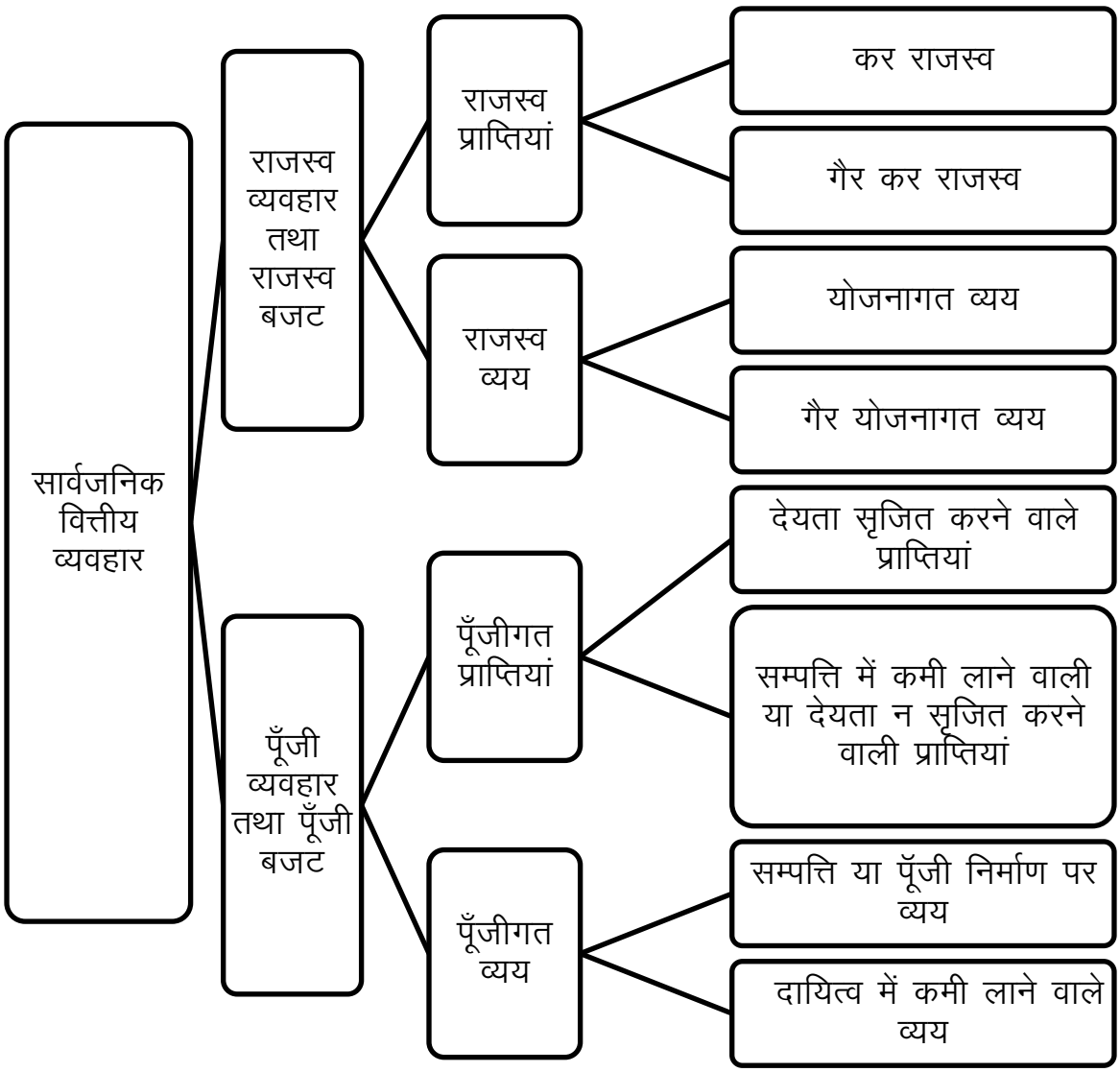

उपर्युक्त के आधार पर बजटरी व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न घाटे की अवधारणाएं निम्नलिखित हैं–

1. **<u>राजस्व घाटा (REVENUE DEFICIT):</u>** यदि कुल राजस्व व्यय की मात्रा कुल राजस्व प्राप्तियों से अधिक हो जाता है तब यह आधिक्य राजस्व घाटे को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार

राजस्व घाटा = राजस्व व्यय – राजस्व प्राप्ति
Revenue Deficit = Revenue Expenditure –Revenue Receipts

राजस्व घाटा = (आयोजन राजस्व व्यय + गैर आयोजन राजस्व व्यय) – (कर राजस्व + गैर कर राजस्व)

Revenue Deficit = (Planned Revenue Expenditure + Non-Planned Revenue Expenditure) – (Tax Revenue + Non-Tax Revenue)

चूँकि

राजस्व व्यय = आयोजन राजस्व व्यय + गैर आयोजन राजस्व व्यय

Revenue Expenditure = Planned Revenue Expenditure + Non-Planned Revenue Expenditure

राजस्व प्राप्ति = कर राजस्व + गैर कर राजस्व

Revenue Receipts = Tax Revenue + Non-Tax Revenue

राजस्व घाटा सरकार की अबचत प्रदर्शित करता है। इसका अर्थ हुआ सम्पत्ति में बिना किसी वृद्धि के केन्द्र सरकार के दायित्व में वृद्धि।

2. **<u>बजटरी घाटा (BUDGETARY DEFICIT):</u>** राजस्व खाते का घाटा तथा पूँजी खाते के घाटे को जोड़कर बजटरी घाटा प्राप्त होता है। इस प्रकार

बजटरी घाटा = कुल व्यय – कुल प्राप्तियां

Budgetary Deficit = Total Expenditure - Total Receipts

बजटरी घाटा = राजस्व खाते का घाटा + पूँजी खाते का घाटा

= (कुल राजस्व व्यय – कुल राजस्व प्राप्ति) + (कुल पूँजीगत व्यय– कुल पूँजीगत प्राप्ति)

Budgetary Deficit = Revenue Deficit + Capital Deficit

= (Total Revenue Expenditure - Total Revenue Receipts) + (Total Capital Expenditure - Total Capital Receipts)

बजटरी घाटे की पूर्ति सरकार रिजर्व बैंक से अपनी नकदी की निकासी के द्वारा या ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स (90 दिनों की अवधि की अल्पकालिक प्रतिभूति) को रिजर्व बैंक को देकर करती है, इस स्थिति में,

बजटरी घाटा = रिजर्व बैंक की नकदी की निकासी + एडहाक ट्रेजरी बिल्स की मात्रा में परिवर्तन

Budgetary Deficit = Cash Withdrawal of Reserve Bank + Changes in the Quantity of the Ad Hoc Treasury Bills

सामान्यतया नकदी की निकासी की नगण्यता के कारण बजटरी घाटा को आर्थिक समीक्षा में 1997–98 के पहले एडहाक ट्रेजरी बिल्स में परिवर्तन के द्वारा प्रदर्शित किया जाता था। यदि सरकार ट्रेजरी बिल्स के माध्यम से लिये जाने वाले ऋण पर रोक लगा दे जैसा 1997–98 के बजट से हुआ जबकि एडहाक ट्रेजरी

बिल्स को समाप्त कर अर्थोपाय अग्रिम की प्रक्रिया शुरू की गयी तो इस स्थिति में बजटरी घाटा शून्य प्रदर्शित होगा इस स्थिति में बजटरी घाटा की धारणा का कोई महत्व नहीं होगा।

3. **राजकोषीय घाटा (FISCAL DEFICIT):** राजकोषीय घाटा बजट घाटे की वृहद् संकल्पना है यह धारणा केन्द्रीय सरकार की ऋणग्रस्तता पर राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करती है। भारत में बजटरी व्यवहार में **'राजकोषीय घाटा'** की अवधारणा के पहली बार प्रयोग का **श्रेय डॉ0 मनमोहन सिंह** को जाता है जिन्होंनें **1991** में अपनी केन्द्रीय बजट में यह धारणा सामने रखी। वैसे इस धारणा का सबसे पहले प्रयोग **'वर्ल्ड डेवेलपमेन्ट रिपोर्ट 1988** WORLD DEVELOPMENT REPORT 1988' में P.S.B.R. (Public Sector Borrowing Requirement) के रूप में मिलता है। **सुखमय चक्रवर्ती कमेटी** (Sukhamoy Chakravarty Committee) (1985) ने अपनी रिपोर्ट में पहली बार यह मत व्यक्त किया कि बजटरी घाटा समग्र बजटरी व्यवहार से उत्पन्न सम्पूर्ण घाटा या सरकारी दायित्व में सम्पूर्ण वृद्धि प्रदर्शित नहीं करता। यह इस पर पूरा प्रकाश नहीं डालता कि सरकार बजटरी व्यवहार के कारण बाजार से कितना संसाधन निकाल रही है जो वास्तव में निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध होते जिसे हम तकनीकी भाषा में संसाधनों का **क्राउडिंग आउट** (Crowding Out) कहते हैं।

राजकोषीय घाटा वह समग्र घाटा है जो वास्तव में सरकार की समग्र बजटरी आय तथा समग्र बजटरी व्यवहार से उत्पन्न कुल देयता प्रदर्शित करता है। उल्लेखनीय है समग्र आय से अभिप्राय उन प्राप्तियों से है जिनके कारण किसी प्रकार का दायित्व सरकार के ऊपर सृजित नहीं होता है, सभी प्राप्तियों से नहीं। सभी प्राप्तियों में देयता उत्पन्न करने वाली प्राप्तियों भी सम्मिलित होंगी। इस प्रकार

राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय – समग्र आय

Fiscal Deficit = Total Expenditure - Total Receipts

राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय – (समग्र राजस्व आय + पूँजीगत आय – सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं)

Fiscal Deficit = Total Expenditure – (Total Revenue Receipts+ Capital Receipts - Public Debt and Other Liabilities)

समग्र पूँजीगत आय = पूँजीगत प्राप्ति – सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं

Total Capital Receipts = Capital Receipts - Public Debt and Other Liabilities

इसलिए,

राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय – (समग्र राजस्व आय + समग्र पूँजीगत आय)

Fiscal Deficit = Total Expenditure – (Total Revenue Receipts+ Total Capital Receipts)

राजकोषीय घाटा = बजटरी घाटा + सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं

Fiscal Deficit = Budgetary Deficit + Public Debt and Other Liabilities

इस प्रकार राजकोषीय घाटा सार्वजनिक ऋण में निबल वृद्धि प्रदर्शित करता है। यह अर्थव्यवस्था में संसाधन अंतराल भी प्रदर्शित करता है। अर्थव्यवस्था की दृष्टि से राजकोषीय घाटा की अवधारणा सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह न केवल सरकार की प्राप्तियों तथा व्ययों के बीच अन्तराल प्रदर्शित करता है बल्कि इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि किसी चालू वर्ष में सरकार द्वारा लिये जाने वाले सार्वजनिक ऋण की मात्रा क्या होगी तथा साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि सरकार पूँजीबाजार से कितना संसाधन निकाल रही है जो अन्यथा व्यक्तिगत क्षेत्र के निवेश के लिए उपलब्ध रहे होते।

राजकोषीय घाटा को पूरा करने के लिए निम्नांकित स्रोत हैं–

1. आन्तरिक बाजार उधारी
2. विदेशी ऋण
3. अल्प बचत स्कीम
4. विशिष्ट जमा
5. प्रोंविडेण्ट फण्ड
6. अन्य

इसमें से जितना (पूरा या आंशिक) समेकित फण्ड में जायेगा वही राजकोषीय घाटा को प्रभावित करेगा।

4. **प्राथमिक या मूल घाटा (PRIMARY DEFICIT):** प्राथमिक घाटा वह राजकोषीय घाटा है जिसमें से ब्याज अदायगियां कम कर दी गयी हैं। भारतीय बजट में ब्याज अदायगी की राशि बहुत अधिक है, जिसके परिणामस्वरूप राजकोषीय घाटे की मात्रा प्राथमिक घाटे की तुलना में बहुत अधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है। इसीलिए 1993–94 की बजट से मूल घाटा भी प्रदर्शित किया जा रहा है। मूल घाटा इस बात पर प्रकाश डालता है कि कुल घाटा में से कितना घाटा ऐसा है जो वर्तमान राजकोषीय गतिविधियों का परिणाम है।

इस प्रकार,

प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज दायित्व

Primary Deficit = Fiscal Deficit – Payment of Interest

5. **क्रियात्मक घाटा (FUNCTIONAL DEFICIT):** क्रियात्मक घाटा राजकोषीय घाटा को स्फीतिक समायोजन के बाद प्रदर्शित करने की धारणा है। स्फीति समायोजित राजकोषीय घाटा ही क्रियात्मक घाटा है।

क्रियात्मक घाटा = सकल राजकोषीय घाटा – स्फीतिक समायोजन

Functional Deficit = Fiscal Deficit - Inflationary Adjustment

6. **मौद्रिकृत घाटा (MONETISED DEFICIT):** घाटे की वह राशि जिसकी वित्तीय व्यवस्था नोट निर्गमन के द्वारा हो उसे मौद्रिकरण कहते हैं और उस घाटे को मौद्रिक घाटा कहते हैं।

मौद्रिक घाटा = बजटरी घाटा + सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक का योगदान

Monetary Deficit = Budgetary Deficit+ Reserve Bank's Contribution In Relation To Public Debt

मौद्रिक घाटा = ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स में वृद्धि + सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक का योगदान

Monetary Deficit = Changes in the Quantity of the Ad Hoc Treasury Bills + Reserve Bank's Contribution In Relation To Public Debt

उल्लेखनीय है कि ट्रेजरी बिल्स रिजर्व बैंक के सार्वजनिक ऋण में योगदान के कारण मौद्रीकरण होगा। इस प्रकार ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स की समाप्ति के कारण प्रत्यक्ष मौद्रीकरण समाप्त होगा। पर मौद्रीकरण बना रह सकता है।

बजटरी घाटा की आपूर्ति, चूँकि ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स के निर्गमन द्वारा होगी, इसलिए बजटरी घाटा = मौद्रीकृत घाटा, पर यदि बजटरी घाटा शून्य हो तो मौद्रीकृत घाटा इस बात पर निर्भर करेगा कि सार्वजनिक ऋण में रिजर्व बैंक की धारिता कितनी है।

11.6 सार्वजनिक ऋण (PUBLIC DEBT)

वर्तमान भारतीय बजटरी व्यवहार के अनुसार केन्द्र सरकार के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत तीन प्रकार की देयताएं आती हैं– (क) आन्तरिक ऋण (ख) विदेशी ऋण तथा (ग) अन्य देयताएं। आन्तरिक तथा विदेशी ऋण भारत के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत आते हैं और इनका भुगतान भारतीय संचित कोष के अन्तर्गत सुरक्षित होता है। पर अन्य देयताएं सार्वजनिक खाते में दिखाई जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 292 के अन्तर्गत पार्लियामेंट सार्वजनिक ऋण की ऊपरी सीमा निर्धारित कर सकती है। इसी प्रकार की व्यवस्था 293 के अन्तर्गत राज्यों के ऋणों के सम्बन्ध में है जहॉ राज्य विधानसभा राज्यों के आन्तरिक ऋण पर ऊपरी सीमा निर्धारित कर सकती है।

राज्यों द्वारा लिये जाने वाले ऋणों के सम्बन्ध में दो शर्तें है एक तो राज्य केवल आन्तरिक ऋण ही ले सकते है दूसरे जबतक ऋणों के सम्बन्ध में राज्यों की केन्द्र सरकार के प्रति देयता हो तबतक ऋण की उगाही के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार से अनुमति लेनी अनिवार्य होगी। केन्द्र की ही तरह राज्य सरकारें भी अपनी आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए 'राज्य अर्थोपाय अग्रिम' के तहत रिजर्व बैंक से ऋण ले सकती है, जो शुरू से ही ऋण माना जाता है।

केन्द्र सरकार के आन्तरिक ऋण के अन्तर्गत बाजार उधारी, रिजर्व बैंक द्वारा निर्गत विशिष्ट प्रतिभूतियां, क्षतिपूरक तथा अन्य बाण्ड, रिजर्व बैंक द्वारा राज्य सरकारों, व्यापारिक बैंकों तथा अन्य संस्थाओं को निर्गत ट्रेजरी बिल्स तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को निर्गत गैर परक्राम्य (Non Negotiable) तथा ब्याजरहित रूपया प्रतिभूतियां आती हैं। अन्य देयता के अन्तर्गत आन्तरिक तथा वाह्य ऋणों को छोड़कर सरकार की ब्याजयुक्त देयताएं

आती हैं जैसे डाकघर बचत बैंक जमा खाता, प्राविडेण्ट फण्ड जमा, अल्प बचत योजना जमा, डाकघर प्रमाणपत्रों के माध्यम से ऋण आदि। ये देयताएं ऐसी हैं जो सरकार को एक ऋणी के रूप में नहीं प्राप्त होती हैं बल्कि सरकार के खाते में एक बैंक की भूमिका के रूप में प्राप्त होती है। ये देयताएं भारतीय संचित कोष के अन्तर्गत सुरक्षित नहीं होती हैं, बल्कि सार्वजनिक खाते के भाग के रूप में दिखाई जाती है।

सांविधिक व्यवस्था के अन्तर्गत रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार का ऋण प्रबंध करता है जबकि समझौते के तहत राज्यों के ऋणों का प्रबंध करता है। सरकार अपनी राजकोषीय नीति के द्वारा सार्वजनिक ऋण का आकार निर्धारित करती है जबकि सार्वजनिक ऋण की संरचना, परिपक्वता ढांचा ब्याज दर प्रतिभूतियों के स्वभाव आदि का निर्धारण रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है जिससे यह अर्थव्यवस्था की तरलता स्थिति तथा निवेशकों की आवश्यकता तथा अधिमान के अनुरूप हो तथा इसकी लागत न्यूनतम हो।

उल्लेखनीय है केन्द्रीय बजट 2007–08 में वित्तमंत्री ने सार्वजनिक ऋण प्रबंध को स्वतंत्र तथा स्वायत्त स्वरूप प्रदान करने के लिए ऋण प्रबन्ध आफिस कि स्थापना की घोषणा की जो इस दिशा में अत्यन्त ही धनात्मक कदम सिद्ध होगा। ऐसी स्थिति में ऋण प्रबन्ध रिजर्व बैंक से हट जाएगा।

11.10 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न (क) – एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए

(1) संविधान के किस अनुच्छेद मे बजट का ढांचा दिया हुआ है?
(2) बजट व्यवहार के किस कोष में आकस्मिक व्यय को पूरा करने के लिए राशि होती है?
(3) सरकार की सम्पूर्ण राजस्व प्राप्तियों को किस कोष में प्रदर्शित किया जाता है?
(4) बजट को कितने भागों में प्रस्तुत किया जाता है?
(5) चालू वित्तीय व्यवहार को क्या कहते हैं?
(6) ऐसी प्राप्तियां जिन्हें लौटाने का दायित्व सरकार पर नहीं होता उन्हें क्या कहा जाता है?
(7) किस कर का करापात एवं कराघात एक ही व्यक्ति पर होता है?
(8) केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (Central Board of Direct Taxes (CBDT) ने कब से कार्य करना शुरू किया?
(9) भारत में व्यय कर लगाने का सुझाव किसने दिया था?
(10) भारत के वर्तमान आयकर ढांचे के अनुसार पुरूष करदाता के लिए करमुक्त आय की सीमा क्या है?
(11) कर आधार पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए लगाया जाने वाला कर क्या कहलाता है?
(12) वस्तु या सेवा की लागत तथा उसकी वह कीमत जिस पर यह लोगों को दी गयी का अन्तर क्या कहलाता है?
(13) ऋण अदायगी किस व्यय के अन्तर्गत आता है ?
(14) कुल राजस्व व्यय तथा कुल राजस्व प्राप्तियों का अन्तर क्या कहलाता है?
(15) कुल व्यय तथा कुल प्राप्तियों के अन्तर को क्या कहते है?
(19) बजटरी घाटा तथा राजकोषीय घाटा का अन्तर क्या कहलाता है?
(17) यदि राजकोषीय घाटे में से ब्याज अदायगियां घटा दी जाए तो कौन सा घाटा प्राप्त होगा?

(18) सांविधिक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार का ऋण प्रबन्ध कौन करता है?

प्रश्न (ख)–सत्य असत्य बताइये

(1) भारत का वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31मार्च है।
(2) राज्य सरकारों के बजट के सम्बन्ध में व्यवस्था अनुच्छेद 202 में दी गई है।
(3) राजस्व प्राप्तियां तथा पूँजीगत प्राप्तियां राजस्व बजट के दो भाग हैं।
(4) कर तथा उससे प्राप्त लाभ में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता।
(5) जिस कर के मौद्रिक बोझ को दूसरों पर टाला ना जा सके उसे अप्रत्यक्ष कर कहते हैं।
(6) निगम कर केन्द्र सरकार का अप्रत्यक्ष कर है।
(7) उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क केन्द्र सरकार के परोक्ष कर हैं।
(8) राजस्व खाते का घाटा एवं पूंजी खाते के घाटे का योग राजकोषीय घाटा कहलाता है।
(9) स्फीति समायोजित घाटे को क्रियात्मक घाटा कहते हैं।
(10) भारतीय आयकर का नियमन आय कर ऐक्ट 1961 के द्वारा होता है।

11.11 सांराश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारतीय बजटरी व्यवस्था में तीन प्रकार के खातों के रूप में सरकारी व्यवहार को प्रस्तुत किया जाता है– संचित कोष, सार्वजनिक खाता एवं आकस्मिक कोष। बजट के दो भाग होते हैं– राजस्व बजट तथा पूँजी बजट। इन दोनों भागों से सम्बन्धित समस्त पहलुओ की विवेचना की जा सकती है। प्रत्यक्ष कर, अप्रत्यक्ष कर, उपकर अधिभार तथा गैर–कर आय का विश्लेषण भी किया जा सकता है। राजस्व प्राप्तियों एवं राजस्व व्यय तथा पूंजीगत प्राप्तियों एवं पूँजीगत व्यय के विभिन्न पदों को समझ सकेंगे। यदि सरकार का व्यय उसके आय से अधिक हो तो बजट में घाटा उत्पन्न होता है। ये घाटे कई प्रकार के होते हैं जैसे– राजस्व घाटा, बजटरी घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक घाटा, मौद्रिकृत घाटा आदि। भारतीय बजट में सार्वजनिक ऋण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये ऋण आन्तरिक तथा वाह्य दोनो हो सकते हैं।

11.10 शब्दावली (GLOSSARY)

- **बजट (BUDGET):** सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण संचित कोष– सरकार की सम्पूर्ण राजस्व प्राणियों का कोष ।
- **कर (TAX):** सरकार को दिया गया अनिवार्य अंशदान है जिसके बदले में करदाता को कोई प्रत्यक्ष लाभ सरकार से नहीं मिलता है।
- **गैर–कर राजस्व (NON-TAX REVENUE):** प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से सरकार की प्राप्तियां।
- **उपकर (CESS):** किसी विशेष प्रयोजन के लिए लगाया जाने वाला कर
- **आर्थिक सर्वेक्षण (ECONOMIC SURVEY):** एक वित्तीय वर्ष में भारतीय अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों की स्थिति एवं मूल्यांकन का सरकारी प्रकाशन

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

प्रश्न (क)–एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए

उत्तर– (1) 266 एवं 267(2) आकस्मिक कोष (3) संचित कोष (4) दो (5) राजस्व व्यवहार (6) राजस्व प्राप्तियां (7) प्रत्यक्ष कर (8) 1 जनवरी, 1963 (9) कैल्डर ने (10) रू0 1,80,000 (11) उपकर (12) सब्सिडी (13) पूँजीगत व्यय (14) राजस्व घाटा (15) बजटरी घाटा (16) सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं (17) प्राथमिक घाटा (18) रिजर्व बैंक।

प्रश्न (ख)–सत्य असत्य बताइये

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) असत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) असत्य (9) सत्य (10) सत्य

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY)

- H.L. Bhatia : Public Finance
- B.Mishra: Economics of Public Finance
- R.N. Tripathi: Fiscal Policy and Economic Development in India
- R.N. Bhargavn: Indian Public Finance
- Govt. of India: Annual Budgets
- Govt. of India: Economic Survey

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारत के बजटरी व्यवस्था में सरकारी व्यवहार को प्रस्तुत करने वाले खातों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
2. भारत सरकार के राजस्व बजट की प्राप्तियों और व्यय के मुख्य घटकों की समीक्षा कीजिए।
3. भारत सरकार द्वारा प्रयुक्त बजटीय और राजकोषीय घाटों की अवधारणाओं की समीक्षा करें।
4. भारतीय बजटरी व्यवहार में सार्वजनिक ऋण पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 12 केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्ध
(FINANCIAL RELATIONS BETWEEN CENTER AND STATE)

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 साधनों का विभाजन
12.4 केन्द्र से राज्यों का साधन अन्तरण
12.5 वित्त आयोगों के माध्यम से अन्तरण
12.6 कर साधनों का विभाजन
    12.6.1 आय कर
    12.6.2 केन्द्रीय उत्पादन शुल्क
    12.6.3 अतिरिक्त उत्पादन शुल्क
    12.6.4 सम्पदा शुल्क
12.7 ग्यारहवें एवं बारहवें वित्त आयोग का अन्तरण फार्मूला
12.8 सहायक अनुदान
12.9 तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें अवधि 2010–15
12.10 स्व–मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न
12.11 सारांश.
12.12 शब्दावली
12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

संघीय संवैधानिक व्यवस्था में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच सम्बन्ध स्पष्ट रूप से निर्धारित होते हैं। लेकिन संघीय वित्त व्यवस्था की कुछ विशिष्ट समस्याएं होती है जिनका समाधान आवश्यक होता है। सबसे पहले तो केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच राजस्व के स्रोतों के विभाजन में इस बात को ध्यान में रखना होता है कि दोनों स्तर की सरकारों के साधन पर्याप्त हों ताकि वे अपने दायित्व के सभी कार्यों को पूरा कर सकें। लेकिन आधुनिक राज्यों में प्रायः यह सम्भव नहीं होता है क्योंकि अलग–अलग राज्यों की जरूरतों और उनके साधनों के बीच पूरी तरह संतुलन हो पाना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए राज्यों और केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच वित्तीय समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। दुसरा, संघीय व्यवस्था में हर सरकार के स्वत्रंत वित्तीय अधिकार होने चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हर सरकार के राजस्व के अलग–अलग स्रोत होने चाहिए ताकि वह स्वतंत्र रूप से कर लगा सके, ऋण ले सके, और अपने दायित्व के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जरूरी व्यय कर सके। तीसरा, कराधान की दृष्टि से जहां तक सम्भव हो सभी राज्यों में लगभग एक सी व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वित्तीय समायोजन की व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों को अनुदान की राशियां निर्धारित करते समय विवाद की गुंजाइश कम हो।

12.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ भारत में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण प्रणाली की स्थिति को समझ सकेंगे।
- ✓ आयकर के बंटवारे के सम्बन्ध में विभिन्न वित्त आयोगों की संस्तुतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों तथा उसके द्वारा कर राजस्व में राज्यों का हिस्सा निश्चित करने के लिए तय किए गये आधार को समझ सकेंगे।

12.3 साधनों का विभाजन (DIVISION OF RESOURCES)

भारत में केन्द्रीय और राज्य सरकारी के बीच कराधान के अधिकार का विभाजन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि वे सभी कर जिनका सम्पूर्ण देश के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है, केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाए जायें। ऐसे कर जिनका, उस राज्य के अलावा जो कर लगातार किसी अन्य राज्य के जीवन पर असर नहीं पड़ता, राज्य सरकार द्वारा लगाए और एकत्रित किए जाने चाहिए। भारत में राजस्व के स्रोत्रों का केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन कुछ इस तरह हुआ है कि केन्द्रीय सरकार के पास हमेशा बड़ी मात्रा में अतिरिक्त साधन रहते है जबकि राज्यों के बजटों में साधनों की कमी रहती है। इसलिए केन्द्र से राज्यों को कर विभाजन के द्वारा साधन–अन्तरण की व्यवस्था की गयी है। इसके अलावा संविधान की धारा 275 और 282 के अन्तर्गत केन्द्र से राज्यों को सहायक अनुदान की व्यवस्था है। धारा 275 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार राज्यों को वित्त आयोग की सिफारिश पर सहायक अनुदान देती है। ये अनुदान राज्यों के राजस्व और व्यय के बीच अन्तर को पूरा करने के लिए दिए जाते है। धारा 282 के अन्तर्गत दिये जाने वाले अनुदान विवेकाधीन हैं। केन्द्रीय सरकार राज्यों को सूखा, बाढ़ आदि प्राकृतिक विपत्तियों के

समय सहायक अनुदान इसी धारा के अन्तर्गत देती है। यदि कर–विभाजन और सहायक अनुदान द्वारा भी राज्य सरकारें अपने व्यय और राजस्व के बीच अन्तर को पूरा नहीं कर पाती है वे संविधान की धारा 293 के अन्तर्गत केन्द्र से ऋण ले सकती हैं। इस तरह केन्द्र से राज्यों को साधनों का अन्तरण तीन प्रकार से होता है

1 करों और शुल्कों का विभाजन

2 सहायक अनुदान और

3 ऋण।

12.4 केन्द्र से राज्यों को साधन अन्तरण (INSTRUMENT TRANSFER FROM CENTER TO STATES)

आयोजन काल में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण में लगातार वृद्धि हुई है। दरअसल हर नई पंचवर्षीय योजना की अवधि में पहले वाली पंचवर्षीय योजना की अवधि की तुलना में केन्द्र से राज्यों को साधनों का अन्तरण प्रायः दुगना या उससे भी अधिक रहा है। राज्य सरकारों के कुल व्ययों में इन अन्तरणों का भाग प्रायः 35 से 45 प्रतिशत के बीच रहा है। इस तथ्य से राज्यों की केन्द्र सरकार पर निर्भरता प्रकट होती है।

केन्द्र से राज्यों को कुल अन्तरण में सर्वाधिक अन्तरण करों और शुल्कों के रूप में रहा है। इस दृष्टि से दूसरा स्थान ऋणों का और तीसरा अनुदान का रहा है।

12.5 वित्त आयोग के माध्यम से अन्तरण (TRANSFER THROUGH FINANCE COMMISSION)

विभाज्य करों और शुल्को के केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन से पहले यह तय करना जरूरी है कि विभाज्य राशि क्या हो और इन करों और शुल्कों के विभाजन का आधार क्या हो। भारतीय संविधान में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि सरकारों की बदलती हुई जरूरतों और परिस्थितियों के कारण केन्द्र और राज्यों के बीच के साधनों के विभाजन के आधार में समय–समय पर परिवर्तन की आवश्यकता होगी। अतः संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच साधनों के विभाजन के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त अथवा नियम निर्धारित नहीं किये गये। बल्कि इसके अलावा संविधान में व्यवस्था की गयी है कि हर पांचवे वर्ष या इससे पहले इन मुद्दों पर विचार करने के लिए एक वित्त आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए। वित आयोग की नियुक्ति संविधान की धारा के अन्तर्गत की जाती है। वित्त आयोग मुख्य रूप से दी बातों में अपनी सिफारिशे देता है।

उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना जिनके आधार पर केन्द्र और राज्यों के विभाज्य करों का विभाजन हो। इस तरह वित्त आयोग सिफारिश करता है कि विभाज्य करों से प्राप्ति में केन्द्रीय और राज्य सरकारों का भाग कितना–कितना होगा।

उन सिद्धान्तों के बारे में सिफारिश करना जिनके आधार पर केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान देगी। वित्त आयोग अनुदान की राशि के बारे में अपनी सिफारिशें करता है। राष्ट्रपति स्वस्थ वित्तीय व्यवस्था के लिए वित्त आयोग को किसी भी सम्बन्धित मसले पर सिफारिश देने के लिए आग्रह कर सकते हैं। अब तक तेरह वित्त आयोग अपना काम कर चुके हैं। तेरहवें वित्त आयोग का गठन 1 नवम्बर, 2007 को विजय केलकर की अध्यक्षता में किया गया। इस आयोग ने 2010 से 2015 की अवधि के लिए केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अन्तरण के बारे में सिफारिश प्रस्तुत की है। सभी वित्त आयोगों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों व शुल्कों, रेल किरायों और भाड़ों पर करें (1957 में पहली बार

लगाए गये) से शुद्ध प्राप्तियों के आबंटन और राज्यों के बजट में घाटों को पूरा करने के लिए दिए जाने वाले अनुदानों के बारे में सिफारिशें की हैं। इसके अलावा कछ आयोगों ने राज्यों में प्रशासन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए केन्द्र से अनुदान देने की सिफारिशें की। दसवें वित्त आयोग ने विपत्ति सहायता फण्ड की योजना का भी पुनः मूल्यांकन किया तथा 31 मार्च, 1994 को राज्यों की ऋण स्थिति के अनुमान प्रस्तुत किया। दसवें, ग्यारहवें और बारहवें वित्त आयोगों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों से प्राप्तियों को केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन के विषय में सिफारिशें की हैं।

12.6 कर साधनों का विभाजन (DIVISION OF TAX RESOURCES)

मुख्य कर जिनका विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच होता है आय कर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क है यद्यपि वित्त आयोग कुछ अन्य विभाज्य करों (उदाहरणार्थ संपदा शुल्क) के बारे में भी अपनी सिफारिशें पेश करता रहा है।

12.6.1 आय–कर (INCOME TAX)

आयकर से निबल प्राप्ति में राज्यों का भाग 55 प्रतिशत से 85 प्रतिशत के बीच में रहा है। सारणी–1 से स्पष्ट किया गया है कि पहले दस वित्त आयोग ने आयकर से निवल प्राप्ति में राज्यों का भाग कितना रखने की सिफारिश की थी

विभिन्न राज्यों का आयकर में भाग निर्धारित करने के लिए विभिन्न वित्त आयोगों ने अलग–अलग आधारों की सिफारिश की थी। पहले वित आयोग ने सिफारिश की थी कि राज्यों के बीच आयकर की विभाज्य राशि का 80 प्रतिशत उनकी जनसंख्या के अनुपात में और 20 प्रतिशत कर एकत्रण के अनुपात में बाटा जाना चाहिए। दूसरे वित्त आयोग ने राज्यों के बीच आयकर विभाज्य राशि का 90 प्रतिशत उनकी जनसंख्या के अनुपात में और 10 प्रतिशत कर एकत्रण के अनुपात में बाटने की सिफारिश की थी। तीसरे और चौथे वित्त आयोग ने इस सम्बन्ध में पहले वित्त आयोग द्वारा प्रस्तावित फार्मूले को ही अपनाया लेकिन पाचवे, छठे और सातवें वित्त आयोगों ने दूसरे वित्त आयोग द्वारा प्रस्तावित फार्मूले को अपनाने का सुझाव दिया। आठवे वित्त आयोग ने आयकर की विभाज्य राशि का 10 प्रतिशत राज्यों को कर एकत्रण के आधार पर प्रदान किया और बाकी के 90 प्रतिशत के विभाजन के लिए केवल जनसंख्या को आधार न लेकर, तीन आधार लिएः

1 जनसंख्या का आधार
2 दूरी का आधार तथा
3 आय विलोम आधार (जिसे आय समायोजित कुल जनसंख्या आधार भी कहा जाता है।)

नौवें वित्त आयोग ने कर एकत्रण के आधार पर राज्यों को 10 प्रतिशत हिस्सा प्रदान किया परन्तु बाकी के 90 प्रतिशत का आवंटन करने के लिए आठवें आयोग द्वारा प्रस्तुत तीन आधारों के अलावा अपनी पहली रिपोर्ट में गरीबी के सूचकांक और दूसरी रिपोर्ट में पिछड़ेपन के सूचकांक को भी शामिल किया

सारणी–12.6.1 आयकर के सम्बन्ध में वित आयोगों की सिफारिशें

(प्रतिशत)

वित्त आयोग	आयकर में राज्यों का भाग	राज्यों में आयकर का वितरण	
		जनसंख्या के आधार पर	एकत्र की गयी कर आय भाग क आधार पर

पहला	55	80	20
दूसरा	60	90	10
तीसरा	66	80	20
चौथा	75	80	20
पाचवां	75	90	10
छठा	80	90	10
सातवे से नवे	85	90	10
दसवां	77.5	90	10

दसवें वित्त आयोग ने आयकर विभाज्य राशि के राज्यों के बीच बंटवारे के लिए निम्नलिखित कसौटियों का प्रयोग किया। 1971 की जनसंख्या के आधार पर 20 प्रतिशत सर्वोच्च प्रतिव्यक्ति आय वाले राज्य (पंजाब) से प्रतिव्यक्ति आय की दूरी के आधार पर 60 प्रतिशत राज्य के क्षेत्रफल के आधार पर 5 प्रतिशत आधारिक संरचना के सूचकांक के आधार पर 5 प्रतिशत तथा राज्यों द्वारा किये गये कर प्रयासो के आधार पर 10 प्रतिशत (कर प्रयास को किसी भी राज्य के प्रतिव्यक्ति कर राजस्व से प्रतिव्यक्ति आय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है)।

12.6.2 केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (CENTRAL EXCISE)

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच विभाजन अनुमत है पहले वित्त आयोग ने केवल तीन वस्तुओं पर लगाये गये उत्पादन शुल्क का 40 प्रतिशत राज्यों में जनसंख्या के आधार पर बांटने की सिफारिश की। दूसरे और तीसरे वित्त आयोग ने इस क्षेत्र में वस्तुओं की संख्या को और बढ़ा दिया। चौथे वित्त आयोग ने 45 वस्तुएं शामिल की किन्तु राज्यों को इनसे प्राप्त कुल आय का 20 प्रतिशत देने की सिफारिश की जिसमें 80 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और शेष राज्य के आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर। पांचवे वित्त आयोग ने भी लगभग वही सिफारिशें की जो चौथे वित्त आयोग ने की थी। छठे वित्त आयोग ने भी उत्पादन शुल्क में राज्यों का भाग जो 20 प्रतिशत रखा परन्तु इसके वितरण का आधार बदल दिया–75 प्रतिशत तो जनसंख्या के आधार पर और 25 प्रतिशत राज्य के पिछड़ेपन के आधार पर। सातवें वित्त आयोग ने राज्य का भाग उत्पादन शुल्क से प्राप्ति का 40 प्रतिशत निश्चित करने की और इसके वितरण के लिए नया फार्मूला अपनाने की सिफारिश की। आठवें वित्त आयोग ने राज्यों के भाग को बढ़ाकर 45 प्रतिशत कर दिया और 40 प्रतिशत का वितरण नये फार्मूले के आधार पर और 5 प्रतिशत घाटे वाले राज्यों के लिए रखा गया। नवें वित्त आयोग न 45 प्रतिशत की समग्र प्राप्ति को एक समेकित राशि के रूप में वितरित करने का प्रस्ताव किया किन्तु दसवें वित्त आयोग ने संघीय उत्पादन शुल्कों की शुद्ध प्राप्तियों के भाग को बढ़ाकर 47.5 प्रतिशत कर दिया। उत्पादन शुल्कों के राज्यीय–भाग में वृद्धि का उद्देश्य आयकर में इनके भाग में की गयी कमी की क्षतिपूर्ति करना है।

12.6.3 अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (ADDITIONAL EXCISE)

ये शुल्क 1956 में राष्ट्रीय विकास परिषद में हुए एक समझौते के पालन में केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाते हैं। सामान्य उत्पादन शुल्कों के अतिरिक्त, केन्द्र बिक्री कर के एवज में सूती वस्त्रों, तम्बाकू और चीनी पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क भी लगाता रहा है और इनसे समग्र प्राप्तियों का वितरण राज्यों में किया जा रहा है क्योकि अतिरिक्त उत्पादन शुल्क

बिक्री कर के एवज में लगाए जाते हैं जो कि स्वयं उपभोग पर कर है, विभिन्न राज्यों के भाग इन वस्तुओं के उपभोग में उन राज्यों के भाग के अनुरूप ही है।
नवें वित्त आयोग ने यह संकेत दिया है कि इन वस्तुओं के राज्यवार उपभोग के आंकड़े उपलब्ध नहीं है और इसलिए अतिरिक्त उत्पादन शुल्कों से प्राप्त निवल आय में अलग–अलग राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए राज्य घरेलू उत्पाद और जनसंख्या के प्रयोग की सिफारिश की है। दसवें वित्त आयोग ने इस आवंटन योजना को बदल दिया है।

12.6.4 सम्पदा शुल्क (ESTATE DUTY)

सम्पदा–शुल्क 1953 में लागू किया गया जिससे होने वाली समग्र आय राज्यों को हस्तान्तरित करने का निर्णय किया गया। द्वितीय वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि इसका प्रतिशत संघीय क्षेत्रों को दिया जाए और शेष राज्यों में बाँट दिया जाए। चौथे, पाँचवें और छठे वित्त आयोग ने संघीय क्षेत्रों के भाग को बढ़ाकर 5 प्रतिशत करने की सिफारिश की। सातवें वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि कृषि सम्पदा को छोड़ अन्य प्रकार की सम्पदा से प्राप्त होने वाले सम्पदा शुल्क का वितरण प्रत्येक राज्य में स्थित सम्पदाओं के कुल मूल्य के अनुपात में होना चाहिए। आठवें वित्त आयोग ने सम्पदा शुल्क के वितरण में कोई तब्दीली नहीं की।
चूँकि सम्पदा शुल्क को 1 अप्रैल, 1985 से समाप्त कर दिया गया और आगे सरकार का इसे पुनः लगाने का कोई इरादा नहीं है, अतः नौवे तथा बाद के वित्त आयोगों ने इस सम्बन्ध में कोई सिफारिशें नहीं की हैं।

12.7 ग्यारहवें एवं बारहवें वित्त आयोग का अन्तरण फार्मूला (TRANSFER FORMULA OF ELEVENTH AND TWELFTH FINANCE COMMISSION)

ग्यारहवें वित्त आयोग ने सिफारिश की थी कि केन्द्रीय सरकार के निबल कर राजस्व का 28 प्रतिशत राज्यों को दिया जाना चाहिए। इसके अलावा अतिरिक्त उत्पादन शुल्क के बदले में निबल कर राजस्व का 1.5 प्रतिशत राज्यों को मिलना चाहिए। लेकिन जो राज्य चीनी, तम्बाकू और कपड़े पर किसी तरह का कर लगायेंगे उन्हें अतिरिक्त 1.5 प्रतिशत में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा।
साधनों के अभाव की स्थिति का सामना करते हुए अनेक राज्यों ने बारहवें वित्त आयोग से आग्रह किया था कि केन्द्र द्वारा करों से एकत्रित धनराशि में उनका भाग 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर कम से कम 33 प्रतिशत तो कर ही देना चाहिए। बारहवें वित्त आयोग ने राज्यों की मांग कि केन्द्र द्वारा करों की प्राप्ति में उनका भाग कम से कम 33 प्रतिशत तो कर ही देना चाहिए असंगत मानते हुए तर्क दिया कि केन्द्र और राज्यों के बीच समता के उद्देश्य को प्राप्त करने के अनुदान अधिक प्रभावी तंत्र है। इस तर्क के बावजूद बारहवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय करों की वितरण योग्य धनराशि में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 30. 5 प्रतिशत कर दिया। तथापि यदि कपड़े, तम्बाकू और चीनी पर लगाये जाने वाले उत्पादन शुल्क केन्द्रीय करों की वितरणीय धनराशि का हिस्सा नहीं बनते अथवा राज्यों को इन वस्तुओं पर बिक्री कर लगाने की अनुमति होती है तो केन्द्रीय करों की वितरणीय धनराशि में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत ही रहेगा।

राज्यों को केन्द्र से मिलने वाले कर राजस्व में उनके हिस्सा के निर्धारण के लिए बारहवें वित्त आयोग ने ग्यारहवें वित्त आयोग से भिन्न फार्मूले की सिफारिश की सारणी–2 में केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यो का भाग निर्धारित करने के लिए आधार स्पष्ट किए गए है। इस सारणी के सावधानीपूर्वक अध्ययन से स्पष्ट है राज्यों के बीच कर राजस्व में उनकी वितरणीय धनराशि जिन आधारों पर बांटी जानी चाहिए वे आधार लगभग वही हैं जिनकी दसवें और ग्यारहवें वित्त आयोगों ने सिफारिश की थी लेकिन बारहवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित भार ठीक वही नहीं है जो दसवें और ग्यारहवें वित्त आयोगों ने तय किए थे। कर राजस्व की केन्द्र और राज्यों में विभाज्य धनराशि किस तरह राज्यों में विभाजित हो इसके लिए फार्मूला तय करते हुए बारहवें वित्त आयोग ने 'न्याय' और 'राजकोषीय कार्यकुशलता' के सिद्धान्तों के अपनाया। न्याय के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि राज्यों को विभाज्य कर राजस्व में उनका भाग इस तरह तय किया जाय कि उनकी साधनों की कमी को दूर किया जा सके और केन्द्र से कर राजस्व के अन्तरण के बाद उनकी राजकोषीय स्थिति लगभग एक जैसी ही हो जाए। राजकोषीय कार्यकुशलता को बारहवें वित्त आयोग ने कर प्रयास और वित्तीय अनुशासन के रूप में देखा है।

सारणी–12.7 केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए आधार

(प्रतिशत)

क्रम. संख्या	आधार	दसवां वित्त आयोग	ग्यारहवां वित्त आयोग	बारहवां वित्त आयोग
1.	जनसंख्या	20–0	10–0	25–0
2.	प्रतिव्यक्ति आय की दूरी	60–0	62–5	50–0
3.	क्षेत्रफल	5–0	7–5	10–0
4.	बुनियादी संरचना का सूचकांक	5–0	7–5	–
5.	कर प्रयास	10–0	5–0	7–5
6.	वित्तीय अनुशासन	0–0	7–5	7–5
	कुल	100–0	100–0	100–0

12.8 सहायक अनुदान (GRANT-IN-AID)

भारतीय संविधान की धाराएं 275 और 282 केन्द्र से राज्यों को सहायक अनुदानों के बारे में है। धारा 275 के अन्तर्गत उन राज्यों को अनुदान देने की व्यवस्था की गयी है जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो। इनकी मात्रा वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर तय की जाती है। धारा 282 के अन्तर्गत किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अनुदान दिया जा सकता है और उसकी राशि केन्द्र सरकार अपने निर्णय द्वारा तय कर सकती है। धारा 275 के अन्तर्गत राज्यों को अनुदान देने के लिए पहले वित्त आयोग ने मुख्य रूप से राज्यों की बजट सम्बन्धी आवश्यकताओं पर ही ध्यान दिया। दूसरे वित्त आयोग विकास की दृष्टि से राज्यों की आवश्यकताओं के अलावा चार सीमावर्ती राज्यों की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखकर अनुदान की राशियां निर्धारित की। तीसरे वित्त आयोग ने सिफारिश की थी कि कर अन्तरण को मिलाकर केन्द्र से राज्यों को अनुदान की राशि उनके गैर योजना राजस्व घाटे की पूरी तरह और योजना राजस्व घाटे के 75 प्रतिशत की व्यवस्था कर सकने की

स्थिति में होनी चाहिए। चौथे वित्त आयोग ने भी बजट सम्बन्धी घाटे को अनुदान का आधार बनाया जिसके वजह से बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों को कोई अनुदान नहीं मिला। पांचवे वित्त आयोग ने भी इसी आधार को अपनाकर तय किया कि बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र , पंजाब और उत्तर प्रदेश को छोड़कर अन्य राज्यों को अनुदान दिया जाय।

छठे वित्त आयोग ने अनुदान की राशि में भारी वृद्धि की। इसने प्रशासन का स्तर सुधारने के लिए 815.84 करोड़ रूपये के अनुदान देने की सिफारिश की। सातवें वित्त आयोग की राय में केवल आठ राज्यों में गैर योजना राजस्व घाटा होने का अनुमान था। इन राज्यों को 1173.12 करोड़ रूपये का अनुदान देने की सिफारिश की गयी। इसके अलावा गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पंजाब को छोड़कर अन्य सभी राज्यों को गैर विकास क्षेत्रों और सामान्य प्रशासन स्तर ऊँचा करने के लिए 436.79 करोड़ रूपये अनुदान देने का सुझाव दिया गया। आठवें वित्त आयोग ने राज्यों द्वारा दिये गये प्राप्तियों और व्ययों के अनुमानों पर विचार कर राजस्व घाटे की पूर्ति के लिए कुछ राज्यों को छोड़कर अन्य सभी राज्यों को 1690.93 करोड़ रूपये का अनुदान तथा प्रशासन का स्तर सुधारने के लिए 914. 55 करोड़ रूपये का अनुदान देने की सिफारिश की।

नौवें वित्त आयोग में राज्यों को अनुदान की राशियां उनकी राजकोषीय आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित की गयी। किसी राज्य की राजकोषीय आवश्यकता आदर्शात्मक ढंग निर्धारित राजस्व प्राप्तियों और गैर योजना व्यय में अन्तर के बराबर मानी गयी। नौवें वित्त आयोग ने योजना तथा गैर योजना राजस्व घाटे की पूर्ति के लिए 15017 करोड़ रूपये तथा आपातकालीन राहतकोष में केन्द्र के योगदान के रूप में 603 करोड़ रूपये का विशेष अनुदान की संस्तुति की। साथ ही आयोग ने भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों के लिए पुनर्वास एवं सहायता पर व्यय के लिए 122 करोड़ रूपये का अनुदान मध्य प्रदेश को स्वीकृत किया। दसवें वित्त आयोग ने गैर योजना राजस्व खातों पर राज्यों के घाटे का अनुमान लगाया था तथा 7582.68 करोड़ रूपये सहायक अनुदान की सिफारिश की। घाटे को पूरा करने के अनुदानों के अलावा दसवें वित्त आयोग ने केन्द्र से राज्यों को प्रशासन के स्तर में सुधार तथा विशिष्ट समस्याओं के लिए 2608.50 करोड़ रूपये विपत्ति सहायता के अधीन 4728.19 करोड़ रूपये तथा स्थानीय संस्थाओं को 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के अधीन दायित्वों को पूरा करने के लिए 5380.93 करोड़ रूपये अनुदान देने की सिफारिश की। ग्यारहवें वित्त आयोग ने प्रत्येक राज्य के राजस्व घाटे का अनुमान लगाने के लिए कर और गैर कर राजस्व में वृद्धि की प्रवृत्ति के साथ–साथ व्यय की प्रवृत्ति पर गौर किया। इसके अलावा केन्द्र सरकार के कर और गैर कर राजस्व सम्बन्धी अनुमान और राज्यों को वित्तीय अन्तरण पर भी विचार किया गया। तत्पश्चात् प्रत्येक राज्य के घाटे का अनुमान लगाने के लिए कर एवं गैर कर राजस्व और व्यय में वृद्धि की मानकी दरें सभी राज्यों के समान रूप से लागू की गयी। इस सिद्धान्त का पालन करते हुए ग्यारहवें वित्त आयोग ने 25 राज्यों में से 15 राज्यों को गैर योजना राजस्व राज्य घोषित किया

और इन राज्यों को संविधान की धारा 275(1) के अन्तर्गत 2000 से 2005 की अवधि के लिए 35,359 करोड़ रूपये गैर योजना राजस्व अनुदान की सिफारिश की। इस अनुदान की 85 प्रतिशत राशि को संबन्धित राज्यों को दिया जा सकता है। 2000–05 के दौरान 11,007.59 करोड़ रूपये की राशि के विपत्ति राहत कोष की योजना जारी की गयी। इस कोष में केन्द्र का अंशदान 8,225.69 करोड़ रूपये का और राज्यों का अंशदान 2,751.90 करोड़ रूपये का था। बारहवें वित्त आयोग ने पिछले सभी वित्त आयोगों की सिफारिशों की

तुलना में एक महत्वपूर्ण सिफारिश की। इस आयोग ने केन्द्र से राज्यों को अन्तरण में सहायता अनुदान का भाग बढ़ाकर लगभग 19 प्रतिशत कर दिया। बारहवें वित्त आयोग ने सहायता अनुदान में वृद्धि के लिए दो कारण बताए। एक तो अनुदान में निश्चितता अधिक होती है और दूसरे उनके द्वारा निर्धारित लक्ष्य को पाना आसान होता है। बारहवें वित्त आयोग ने सम्बन्धित काल में गैर योजना राजस्व घाटे को पूरा करने के लिए 15 राज्यों को 56,856 करोड़ रूपये के अनुदान की सिफारिश की यह राशि कुल अनुदान की लगभग 40 प्रतिशत है। बारहवें वित्त आयोग ने राज्यों में सड़कों और इमारतों के रख–रखाव के लिए 20,000 करोड़ रूपये के अतिरिक्त अनुदान की सिफारिश की बारहवें वित्त आयोग ने विपदा सहायता कोष सम्बन्धी योजना को चालू रखने का सुझाव दिया। यही नहीं इस आयोग ने भी पिछले वित्त आयोगों की तरह यह सिफारिश की कि इस योजना के लिए केन्द्र व राज्यों धन सम्बन्धी योगदान 75 और 25 प्रतिशत होना चाहिए।

12.9 तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें अवधि 2010–15 (THIRTEENTH FINANCE COMMISSION RECOMMENDATIONS PERIOD 2010-15)

13 नवम्बर 2007 को जारी विज्ञप्ति में तेरहवें वित्त आयोग को निम्न विषयों पर सिफारिशें देने को कहा गया–केन्द्र से राज्यों को कर राशि का अन्तरणीय राज्यों को सहायक अनुदान विभिन्न राज्यों के समेकित फंड में वृद्धि के उपाय ताकि पंचायतों एवं नगरपालिकाओं को उपलब्ध संसाधनों में वृद्धि हो सके। केन्द्र व राज्य सरकारों के वित्त आधारों की समीक्षा तथा न्यायोचित संवृद्धि से संगत, स्थायी व वहनीय राजकोषीय वातारण बनाने के लिए सुझाव। बाद में वित्त आयोग को कुछ अन्य विषयों पर भी सुझाव देने के लिए कहा गया जैसे राजकोषीय समायोजन के लिए पथ की समीक्षा राजकोषीय समेकन से प्राप्त लाभों को 2010 से 2015 के बीच की अवधि में बनाए रखने के लिए सुझाव जिनमें केन्द्र सरकार द्वारा जारी तेल खाद्य व उर्वरक बांडों को राजकोषीय लेखा–खाते में शामिल करने की आवश्यकता को ध्यान में रखा गया हो तथा केन्द्र सरकार की अन्य देयताओं का घाटे–संबंधित लक्ष्यों पर प्रभाव।

कर साधनों का विभाजन (DIVISION OF TAX RESOURCES)

तेरहवे वित्त आयोग ने इस बात की ओर ध्यान आकिर्षत किया है समयोपरि केन्द्र के कर राजस्व में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है खासतौर पर रायल्टी से दूरसंचार क्षेत्र से। भविष्य में गैर–राजस्व में संभावित वृद्धि देखते हुए कहा जा सकता है कि केन्द्र के संसाधनों में अधिक वृद्धि होगी। इसके अलाव, केन्द्रीय करों की प्रफुल्लता संयुक्त कर राजस्व की प्रफुल्लता से अधिक है। आगे आने वाले वर्षों में केन्द्र द्वारा लागू की गई कई योजनओं के कारण (जैसे सर्वशिक्षा अभियान, मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा सुविधा का अधिकार इत्यादि) भी राज्य सरकारों के खर्च में काफी वृद्धि होगी क्योंकि इन योजनाओं में राज्य सरकारों को भी केन्द्रीय संसाधनों के बराबर संसाधन खर्च करने होते हैं। ग्रामीण व शहरी आधारित संरचना की व्यवस्था, पर्यावरण की सुरक्षा, छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन इत्यादि के कारण भी राज्य सरकारों के व्यय में और ज्यादा वृद्धि अपेक्षित है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के करों में राज्य सरकारों का हिस्सा बढ़ाकर 32 प्रतिशत कर दिया है। केन्द्र सरकार के करों में राज्य सरकारों का हिस्सा तय करने के लिए तेरहवें वित्त आयोग ने सेवा कर को विभाज्य धनराशि का हिस्सा माना है।

परन्तु वित्त आयोग ने राज्य सरकारों की इस मांग को स्वीकार नहीं किया है कि केन्द्र द्वारा लगाये गये उपकर तथा अधिशुल्कों को विभाज्य धनराशि में शामिल किया जाय। पर साथ ही आयोग ने यह सुझाव भी दिया है कि केन्द्र अपने द्वारा लगाये जाने वाले अधिशुल्कों तथा उपकरों की समीक्षा करे तथा कुल कर राजस्व में उनके महत्व में कमी करने की चेष्टा करे। ग्यारहवें वित्त आयोग ने पहली बार यह सुझाव दिया था कि केन्द्र से राज्य सरकारों को होने वाले राजस्व खाते पर कुल अन्तरणों को केन्द्र सरकार की कुल कर प्राप्तियों का ज्यादा से ज्यादा 37.5 प्रतिशत तक रखा जाय। इस उच्चतम सीमा को बारहवें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 38.0 प्रतिशत कर दिया था। अब तेरहवें वित्त आयोग ने इस उच्चतम सीमा को 39.5 प्रतिशत का दिया है।

कर राजस्व में राज्यों का हिस्सा निश्चित करने के लिए आधार (BASIS FOR DETERMINING STATES' SHARE IN TAX REVENUE)

तेरहवें वित्त आयोग का मानना है कि कर राजस्व के आबंटन के उसके सुझाव *"आवश्यकता, राजकोषीय अभाव तथा बेहतर निष्पादन के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन के सिद्धान्तों पर आधारित है।''* आयोग द्वारा निर्धारित आधार और उनका परस्पर भाग सारणी–12.9 में दिया गया है।

सारणी–12.9 केन्द्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए तेरहवें वित्त आयोग द्वारा तय किये गये आधार

क्रम. संख्या	आधार	प्रतिशत
जनसंख्या (1971)		25.0
क्षेत्रफल		10.0
राजकोषीय क्षमता की दूरी		47.5
वित्तीय अनुशासन		17.5
कुल		100.0

राजकोषीय क्षमता की दूरी एक नया आधार है जिसे तेरहवें वित्त आयोग ने अपनाया है। किसी राज्य की 'राजकोषीय क्षमता की दूरी' ज्ञात करने के लिए उसके प्रति व्यक्ति राजस्व की हरियाणा के प्रति व्यक्ति राजस्व से दूरी ली गई है। इस प्रकार सभी राज्यों के लिए जो राजकोषीय दूरी प्राप्त हुई वह राजकोषीय आधार पर प्रत्येक राज्य के प्रति व्यक्ति राजस्व अधिकार का माप है। तेरहवें वित्त आयोग ने राजकोषीय क्षमता की दूरी के आधार को 47.5 प्रतिशत भार प्रदान किया है। तेरहवें वित्त आयोग की कर वितरण योजना के आधार पर बारहवें वित्त आयोग की तुलना में प्रत्येक राज्य के लिए अन्तरण के सकल राज्य घरेलू उत्पाद के साथ अनुपात में वृद्धि हुई है। इसलिए व्यक्तिगत तौर पर प्रत्येक राज्य को वित्त आयोग द्वारा किये गये प्रस्तावित कर वितरण से लाभ हुआ

सहायक अनुदान (GRANT IN AID) सहायक अनुदान वित्त आयोग द्वारा किये गये अन्तरणों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते है। सहायक अनुदानों का आकार विभिन्न वित्त आयोगों ने अलग–अलग निर्धारित किया है– कुल अन्तरणों में सहायक अनुदानों का हिस्सा कम से कम 7.7 प्रतिशत (सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित स्तर) से लेकर अधिकतम 26.1 प्रतिशत (छठे वित्त आयोग द्वारा निर्धारित स्तर) के बीच रहा है। बारहवें वित्त आयोग ने कुल अन्तरणों में सहायक अनुदान का हिस्सा 18.9 प्रतिशत तय किया था। तेरहवें वित्त आयोग ने सहायक अनुदान की राशि 3,18,581 करोड़ रूपये निर्धारित की है जो कुल अन्तरणों का 18.03 प्रतिशत है।

जहाँ तक विपत्ति राहत का सम्बन्ध है, तेरहवें वित्त आयोग ने राष्ट्रीय विपत्ति प्रत्युत्तर कोष तथा राज्य विपत्ति प्रत्युत्तर कोष के गठन का सुझाव दिया है। आयोग ने सुझाव दिया है कि पहले से काम कर रहे विपदा सहायता कोष को राज्य विपत्ति प्रत्युत्तर कोष में मिला दिया जाय। राज्य विपत्ति प्रत्युत्तर कोष में केन्द्र और राज्यों के बीच सहायक अनुदान का केन्द्र और सामान्य राज्यों के बीच आवंटन 75: 25 के अनुपात में तथा विशेष राज्यों के सन्दर्भ में 90: 10 के अनुपात में होगा। विपत्ति राहत के लिए कुल अनुदान 26373 करोड़ रूपये है। स्थानीय निकायों के लिए सहायक अनुदान की राशि 2010–15 की पूरी अवधि में 87,519 करोड़ रूपये रखी गयी है। आयोग ने धारणीय विकास के संगत पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन के प्रबन्धन की आवश्यकता के लिए 15,000 करोड़ रूपये की व्यवस्था की है।

राजकोषीय समेकन के लिए संशोधित लक्ष्य व मार्ग– तेरहवें वित्त आयोग ने राजकोषीय समेकन के लिए कई सुझाव दिये हैं। इनमें से कुछ मुख्य सुझाव निम्नलिखित है

केन्द्र सरकार का राजस्व घाटा लगातार इस प्रकार कम किया जाना चाहिए कि वह धीरे–धीरे समाप्त हो जाए तथा 2014–15 में राजस्व अतिरेक की स्थिति आ जाए।

केन्द्र और राज्य सरकारों का संयुक्त ऋण 2014–15 तक सकल घरेलू उत्पाद के 68.0 प्रतिशत तक कम किया जाए।

मध्यकालीन राजकोषीय योजना में संशोधन किया जाय ताकि यह केवल एक प्राप्ति योग्य लक्ष्य न रहकर प्रतिबद्धता का संकेतक हो। राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं प्रबन्ध अधिनियम (FRBM Act) में उन प्रघातों का स्पष्ट उल्लेख हो जिनके कारण FRBM लक्ष्यों में ढील देने की व्यवस्था हो। समष्टि आर्थिक प्रघातों की स्थिति में बजाय इसके की राज्यों की उधार लेने की सीमा में वृद्धि की जाय तथा उन्हें और उधार लेने की छूट दी जाए, केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह स्वयं उधार ले और फिर इसका वितरण राज्यों के बीच उस कर वितरण फार्मूले की मदद से करे जिसका सुझाव वित्त आयोग ने दिया हो। राज्यों को संसाधनों का कुल अन्तरण– 2010–15 की अवधि के लिए तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र से राज्यों को कुल 17,76,676 करोड़ रूपये के संसाधन अन्तरण की सिफारिश की है। इसमें करों व शुल्कों का हिस्सा 14,48,096 करोड़ रूपये तथा सहायक अनुदान का हिस्सा 3,18,581 करोड़ रूपये है।

12.10 स्व–मूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS FOR SELF ASSESSMENT)

एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए

(1) किस धारा के अन्तर्गत सरकार राज्यों को वित्त आयोगों की सिफारिश पर अनुदान देती है?
(2) वित्त आयोग की नियुक्ति संविधान की किस धारा के अन्तर्गत की जाती है?
(3) केन्द्र और राज्यों के बीच साधनों का विभाजन किसकी सिफारिश पर होता है?
(4) अब तक कितने वित्त आयोग बनाये जा चुके हैं?
(5) तेरहवें वित्त आयोग का गठन कब किया गया?
(6) तेरहवें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?
(7) किन करों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच होता है?
(8) बारहवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय वितरणीय करों में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर कितना कर दिया?

(9) केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए बारहवें वित्त आयोग ने सर्वाधिक भार किसे दिया?
(10) तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिश की अवधि क्या है?
(11) तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के करों में राज्य सरकारों का हिस्सा कितना कर दिया है?
(12) केन्द्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए तेरहवें वित्त आयोग ने किस एक नये आधार को अपनाया है?
(13) तेरहवें वित्त आयोग ने अपने अन्तरण फार्मूले में किस वर्ष की जनसंख्या को आधार माना है?
(14) राजकोषीय क्षमता की दूरी ज्ञात करने के लिए किस राज्य के प्रति व्यक्ति आय से दूरी ली गयी है?
(15) तेरहवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सहायक अनुदान की राशि कुल अन्तरणों का कितने प्रतिशत है?

12.11 सारांश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारत में केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों का बंटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर होता है। अब तक भारत में 13 वित्त आयोगों का गठन किया जा चुका है। तेरहवें वित्त आयोग के सिफारिश की अवधि 2010–15 है तथा इस आयोग के अध्यक्ष विजय केलकर हैं। आयोजन काल में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण में लगातार वृद्धि हुई है जिससे राज्यों की केन्द्र सरकार पर निर्भरता प्रकट होती है। सभी वित्त आयोगों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों व शुल्कों, रेल किरायों और भाड़ों पर करों से शुद्ध प्राप्तियों के आबंटन और राज्यों के बजट में घाटों को पूरा करने के लिए दिए जाने वाले अनुदानों के बारे में सिफारिशें की हैं। इस इकाई के अध्ययन से केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए दसवें, ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें वित्त आयोग द्वारा तय किये गये आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।

12.12 शब्दावली (GLOSSARY)

- **वित्त आयोग (FINANCE COMMISSION):** राज्यों को संसाधनों के बंटवारे हेतु संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत स्थापित आयोग
- **अन्तरण (TRANSFER):** हस्तान्तरण
- **उत्पाद शुल्क (EXCISE):** केन्द्र सरकार द्वारा वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाने वाला कर
- **प्रति व्यक्ति आय की दूरी (PER CAPITA INCOME DISTANCE):** सर्वोच्च प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य से प्रति व्यक्ति आय की दूरी कर प्रयास– किसी भी राज्य के प्रति व्यक्ति कर राजस्व से प्रति व्यक्ति आय का अनुपात

12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर– (1) धारा 275

(2) धारा 280
(3) वित्त आयोग
(4) 13
(5) 1 नवम्बर, 2007
(6) विजय केलकर
(7) आय कर एवं उत्पाद शुल्क
(8) 30.5 प्रतिशत
(9) प्रतिव्यक्ति आय की दूरी
(10) 2010–15
(11) 32 प्रतिशत
(12) राजकोषीय क्षमता की दूरी
(13) 1971
(14) हरियाणा
(15) 18.03 प्रतिशत।

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY AND USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- H.L. Bhatia: Centre-State Financial Relations in India
- B. Mishra : Economics of Public Finance
- R.N. Tripathi: Fiscal Policy and Economic Development in India
- R.N. Bhargava: Indian Public Finance
- S.K. Mishra & V.K. Puri: Indian Economy
- Rudra Dutt & K.P.M. Sundaram: Indian Economy
- Govt. of India: Report of the Various Finance Commissions

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारत में संविधान के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के वर्तमान वित्तीय सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए। क्या आप इसे सन्तोषजनक मानते हैं?
2. वर्तमान में भारत में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण प्रणाली का परीक्षण कीजिए।
3. वित्त आयोग द्वारा केन्द्र और राज्यों के राजस्व और व्यय के पूर्वानुमानों में मानकीकृत आधार अपनाने पर व्याख्यात्मक नोट लिखें। इन आधारों का प्रयोग कहाँ तक सार्थक कहा जा सकता है?
4. तेरहवें वित्त आयोग की मुख्य सिफारिशों पर प्रकाश डालिए।

इकाई–13 भारतीय मौद्रिक प्रणाली
(INDIAN MONETARY SYSTEM)

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 भारत में रजतमान (सन् 1835 से 1898 तक)
    13.3.1 भारत में रजतमान का पतन
    13.3.2 हर्शल समिति
13.4 भारत में स्वर्ण विनिमय मान
    13.4.1 फाउलर समिति
    13.4.2 चौम्बरलेन आयोग
    13.4.3 स्वर्ण विनिमय मान का खण्डन
13.5 हिल्टन यंग आयोग
13.6 भारत में कागजी मुद्रा प्रणाली
    13.6.1 प्रथम विश्व युद्ध तथा कागजी मुद्रा
    13.6.2 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा कागजी मुद्रा
13.7 स्वतन्त्रता के बाद भारतीय मुद्रा प्रणाली
13.8 भारत में मुद्रा पूर्ति की अवधारणा
13.9 तरलता समायोजन सुविधा
13.10 स्व–मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न
13.11 सारांश
13.12 शब्दावली
13.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
13.15 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय मौद्रिक प्रणाली में मुद्रा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे भारत में कोई प्रमाणिक सिक्का नहीं था। 1835 के पूर्व अंग्रजी भारत में अनेक प्रकार के स्वर्ण तथा रजत के सिक्के संचलनशील थे जिनके मध्य कोई निश्चित वैध अनुपात निर्धारित नहीं था। इससे देश में वाणिज्य तथा उद्योग को अनेक कठिनाईयों का अनुभव करना पड़ता था क्योंकि देश में उद्योग तथा विकास के लिए स्थिर मुद्रामान का होना अत्यावश्यक है।

13.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ स्वतन्त्रता के पूर्व तथा पश्चात् भारतीय मुद्रा चलन प्रणाली की विवेचना को समझ सकेंगे।
- ✓ भारतीय मुद्रा प्रणाली में वर्तमान मुद्रा पूर्ति की अवधारणा को समझ सकेंगे।

13.3 भारत में रजतमान (सन् 1835 से 1898 तक) (SILVER STANDARD IN INDIA (1835 TO 1898))

1835 में इस्ट इंडिया कम्पनी ने अंग्रेजी भारत में पूर्णतयः रजत मुद्रामान को स्थापित करने का प्रयास किया तथा 1835 के मुद्रा अधिनियम के अन्तर्गत भारत में रजत मान की स्थापना की। इस मान की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थी–

1. इस कानून के अन्तर्गत सरकार टकसालों में रूपये की ढलाई स्वतंत्र एवं अपरिमित हुआ करती थी।
2. चांदी के रूपये का वजन 180 ग्रेन था और इसकी शुद्धता 11/12 थी।
3. रूपये को असीमित विधि ग्राह्य करार दे दिया था।
4. सरकारी टकसालों में सोने के सिक्कों की ढलाई तो हो सकती थी परन्तु वे कानूनी ग्राह्य नहीं थे। सन् 1841 में लोगों की मांग पर सरकार ने लोगों की मुहरों को सरकारी भुगतानों के रूप में 15:1 के अनुपात में स्वीकार करना आरम्भ कर दिया था।

13.3.1 भारत में रजत मान का पतन (FALL OF SILVER STANDARD IN INDIA)

1871 तक भारत में रजत मान ठीक प्रकार प्रचलित रहा था। परन्तु 1871 के बाद चांदी के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य में गिरावट के कारण भारत सरकार को निम्नलिखित कारणों से काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था

भारत सरकार को प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड की सरकार को गृह व्यय के रूप काफी भुगतान करना पड़ता था। चांदी का स्वर्ण मूल्य कम हो जाने के कारण भुगतान करने के लिए अधिक मात्रा में चांदी का निर्यात करना आवश्यक हो गया था तथा इस कारण से सरकारी व्यय में काफी वृद्धि हो गयी थी। सरकारी व्यय में वृद्धि होने के हेतु घाटे की पूर्ति करने के लिए करों में वृद्धि करना आवश्यक हो गया था तथा जनता की आर्थिक कठिनाईयों में वृद्धि हो गयी थी। चांदी के बाजार मूल्य में निरन्तर कमी होते रहने के कारण रूपये की विदेशी

विनिमय दर में उच्चावचन होने लगे थे। विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन होने के कारण देश का विदेशी व्यापार अनिश्चित तथा अस्थिर हो गया था। इससे देश के निर्यात व्यापार को गहरी हानि हुई थी। उन यूरोपीय अधिकारियों ने जो अपने परिवारों को यूरोप में रूपया भेजते थे, रूपये की विदेशी विनिमय दर में कमी होने के कारण होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करने की भारत सरकार से मांग की थी। रूपये की विदेशी विनिमय दर गिरने तथा अनिश्चित हो जाने के कारण देश में विदेशी पूँजी का आयात कम हो गया था।
भारत सरकार को अंग्रेज अधिकारियों की सेवाओं को प्राप्त करना कठिन हो गया था क्योंकि भारतीय रूपये की स्टर्लिंग मूल्य में कमी हो जाने के कारण उनको भारतीय मुद्रा में अधिक वेतन देना आवश्यक हो गया था।

13.3.2 हर्शल समिति (HERSCHEL COMMITTEE)

1892 ई0 में ब्रुसेल्स में हुए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन की असफलता के पश्चात् सरकार ने लार्ड हर्शल की अध्यक्षता में एक समिति देश की मुद्रा प्रणाली तथा विनिमय स्थिति पर विशेष रूप से सरकारी टकसालों में चांदी की मुक्त सिक्का ढलाई को समाप्त करने के प्रश्न पर विचार करके सरकार को सुझाव देने के उद्देश्य से नियुक्त की। सरकार द्वारा हर्शल समिति को भारतीय मुद्रा प्रणाली सम्बन्धी निम्नलिखित तीन समस्याओं पर अपने सुझाव देने को कहा गया था।
चांदी के स्वर्ण मूल्य में कमी होने के कारण भारत सरकार की वित्तीय कठिनाईयों को किस प्रकार समाप्त किया जाना चाहिए?
रूपये की विदेशी विनिमय दर में कमी होने के कारण देश में वाणिज्य को होने वाली हानि को रोकने के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिए?
भारतीय रूपये की विदेशी विनिमय दर गिरने से भारत में रहने वाले अंग्रेज अधिकारियों की कठिनाईयों के प्रश्न पर सुझाव देना।
हर्शल समिति ने उपरोक्त तीनों समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् सरकार को निम्नलिखित सुझाव दिये थे
देश में सरकारी टकसालों में रजत तथा स्वर्ण की मुक्त सिक्का ढलाई समाप्त की जानी चाहिए। परन्तु सरकार को जनता की मांग पर स्वर्ण के बदले में 1 शिलिंग 4 पेंस की दर पर रूपयों के मुद्रण करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। सरकारी टकसालों में चांदी की खुली सिक्का ढलाई को समाप्त करने का उद्देश्य रूपयों की पूर्ति को सीमित करना तथा रूपये के विनिमय मूल्य में गिरावट को रोकना था। देश में चांदी का रूपया वैध मुद्रा होनी चाहिए।
भारत सरकार ने हर्शल समिति के सुझावों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से 1893 में नया मुद्रा अधिनियम बनाया था। 1893 के मुद्रा अधिनियम के अनुसार यद्यपि सरकारी टकसालों में जनता के लिए चांदी की मुक्त खुली सिक्का ढलाई समाप्त कर दी गई थी परन्तु सरकार को अपनी आवश्यकता के लिए रूपयों को मुद्रण करने का अधिकार प्राप्त था। इस समय सरकार ने तीन विज्ञप्तियां भी जारी की थीं। प्रथम विज्ञप्ति के अनुसार सरकार की स्वर्ण के सिक्कों अथवा स्वर्ण के बदले में 16 पेंस प्रति रूपये की दर चांदी के रूपये देने की जिम्मेदारी थी। दूसरी विज्ञप्ति के अनुसार सार्वजनिक ऋण का भुगतान स्वर्ण की मोहरों के द्वारा 16 पैसे प्रति रूपये की दर से किया जा सकता था। तीसरी विज्ञप्ति के अनुसार 16 पेंस प्रति रूपये की दर पर स्वर्ण के बदले में कागजी मुद्रा कार्यालय के द्वारा कागजी मुद्रा का प्रचालन किया जा सकता था।

1893 के मुद्रा अधिनियम तथा विज्ञप्तियों का प्रमुख उद्देश्य देश में रूपये की पूर्ति को सीमित रख कर इसके पौंड–स्टर्लिंग मूल्य को 16 पैसे पर स्थिर रखना था तथा इसके पश्चात् देश में स्वर्ण मान को अपनाया था। उपरोक्त उपयों के निम्नलिखित चार उद्देश्य थे–

1. रूपये के विनिमय मूल्य को गिरने से रोकना तथा इसे उपर उठाना।
2. देश में विदेशी पूँजी के आयात को प्रोत्साहित करना।
3. देश में जनता को स्वर्ण मुद्रा से परिचित कराना।
4. चांदी के आयात को हतोत्साहित करना।

उपरोक्त सभी उपाय संक्रमिक थे तथा इन उपायों को अपनाने का मुख्य उद्देश्य देश में कुछ समय पश्चात् स्वर्ण मान को अपनाना था।

13.4 भारत में स्वर्ण मान (GOLD STANDARD IN INDIA)

यद्यपि 1890 में रूपये की विनिमय दर 1 सिलिंग 4 पैसे निश्चित की गयी थी, परन्तु कुछ कारणों से यह दर स्थाई न रह सकी। 1894 में भारत की विनिमय दर में गिरावट आनी शुरू हो गयी और घटते–घटते 1 शिलिंग 1 पैसे पर पहुंच गयी। रूपये की विनिमय दर को बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने मुद्रा–अवस्फीति की नीति को अपनाया था। इसके परिणामस्वरूप भारत के व्यापारियों को बहुत असुविधा हुई और उन्होंने सरकार को मुद्रा व्यवस्था में सुधार करने के लिए सुझाव दिया।

परिणामतः भारत सरकार ने देश में स्वर्ण मान की स्थापना तथा विनिमय की दर को स्थिर रखने के लिए ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की।

13.4.1 फाउलर समिति (FOWLER COMMITTEE)

अप्रैल 1898 में सर हैनरी फाउलर की अध्यक्षता में समूची मुद्रा प्रणाली का अध्ययन करने तथा उसमें सुधार हेतु एक कमेटी नियुक्त की गयी। फाउलर समिति की मुख्य सिफारिशें निम्न थीं

यद्यपि स्वर्ण मोहर देश में असीमित वैध मुद्रा होनी चाहिए परन्तु इसके साथ–साथ रजत का रूपया भी असीमित वैध मुद्रा होना चाहिए। सरकार को देश में स्वर्ण मोहरों तथा अर्द्ध–मोहरों का मुद्रण करने के लिए टकसाल स्थापित करनी चाहिए। चांदी के रूपये का मुद्रण उस समय तक नहीं होना चाहिए जबतक संचलनशील कुल मुद्रा की मात्रा काफी अधिक न हो जावे। लंदन में एक स्वर्णमान रक्षित कोष स्थापित किया जाना चाहिए। सरकार को चांदी के रूपयों तथा कागजी मुद्रा के बदले में स्वर्ण को खरीदना चाहिए परन्तु उस समय तक जब तक कि सरकार को काफी कोष प्राप्त नहीं हो जाता है। कागजी मुद्रा तथा चांदी के रूपयों का स्वर्ण में विमोचन नहीं करना चाहिए। रूपये का पौंड–स्टर्लिंग मूल्य 1 शिलिंग 4 पेंस निर्धारित होना चाहिए। सरकार ने समिति की उपरोक्त सिफारिशों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से उपयुक्त कानून बनाया था। दुर्भाग्यवश अंग्रेज सरकार के देश में स्वर्ण सिक्कों का मुद्रण करने के लिए अलग टकसाल स्थापित करने के विरोध में होने के कारण तथा भारतीय जनता के स्वर्ण सिक्कों के प्रति उदासीन होने के कारण इन सिफारिशों को व्यावहारिक रूप प्रदान नहीं किया जा सका तथा भारत सरकार को इन आकस्मिक कठिनाइयों के कारण बड़ी निराशा हुई थी। देश के विदेशी व्यापार को स्थिर करने तथा गृह व्यय के भुगतान की समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से भारत सरकार रूपये की विनिमय दर को 1 शिलिंग 4 पेंस पर स्थिर करने के लिए अति इच्छुक थी।

परिणामस्वरूप भारत में स्वर्ण विनिमय मान को अपनाया गया था। 1893 से लेकर 1898 तक का भारतीय मुद्रा का इतिहास केवल इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि अनेक असफल प्रयोगों के द्वारा भारत सरकार अन्ततः देश में स्वर्ण विनिमय मान को अपनाने में सफल हो गयी थी।

13.4.2 चेम्बरलेन आयोग (CHAMBERLAIN COMMISSION)

चेम्बरलेन आयोग की नियुक्ति **अप्रैल 1914 में सर जोसेफ ऑस्टन चेम्बरलेन** की अध्यक्षता में की गयी थी। आयोग रूपये की विनिमय दर को स्थिर रखने की रीतियों की जांच करने तथा सरकार को यह बताने के लिए प्रचलित मुद्रा मान देश के हित में था अथवा नहीं, नियुक्त किया गया था। देश में स्वर्ण विनिमय मान को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुशल मुद्रा प्राधिकरण का होना अत्यन्त आवश्यक था। भारत में जो सरकारी अधिकारी इस मुद्रा मान का प्रबन्ध करते थे उनको बाजार तथा व्यापार के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं था। यदि रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कुछ समय पहले हो गयी होती तो भारत में स्वर्ण विनिमय मान का अधिक परीक्षण किया जा सकता था। परन्तु यह होते हुए भी सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स ने, जो चेम्बरलेन आयोग के सदस्य थे, 1914 में इस मुद्रा मान की प्रशंसा की थी बीसवीं शताब्दी के काल में राष्ट्रसंघ के आर्थिक आयोग ने भी छोटे देशों से स्वर्ण विनिमय मान को अपनाने की सिफारिश की थी।

13.4.3 स्वर्ण मान का खण्डन (REBUTTAL OF GOLD STANDARD)

भारत में यद्यपि स्वर्ण विनिमय मान 1900 से लेकर 1917 तक विद्यमान रहा था परन्तु 1917 के मध्य में इसका परित्याग कर दिया गया था। भारत में स्वर्ण विनिमय मान की सफलता भारतीय रूपये की संकेतिक विशेषता तथा 1 शिलिंग 4 पेंस की विनिमय दर स्थिरता पर निर्भर थी। प्रथम महायुद्ध की अवधि में भारत को अत्यधिक अनुकूल भुगतान शेष का अनुभव होने के कारण अधिक मात्रा में रूपयों को मुद्रण करने की आवश्यकता थी। परन्तु इसी काल में चांदी की अधिक मांग होने के कारण चांदी की कीमत बढ़ गयी थी।चांदी की कीमत में वृद्धि होने के कारण रूपये का वास्तविक मूल्य इसके वैधानिक मूल्य से अधिक हो गया था तथा लोगों ने रूपये को पिघलाकर धातु प्राप्त करना आरम्भ कर दिया था। ऐसी स्थिति में सरकार ने यह अनुभव किया था कि 1 शिलिंग 4 पेंस की विनिमय दर पर कौंसिल पत्रों का बेंचना सम्भव नहीं था फलस्वरूप सरकार को अगस्त 1917 में रूपये की विनिमय दर में वृद्धि करनी पड़ी तथा विनिमय दर को 1 शिलिंग 4 पेंस से बढ़ाकर 1 शिलिंग 5 पेंस कर दिया गया था।

चांदी के मूल्य में वृद्धि होने तथा रूपये का वास्तविक मूल्य अधिक होने के साथ–साथ इसके स्टर्लिंग मूल्य में भी वृद्धि होती गयी थी तथा 1920 के आरम्भ में यह बढ़कर 2 शिलिंग 10 1/2 पेंस हो गया था। रूपये की स्टर्लिंग विनिमय दर अस्थिर होने पर देश में स्वर्ण विनिमय मान का खण्डन हो गया। स्वर्ण विनिमय मान के खण्डन होने तथा तत्पश्चात् विनिमय दर के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण देश के वाणिज्य तथा उद्योग को बहुत बड़ा धक्का लगा था तथा भारतीय मुद्रा का धातु रक्षित कोष जो 1914 में कुल मुद्रा का 79 प्रतिशत था 1919 में घटकर 50 प्रतिशत रह गया था।

13.5 हिल्टन यंग आयोग (HILTON YOUNG COMMISSION)

25 अगस्त 1925 को भारत सरकार ने **लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिल्टन यंग** की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की, जिसके कुल 11 सदस्य थे, जिनमें चार भारतीय थे। इस कमीशन को मुख्य रूप से तीन बातों से सम्बन्धित सुझाव देने थे

1. देश के लिए एक उपयुक्त मुद्रा प्रणाली के सम्बन्ध में
2. विनिमय दर की स्थिरता के सम्बन्ध में
3. देश में केन्द्रीय बैंक स्थापित करने के विषय में हिल्टन यंग आयोग ने अपनी रिपोर्ट जुलाई 1925 में पेश की इसकी सिफारिशों का देश की मुद्रा विनिमय तथा बैंकिग व्यवस्था के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

आयोग के मुख्य सिफारिशे निम्न थे

1. देश में स्वर्ण धातुमान अपनाया जाए ।
2. रूपये की विनिमय दर 1 शिलिंग 6 पेंस रखी जाए।
3. देश में एक केन्द्रीय बैंक–रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया– की स्थापना की जाए।

सरकार ने हिल्टन यंग आयोग के सभी सिफारिशे स्वीकार कर ली थी परन्तु व्यावहारिक रूप में यह कहना कठिन है भारतीय मुद्रा प्रणाली का विकास पूर्णतया हिल्टन आयोग के सुझावों के अनुसार हुआ। आयोग ने स्वर्ण धातुमान का सुझाव रूपये का स्वर्ण के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से दिया था। परन्तु व्यवहार में सरकार ने रूपये का सम्बन्ध सोने के अतिरिक्त स्टर्लिंग से भी रखा। इस प्रकार भारत में स्थापित स्वर्ण धातुमान तथा स्टर्लिग विनिमय मान का मिला जुला रूप मुद्रा मान था। रूपये के मूल्य पर स्टर्लिंग के मूल्य में परिवर्तनों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। रूपये को स्टर्लिग अथवा स्वर्ण में बदलना सरकार की इच्छा पर निर्भर था। व्यवहार में रूपया स्टर्लिंग में ही परिवर्तनीय था और स्टर्लिंग स्वर्ण पर आधारित होने के कारण रूपया परोक्ष रूप में स्वर्ण में परिवर्तनशील था। 1931 में ब्रिटेन द्वारा स्वर्ण मान का परित्याग कर देने पर भारत में स्टर्लिग विनिमय मान प्रत्यक्ष रूप में अपना लिया गया। इस प्रकार नाम मात्र का स्वर्णधातु मान भी चार वर्ष बाद ही समाप्त कर देना पड़ा।

18 पेंस की विनिमय दर, जिसे सरकार आयोग के सुझाव पर अपनाया, रूपये की स्वाभाविक दर नहीं कही जा सकती, क्योंकि इसने देश में गम्भीर वाद–विवाद को जन्म दिया और केवल सरकार के सहारे यह दर टिक सकी।

आयोग के रिजर्व बैंक की स्थापना सम्बन्धी सुझाव को अवश्य सफलता मिली, परन्तु इस सुझाव को भी 1935 में ही कार्यान्वित किया जा सका।

यह बात अवश्य सत्य है कि हिल्टन यंग कमीशन की सिफारिशें तथा उनसे सम्बन्धित विवादों में भारतीय मुद्रा के इतिहास को काफी विषय सामग्री प्रदान की है, परन्तु यह कहना कठिन है कि भारतीय मुद्रा प्रणाली का विकास आयोग के वास्तविक उद्देश्यों के अनुसार ही हुआ।

13.6 भारत में कागजी मुद्रा प्रणाली (PAPER CURRENCY SYSTEM IN INDIA)

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1861 में कागजी मुद्रा जारी करने का कार्य बम्बई, मद्रास तथा बंगाल के प्रेसीडेंसी बैंकों तथा कुछ अन्य बैंकों को सौंपा था। 1861 में भारत में कागजी मुद्रा अधिनियम, 1861 पारित किया गया था और सरकार ने नोट निर्गमन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया था। उस समय नोट निर्गमन का 'मुद्रा सिद्धान्त' लागू किया गया था। इस सिद्धान्त के अनुसार जितने मूल्य के नोट सरकार छापेगी उतने मूल्य

के सोना चांदी को कोष में रखना अनिवार्य कर दिया गया था। केवल 4 करोड़ रूपये के नोटों के पीछे आड़ के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों को रखने की प्रथा थी। इसमें भी समय–समय पर परिवर्तन किये गये थे। 1890 में 10 करोड़ रूपये की सरकारी प्रतिभूतियां रखने की प्रथा थी। 1903 में 5 रूपये के नोट, 1910 में 10 रूपये तथा 20 रूपये के नोट तथा 1911 में 100 का नोट निर्गमित किया गया। इन नोटों को सर्वमान्य वैध मुद्रा घोषित किया गया था।

13.6.1 प्रथम विश्व युद्ध तथा कागजी मुद्रा (WORLD WAR I AND PAPER CURRENCY)

प्रथम विश्व युद्ध के समय जनता का विश्वास कागजी मुद्रा में कम होने लगा था क्योंकि एक ओर तो लोग मुद्रा को चांदी में परिवर्तित करने की मांग कर रहे थे तथा दूसरी और युद्धकाल में व्यापारिक गतिशीलता बढ़ जाने से भी मुद्रा मांग बढ़ रही थी। सरकार मुद्रा की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करने में असमर्थता प्रकट कर रही थी। परन्तु सरकार ने आड़ के रूप में चांदी रखने की परवाह नहीं की थी और कागजी नोटों की पूर्ति बढ़ा दी थी। सितम्बर 1919 सरकारी प्रतिभूतियों की आड़ के आधार पर नोटों को निर्गमित करने की सीमा बढ़ाकर 120 करोड़ रूपये कर दी थी।

13.6.2 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा कागजी मुद्रा (RESERVE BANK OF INDIA AND PAPER CURRENCY)

देश में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना का सुझाव हिल्टन यंग आयोग ने दिया था। 1931 में बैंकिंग जांच समिति ने रिजर्व बैंक की स्थापना पर पुनः जोर दिया था। 6 अगस्त,1934 को भारतीय विधान सभा में पारित प्रस्ताव के अनुसार 1 अप्रैल 1935 को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई थी। इस बैंक की स्थापना से इसे कागजी मुद्रा का निर्गमन करने का अधिकार प्राप्त हो गया था। देश में साख मुद्रा एवं मुद्रा के नियन्त्रण का अधिकार भी इस बैंक को सौपा गया था।

13.7 स्वतंत्रता के बाद भारतीय मुद्रा प्रणाली (INDIAN CURRENCY SYSTEM AFTER INDEPENDENCE)

1. न्यूनतम आरक्षण प्रणाली (MINIMUM RESERVE SYSTEM): देश की मुद्रा प्रणाली के अध्ययन में नोट प्रचालन पद्धति के अध्ययन का भी महत्व है। एक रूपये के नोट को छोड़कर अन्य सभी मूल्यांक के नोटों का प्रचलन रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा किया जाता है। इन नोटो का भुगतान भारत सरकार द्वारा प्रत्याभूत होता है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का प्रचालन विभाग मुद्रा अधिनियम के अनुसार उचित रक्षित कोष के आधार पर देश में कागजी मुद्रा का प्रचालन करता है। मुद्रा अधिनियम के अनुसार रिजर्व बैंक के नोटों के प्रचालन के पीछे 40 प्रतिशत एवं विदेशी ऋणपत्रों तथा शेष 60 प्रतिशत रूपया ऋणपत्रों को आड़ के रूप में रखना पड़ता था। दूसरे शब्दों में देश की मुद्रा प्रणाली, आनुपातिक निधि प्रणाली पर आधारित थी।अक्टूबर 1956 तथा 1957 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये गए थे तथा आनुपातिक निधि प्रचालन को समाप्त करके इसके स्थान पर न्यूनतम निधि प्रणाली को अपनाया गया था। नोट प्रणाली की न्यूनतम निधि प्रणाली के अन्तर्गत निधि की मात्रा **200 करोड़ रूपये** निर्धारित की गयी

है। इसमें **115 करोड़ रूपये की स्वर्ण निधि** तथा शेष **85 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियां** होनी चाहिए। वर्तमान में देश में यही प्रणाली प्रचलित है।

2. रूपया तथा स्टर्लिंग (RUPEES AND STERLING): भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता प्राप्त कर ली है। 1947 में भारत की मुद्रा रूपये का स्वर्ण मूल्य 0. 268601 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण घोषित किया गया था। भारत का रूपया अब स्वतंत्र मुद्रा बन गया है। **25 सितम्बर 1975** को भारत सरकार ने रूपये का **पौंड–स्टर्लिंग से सम्बन्ध विच्छेद** करके रूपये को स्वतंत्र मुद्रा घोषित कर दिया था। देश में वर्तमान मुद्रा प्रणाली का प्रबन्धन रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा किया जाता है। वर्तमान में रिजर्व बैंक का देश के मुद्रा बाजार पर पूर्ण नियन्त्रण है। वर्तमान मुद्रा प्रणाली अपरिवर्तनशील कागजी मुद्रा प्रणाली पर आधारित है।

3. दशमिक प्रणाली का प्रारम्भ (INITIALIZATION OF DECIMAL SYSTEM): भारतीय मुद्रा प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि भारतीय मुद्रण (संशोधन) अधिनियम, 1957 के अनुसार **31 अप्रैल, 1957** से देश में मुद्रण की दशमलवीय प्रणाली में लागू कर दिया गया है। इस प्रणाली के लागू हो जाने से पुराने पैसे, अर्द्धआना, एक आना, दो आने, चार आने तथा आठ आने के सिक्कों के स्थान पर एक, दो, पांच, दस, बीस, पच्चीस तथा पचास पैसे के सिक्के लागू किए गए। नए मुद्रा प्रणाली में पचास तथा पचीस पैसे के सिक्के को छोड़कर अन्य सिक्कों को समाप्त कर दिया गया है। इस प्रणाली को अपनाने के कारण हिसाबकिताब करना काफी सरल हो गया है।

4. रूपये का अवमूल्यन (DEVALUATION OF RUPEES): 1949 में इंग्लैण्ड के भुगतान शेष घाटे की स्थिति काफी खराब हो गयी थी। विवश होकर इंग्लैण्ड ने अपनी मुद्रा पौंड–स्टर्लिंग का अवमूल्यन 18 सितम्बर 1949 को इसका डालर मूल्य 30.5 प्रतिशत कर दिया था। भारत के रूपये का गठबंधन इंग्लैण्ड की मुद्रा पौंड–स्टर्लिंग के साथ था इसलिए इंग्लैण्ड की इस कार्यवाही के तुरन्त बाद भारत ने 24 घंटे के अन्दर 19 सितम्बर 1949 को रूपये मूल्य विदेशी मुद्रा में 30.5 प्रतिशत कम करने की घोषणा की थी। मुद्रा अवमूल्यन के पश्चात् भारतीय रूपये डालर मूल्य 30.225 सेन्ट से घटकर 21 सेन्ट हो गया था। 6 जून 1966 को दुबारा रूपये का अवमूल्यन किया गया था और रूपये के वाह्य मूल्य 36.5 प्रतिशत कम कर दिया गया था। 1966 में रूपये के अवमूल्यन के बाद अमेरिकी डालर तथा रूपये की विनिमय दर 1 रूपया =13.33 सेन्ट हो गयी थी। वर्ष 1991 में भारत सरकार ने रूपये के मूल्य में दो चरणों में अवमूल्यन की घोषणा की जिससे रूपये की औसत विनिमय दर 22.8 प्रतिशत गिर गयी। भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा विनिमय दर की इस कमी को अवमूल्यन न कहकर विनिमय दर समायोजन की संज्ञा दी गयी।

5. बड़े नोटों का विमुद्रीकरण (DEMONETIZATION OF BIG NOTES): सट्टेबाजी, काले धन तथा भ्रष्टाचार को रोकने की दृष्टि से 500, 1000 तथा 10000 रूपये के नोटों का विमुद्रीकरण कर दिया गया था परन्तु कुछ समय बाद सरकार ने बड़े नोटों का चलन पुनः प्रारम्भ कर दिया था। 16 जनवरी, 1978 को एक सरकारी अध्यादेश के द्वारा भारत सरकार ने 1000, 5000, तथा 10000 रूपये नोटों का विमुद्रीकरण कर दिया था। यह निर्णय अर्थव्यवस्था में बढ़ती हुई प्रवृत्ति तथा गैर कानूनी सौदों पर अंकुश लगाने की दृष्टि से किया गया था।

6. रूपये तथा पौंड–स्टर्लिंग का सम्बन्ध विच्छेद (RUPEE-POUND-STERLING SEVERANCE OF RELATIIONS): भारत सरकार ने **1973** में अमेरिका द्वारा मुद्रा

डालर का दोबारा अवमूल्यन कर दिये जाने के कारण रूपये को विदेशी विनिमय बाजार में तैरते हुए अपनी मुद्रा को अन्य देशों से विनिमय दर तय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया। 1 पौंड–स्टर्लिंग की 18.9677 रूपये विनिमय दर तय कर दी गयी थी। यह दर स्मिथसोनियन समझौते के अन्तर्गत निर्धारित की गयी थी। इस दर में 2.25 प्रतिशत तक ऊपर–नीचे होने की छूट दी गयी थी। भारत सरकार ने रूपये का पौंड–स्टर्लिंग से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया को यह अधिकार दिया गया था कि रूपये की विनिमय दर को विदेशी मुद्राओं की टोकरी से जोड़ दिया जाय।

13.8 भारत में मुद्रा पूर्ति की अवधारणा (CONCEPT OF CURRENCY SUPPLY IN INDIA)

1. प्रथम एवं द्वितीय कार्यकारी समूह एवं मुद्रा पूर्ति की अवधारणा–(THE CONCEPT OF FIRST AND SECOND WORKING GROUP AND CURRENCY SUPPLY)

रिजर्व बैंक ने पहली बार मुद्रा की पर्ति की अवधारणा पर विचार करने के लिए **1961 में एक कार्यकारी समूह गठित** किया जिसने अपनी **रिपोर्ट 1964** में दी। रिजर्व बैंक द्वारा **दूसरा कार्यकारी समूह 1977** में गठित किया गया जिसने के अंश के आधार पर निम्नांकित चार माप प्रस्तुत किये तथा जिसे उसी रूप में रिजर्व बैंक ने स्वीकार किया तथा इसे उसी रूप में अब भी प्रदर्शित करता है

M_1 = (i) लोगों के पास करेंसी जिसमें रिजर्व बैंक चलन में पत्र मुद्रा, रूपये तथा छोटे सिक्के तथा बैंको के पास हाथ में नगदी सम्मिलित करता है।
(ii) सभी व्यापारिक तथा सहकारी बैंको के पास मांग जमाएं तथा
(iii) रिजर्व बैंक के पास अन्य जमाएं

M_2 = (i) M_1 तथा
(ii) पोस्ट आफिस में सेविंग बैंक या बचत बैंक जमाएं

M_3 = (i) M_1 तथा
(ii) बैंको तथा सहकारी बैंको की समय जमाएं

M_4 = (i) M_3 तथा
(ii) पोस्ट आफिस की कुल जमाएं जिसमें राष्ट्रीय बचत पत्र, किसान विकास पत्र, इन्दिरा विकास पत्र, पी0 पी0 एफ0 आदि नहीं सम्मिलित।

2. वाई0 वी0 रेड्डी कमेटी (तीसरा कार्यकारी समूह) तथा पूर्ति की अवधारणा–(Y. V. REDDY COMMITTEE (THIRD WORKING GROUP) AND CONCEPT OF SUPPLY)

1992 के बाद वित्तीय क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के सन्दर्भ में तथा मौद्रिक समुच्चयों पर पड़ने वाले प्रभावों की ब्याख्या के लिए **वाई0 वी0 रेड्डी** की अध्यक्षता में एक कमेटी **1997** में गठित की गयी जिसने अपनी रिपोर्ट जून 13, 1998 को दे दी। रिजर्व बैंक ने कमेटी की सिफारिशों तथा सुझावों को मान लिया। कमेटी की प्रमुख संस्तुतियां इस प्रकार है

1. कमेटी ने यह सुझाव दिया कि मौद्रिक समुच्चयों को फिर से परिभाषित किया जाना चाहिए, कुछ को साप्ताहिक रूप में तथा कुछ समुच्चयों को पाक्षिक स्तर पर तैयार किया जाना चाहिए।

2. कमेटी ने सुझाव दिया कि डाकघर बचत बैंक को समुच्चय M_2 से निकाल दिया जाना चाहिए। इसे नये नगदी निधि तरलता समुच्चय L_1 में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

3. कमेटी ने चार नये मौद्रिक समुच्चयों की चर्चा की है– M_o, M_1, M_2 तथा M_3 तथा तीन सर्वथा नये नकदी निधि समुच्चयों– L_1 , L_2 तथा L_3 की चर्चा की है। मौद्रिक तथा नकदी समुच्चय इस प्रकार है

मौद्रिक समुच्चय (MONETARY SET)

M_o = चलन में मुद्रा + बैंको का RBI के पास जमा + RBI के पास अन्य जमा

M_o = Currency with the public + Banks deposited with RBI+ Other deposits with RBI

समिति के अनुसार M_o को साप्ताहिक स्तर पर तैयार किया जाएगा। M_o को समिति ने आधार मुद्रा या प्रारक्षित मुद्रा कहा।

M_1 = जनता के साथ चलन + बैंकिंग क्षेत्र में जमा + RBI के साथ अन्य जमा
= जनता के साथ चलन + बैंकिंग क्षेत्र के पास चालू जमा + बैंकों के पास बचत बैंक जमा का वह भाग जो मांग दायित्व हों + RBI के पास अन्य जमा

M_1 = Currency with the public+ Deposit in banking sector+ Other deposits with RBI
= Currency with the public+ Current deposit with banking sector+ That portion of savings bank deposits with banks which are demand obligations+ Other deposits with RBI

M_2 = M_1 + बैंकिंग क्षेत्र के पास बचत बैंक जमा का वह भाग जो समय दायित्व हो + बैंको द्वारा निर्गत जमा प्रमाण पत्र + बैंकिंग प्रणाली में एक वर्ष तक और एक वर्ष अवधि सहित संविदात्मक परिपक्वता वाली सावधिक जमा राशियां
= जनता के पास करेंसी + बैंकिंग क्षेत्र में चालू जमा + बैंकिंग क्षेत्र का सम्पूर्ण बचत बैंक जमा + बैंकिंग प्रणाली में एक वर्ष तक और एक वर्ष अवधि सहित संविदात्मक परिपक्वता वाली सावधिक जमा राशियां

M_2 = M_1 + The portion of the savings bank deposit with the banking sector that is time bound + Deposit certificate issued by banks+ Term deposits with contractual maturity up to one year and one year in banking system
= Currency with the public + Current deposits in banking sector+ Total savings bank deposits of banking sector + Term deposits with contractual maturity up to one year and one year in banking system

M_3 = M_2 + बैंकिंग प्रणाली द्वारा गैर निक्षेपी वित्तीय निगमें मांगे गये उधार

M_3 = M_2 + Lending demanded by banking system in non-depository financial corporation

कमेटी ने एक नये वित्तीय समुच्चय का सुझाव दिया जिसे उन्होंने 'तरलता समुच्चय' कहा। तरलता समुच्चय के अन्तर्गत उन वित्तीय व्यवहारों को रखेंगे जो बैंक जमा के समान ही लगते हैं पर जिन्हें मौद्रिक सम्पत्ति के समकक्ष रखना उचित नहीं होगा क्योंकि इससे सम्बन्धित वित्तीय संस्थाएं बैंक के समान नहीं होती हैं वित्तीय संस्थाएं वास्तव में गैर मौद्रिक वित्तीय मध्यस्थ होती है जो बैंक की तरह साख सृजन नहीं कर सकती हैं। जहां बैंकों की

अधिकांश सम्पत्तियां अल्पकालीन होती है वहीं इन वित्तीय संस्थाओं की सम्पत्तियां अधिकांशतया दीर्घकालीन होती है। बैंकिंग तथा गैर मौद्रिक वित्तीय संस्थाओं के बीच अन्तर के कारण समिति ने मौद्रिक समुच्चयों से अलग तरलता समुच्चय की बात कही, जो इस प्रकार होगी

तरलता समुच्चय (LIQUIDITY SET)

L_1 = M_3 (नई) + पोस्ट आफिस बचत बैंक जमा का सम्पूर्ण भाग (राष्ट्रीय बचत पत्र को छोड़कर)

L_1 = M_3 (NEW) + Full part of Post Office Savings Bank Deposit (excluding National Savings Letter)

L_2 = L_1 + विकास वित्तीय संस्थाओं के पास सावधि जमा + विकास वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्गत जमा प्रमाण पत्र

L_2 = L_1 + Fixed Deposit with Development Financial Institutions + Deposit certificates issued by development financial institutions

L_3 = L_2 + गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के पास सार्वजनिक जमा

L_3 = L_2 + Public deposits with non-banking financial companies

उल्लेखनीय है कि रेड्डी कमेटी की तरलता समग्रों की धारणा को रिजर्व बैंक ने स्वीकार कर लिया। आर बी आई बुलेटिन 2000 से ही L_1, L_2 तथा L_3 सम्बन्धी आंकड़े प्रकाशित कर रही है। पर रिजर्व बैंक मुद्रा समुच्चयों के सम्बन्ध में 1977 से चली आ रही M_1, M_2 तथा M_3 की धारणा अब भी स्वीकार करता है और यही आर्थिक समीक्षा में भी प्रकाशित होता है।

3. मुद्रा की पूर्ति एवं मुद्रा गुणक दृष्टिकोण (MONEY SUPPLY AND MONEY MULTIPLIER APPROACH)

इस दृष्टिकोण के अनुसार यदि प्रारक्षित मुद्रा (M_0) में मुद्रा गुणक (m) का गुणा कर दें तो हमें मुद्रा की पूर्ति (M_S) प्राप्त हो जायेगी अर्थात् $M_S = m*M_0$। स्पष्ट है यदि मुद्रा गुणक का मूल्य स्थिर हो तो M_0 में होने वाला परिवर्तन M, में परिवर्तन लायेगा और यदि m का मूल्य अनेक कारकों से प्रभावित हो तो मुद्रा की पूर्ति में होने वाला परिवर्तन दो बातों पर निर्भर करेगा– M_0 में होने वाले परिवर्तन तथा मुद्रागुणक को प्रभावित करने वाले कारक प्रारक्षित मुद्रा उन वित्तीय सम्पत्तियों को प्रदर्शित करता है जिन्हें रिजर्व बैंक अपने क्रियाशीलन के दौरान प्राप्त करता है तथा जो व्यापारिक बैंको द्वारा साख मुद्रा के सृजन के आधार के रूप में या रिजर्व के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। इसीलिए इस मुद्रा को आधार मुद्रा भी कहते हैं। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति प्रारक्षित मुद्रा (RM)की कई गुना होगी। प्रारक्षित मुद्रा की वृद्धि के कारण मुद्रा की पूर्ति में कितनी गुनी वृद्धि होगी इसे हम मुद्रा गुणक कहते हैं। इस प्रकार मुद्रा गुणक प्रारक्षित मुद्रा (RM)में वृद्धि तथा मुद्रा की पूर्ति (M_S) में वृद्धि के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।

$$\text{मुद्रा गुणक} = \frac{M_S}{RM} = \frac{M_3}{M_0}$$

मुद्रा गुणक का मूल्य जो मार्च 2007 में 4.67 हो गया था 1 जनवरी 2008 को यह अनुपात 4.66 रहा।

13.9 तरलता समायोजन योजना (LIQUIDITY ADJUSTMENT SCHEME)

नरसिंहम् समिति के संस्तुति को ध्यान में रखते हुए कि रिजर्व बैंक ने अन्तरिम तरलता समायोजन सुविधा जिसमें रेपो तथा प्रतिकूल रेपो दरों की आवधिक पुनर्निधारण सम्मिलित हैं, के द्वारा बाजार को समर्थन प्रदान करने के लिए 21 अप्रैल 1999 को सामान्य पुनर्वित्त सविधा के स्थान पर अन्तरिम समायोजन सुविधा लागू की जिसे जून 2000 से पूर्णतया लागू कर दिया गया हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत रिजर्व बैंक ब्याज की भिन्न–भिन्न दरों पर बाजार में तरलता की आपूर्ति करता है तथा जब आवश्यक होता है तो निर्धारित दरों पर इसे समायोजित करता है जिससे मुद्रा बाजार की ब्याज दरों में स्थिरता कायम रह सके। व्यवहारिक तौर पर एल0 ए0 एफ0 का संचालन रेपो सम्पार्शिवक उधारी ओ0 एम0 ओ0 तथा निर्यात ऋण पुनर्वित्त के सम्मिश्रण के माध्यम से होता है। अल्पकालीन तरलता प्रबन्धन के लिए इसक बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

29 मार्च 2004 से एक नई संशोधित एल0 ए0 एफ0 स्कीम लागू की गयी, जिसकी प्रमुख बातें इस प्रकार थीं

- 7 दिनी रेपो प्रतिदिन किया जायेगा।
- एक दिन पहले पूर्वनिर्धारित (स्थिर) रेपो प्रतिदिन होगा।
- एक दिन पहले निश्चित स्थिर दर पर उल्टा रेपो निलामी।

इस प्रकार नई स्कीम में आर0 बी0 आई0 द्वारा रेपो दर समय–समय पर निर्धारित की जायेगी। उल्टी रेपो की दर सामान्य रेपो दर से 1.5 प्रतिशत अधिक होगी। नई स्कीम के तहत L.A.F. की अवधि को 7 दिन से घटाकर एक दिन कर दिया गया है।

नकदी प्रबन्धन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए 28 नवम्बर, 2005 को रिजर्व बैंक ने दूसरी LAF सुविधा शुरू की पर उन दिनों प्रतिकूल रेपो की 3000 करोड़ रूपये की ऊपरी सीमा हटाने के बाद अगस्त 6, 2007 से दूसरे LAF को समाप्त कर दिया गया है।

13.10 स्व–मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS FOR SELF ASSESSMENT)

एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए

(1) ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अंग्रजी भारत में पूर्णकाय रजत मुद्रामान को कब स्थापित किया?
(2) फाउलर समिति का गठन कब किया गया?
(3) हिल्टन यंग आयोग की स्थापना कब की गयी?
(4) भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना का सुझाव किसने दिया?
(5) रिजर्व बैंक की स्थापना कब हुई?
(6) वर्तमान में भारत में नोट निर्गमन की कौन सी प्रणाली लागू है?
(7) न्यूनतम कोष प्रणाली के अन्तर्गत निधि की मात्रा कितनी निर्धारित की गयी है?
(8) भारत सरकार ने रूपये का पौंड–स्टर्लिंग से सम्बन्ध विच्छेद कब किया?
(9) भारतीय रूपये का पहली बार अवमूल्यन कब किया गया?
(10) 1966 के अवमूल्यन में भारतीय रूपये के मूल्य में कितनी कमी की गयी थी?
(11) मुद्रा पूर्ति के सम्बन्ध में तीसरे कार्यकारी समूह को किस समिति के नाम से जाना जाता है?

(12) वाई0 वी0 रेड्डी समिति ने कितने प्रकार के मुद्रा मापों की चर्चा की?
(13) प्रारक्षित मुद्रा की वृद्धि के कारण मुद्रा की पूर्ति में जितनी गुनी वृद्धि होती है उसे क्या कहते हैं?
(14) जनवरी, 2008 में मुद्रा गुणक का मान क्या था?
(15) तरलता समायोजन योजना कब लागू किया गया?
(16) मुद्रा पूर्ति की विस्तृत माप किसे कहा जाता है?
(17) 1991 मे रूपये का अवमूल्यन कितने चरणों में किया गया?
(18) भारत में 100 रूपये का नोट पहली बार कब निर्गमित किया गया?

13.11 सारांश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारतीय मौद्रिक प्रणाली में रजतमान एवं स्वर्णमान का पतन हो चुका है तथा वर्तमान में कागजी मुद्रा प्रचलन में है। भारत में नोट निर्गमन का पूर्ण एकाधिकार रिजर्व बैंक के पास है। रिजर्व बैंक वर्तमान में न्यूनतम कोष प्रणाली के आधार पर नोटों का निर्गमन करता है जिसके पीछे 200 करोड़ रूपये का कोष रखना अनिवार्य है। भारत में विभिन्न मुद्रामानों को लागू करने के सम्बन्ध में बनी विभिन्न समितियों का भी विश्लेषण किया जा सकता है। भारत में मुद्रा पूर्ति की चार अवधारणाएं हैं– M_1, M_2, M_3 तथा M_4 । M_3 को विस्तृत मुद्रा कहा जाता है। मुद्रा पूर्ति के सम्बन्ध में मुद्रा गुणक की अवधारणा महत्वपूर्ण है। वर्तमान में भारत में मुद्रा गुणक का मान 4.66 है। इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन से भारतीय मौद्रिक प्रणाली के अन्तर्गत रजतमान से लेकर कागजी मुद्रा के प्रचलन एवं मुद्रा पूर्ति की विभिन्न अवधारणाओं को समझ सकेंगे।

13.12 शब्दावली (GLOSSARY)

- **रजतमान (SILVER STANDARD):** इस स्थिति में मौद्रिक इकाई का मूल्य चाँदी में निश्चित किया जाता है और उसे कायम रखा जाता है। इस मान के अन्तर्गत चाँदी के सिक्के प्रचलन में होते हैं।
- **स्वर्णमान (GOLD STANDARD):** इस स्थिति में देश की मुद्रा इकाई प्रामाणिक सिक्कों के रूप में स्वर्ण की बनी होती है अथवा निर्धारित शुद्धता के स्वर्ण में परिवर्तनशील होती है।
- **साख मुद्रा (CREDIT MONEY):** व्यापारिक बैंकों द्वारा सृजित मुद्रा अर्थात जनता की जमाओं पर काटा जाने वाला चेक।
- **अवमूल्यन (DEVALUATION):** देश की मुद्रा का विदेशी मुद्रा के रूप में मूल्य में कमी
- **विमुद्रीकरण (DEMONETIZATION):** इसके अन्तर्गत सरकार पुरानी मुद्रा को समाप्त कर नई मुद्रा चालू कर देती है।
- **मौद्रिक समुच्चय (MONETARY SET):** विभिन्न प्रकार की मुद्रा मापों जैसे– M_1, M_2, M_3 तथा M_4 का समूह

13.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

(1) 1835

(2) 1898
(3) 1925
(4) हिल्टन यंग आयोग ने
(5) 1935
(6) न्यूनतम कोष प्रणाली
(7) 200 करोड़ रूपये
(8) 1975
(9) 1949
(10) 36.5 प्रतिशत
(11) वाई0 वी0 रेड्डी समिति
(12) चार– M_1, M_2, M_3 तथा M_4
(13) मुद्रा गुणक
(14) 4.66
(15) 1999
(16) M_3
(17) दो चरणों में
(18) 19111

13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY AND USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- D.K. Malhotra: History and Problems of Indian Currency
- S.B. Gupta: Monetary Economics
- M.C. Vaishya: Monetary Economics
- M.L. Seth: Money and Banking
- K.N. Raj: Monetary Policy of the Reserve Bank of India
- Reserve Bank of India: RBI Bulletin
- Reserve Bank of India: Reports on Currency and Finance
- Govt. of India: Economic Survey

13.15 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारत में पत्र मुद्रा जारी करने की वर्तमान प्रणाली की व्याख्या कीजिए। देश में किस संस्था द्वारा पत्र मुद्रा जारी की जाती है?
2. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय मुद्रा चलन के इतिहास की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।
3. भारतीय मुद्रा प्रणाली में मुद्रा पूर्ति की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

इकाई 14 भारतीय मौद्रिक प्रणाली की संरचना
(STRUCTURE OF INDIAN MONETARY SECTOR)

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्र
14.4 प्रमुख बैंकिंग सेवा प्रणाली
14.5 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया
14.6 वाणिज्यिक या व्यापारिक बैंक
14.7 गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं
14.8 अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं
14.9 कोर बैंकिंग
14.10 स्व–मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

आर्थिक मौद्रिक प्रणाली की संरचना का अध्ययन मुद्रा बाजार से सम्बन्धित है। मुद्रा बाजार भारतीय वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह सामान्यतया एक वर्ष से कम अवधि के फण्ड तथा ऐसी वित्तीय सम्पत्तियों जो मुद्रा की नजदीकी स्थानापन्न है, के क्रय तथा विक्रय के लिए बाजार है। मुद्रा बाजार वह माध्यम है जिसके द्वारा रिजर्व बैंक अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा नियन्त्रित करता है। आमतौर पर भारतीय मुद्रा बाजार को संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र में वर्गीकृत किया जाता है।

संगठित मुद्रा बाजार में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को शीर्ष स्थिति प्राप्त है। वह मुद्रा बाजार में तरलता को नियंत्रित कर सकता है तथा ऋण की लागत तथा इसकी उपलब्धता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए मुद्रा बाजार में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संगठित मुद्रा बाजार वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों द्वारा अधिक प्रभावित होता हैं। रिजर्व बैंक, वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंक संगठित मुद्रा बाजार के प्रमुख अंग है पर जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, सिक्योरिटीज टेडिंग कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया तथा डिस्काउण्ट एण्ड फाइनेंस हाउस ऑफ इण्डिया भी संगठित मुद्रा बाजार में व्यवहार करते हैं पर प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते हैं बल्कि बैंकों के माध्यम से भाग लेते हैं।

संगठित क्षेत्र के तीव्र विस्तार के बावजूद भी भारतीय मुद्रा बाजार में एक असंगठित क्षेत्र है। देशी बैंकर्स तथा ग्रामीण साहूकार इसके प्रमुख अंग है। असंगठित क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित प्रपत्र हुण्डी है जो एक तरह से देशी विनिमय विपत्र है। बैंकिंग क्षेत्र के तीव्र विस्तार के बावजूद भी अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण साहूकारों पर आश्रितता बहुत अधिक पाई जाती है।

14.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में मुद्रा बाजार के विभिन्न घटकों को समझ सकेंगे।
- ✓ भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में रिजर्व बैंक की स्थापना तथा उसके कार्यों को जान सकेंगे।
- ✓ भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में व्यापारिक बैंक तथा गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की स्थिति को समझ सकेंगे।

14.3 मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्र (MAJOR FORMS OF MONEY MARKET)

मुद्रा बाजार में कार्य करने वाली विभिन्न संस्थाओं पर विचार करने से पूर्व उन महत्वपूर्ण प्रपत्रों की चर्चा आवश्यक है जो बहुतायत से मुद्रा बाजार में प्रयोग में लाए जाते हैं, ये निम्न हैं

कालमनी मार्केट (Call money market): – कालमनी मार्केट अत्यन्त ही अल्प अवधि वाले फण्ड का बाजार होता है। यहां उधार लेने तथा देने की क्रिया अत्यन्त अल्प अवधि के लिए होती है। इसकी अवधि एक दिन से 15 दिन की होती है। इस बाजार में उधार लेने वाले अथवा देने वाले की मांग पर ऋणों का भुगतान देय होता है। चूंकि काल ऋण अत्यन्त ही अल्प अवधि के होते हैं इसलिए इनकी तरलता नगदी के ही समान होती है।

कालमनी मार्केट में सभी भाग नहीं ले सकते हैं, उसमें भी, भाग लेने वालों में भी कुछ को ही उधार लेने तथा देने दोनों की सुविधा होती है। कुछ को केवल उधार देने की ही सुविधा रहती है। सामान्यतया काल रेट को रातभर की दर के रूप में जाना जाता है जिसपर एक बैंक दूसरे बैंक को उधार देता है।

कालमनी मार्केट अत्यन्त ही प्रतियोगी तथा संवेदनशील बाजार होता है, कालमनी रेट का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है। इसमें मांग तथा पूर्ति के दबाव का तत्काल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस बाजार में हमें नियमित मौसमी परिवर्तन होते दिखते हैं। कम व्यस्त मौसम (मई से सितम्बर) की तुलना में व्यस्त मौसम (अक्टूबर से अप्रैल) में इसमें तंगी अधिक होती है, पूर्ति के अपेक्षा मांग अधिक होती है और यह तंगी अपैल में सबसे अधिक होती है जो कि व्यस्त मौसम का व्यस्त महीना होता है। ट्रेजरी बिल्स– भारत में ट्रेजरी बिल्स 1917 में पहली बार निर्गत की गई। ट्रेजरी बिल्स अल्प अवधि की प्रतिभूतियां होती है जिसके माध्यम से सरकार उधार लेती है। ये सर्वाधिक तरल प्रतिभूतियां होती हैं। इनका निर्गमन सरकार के लिए रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। ट्रेजरी बिल्स तीन प्रकार की हो सकती हैं

(क) आन टैप बिल्स जिन्हे रिजर्व बैंक से जब चाहे तब खरीदा जा सकता है, जिसे 1 अप्रैल, 1997 से बन्द कर दिया गया।

(ख) नीलामी ट्रेजरी बिल्स सबसे अधिक सक्रिय मुद्रा बाजारीय विलेख है जिसे अप्रैल 1992 में शुरू किया गया। इन पर प्रतिफल की दर बाजार द्वारा निर्धारित होती है। इनकी पुनर्कटौती नहीं हो सकती। इस समय रिजर्व बैंक 91 तथा 364 दिन की ट्रेजरी बिल्स निर्गमित करता है, इनकी न्यूनतम राशि 25,000 रूपया तथा इसी भागफल में होती हैं।

(ग) ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स रिजर्व बैंक के नाम में ही निर्गमित होती हैं जो सरकार की अत्यन्त ही अस्थाई फण्ड सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए निर्गमित की जाती हैं। इनका प्रत्यक्ष तथा तत्काल मौद्रीकरण हो जाता है क्योंकि इनके निर्गमित होने के साथ ही रिजर्व बैंक की सम्पत्ति बढ़ जाती है और अनुषंगी रूप में मुद्रा दायित्व में वृद्धि होती है। ये जनता या बैंकों के लिए नहीं होती है। इन ट्रेजरी बिलों को छोड़कर बाकी ट्रेजरी बिल्स नीलामी से बेची जाती हैं। ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स का निर्गमन 1997–98 की बजट से बन्द कर दिया गया है जिसके स्थान पर अर्थोपाय अग्रिम की नई योजना लागू की गई है। 91 दिनी सामान्य ट्रेजरी बिल्स के अतिरिक्त सरकार 14 दिनी तथा 364 दिनी ट्रेजरी बिल्स का निर्गमन करती है।

व्यापारिक बिल बाजार (COMMERCIAL BILLS MARKET): ट्रेजरी बिल मार्केट की ही तरह व्यापारिक बिलों जो अधिकांशतया तीन महीने की अवधि की होती है, के लिए भी एक अलग बिल मार्केट होता है जिसे हम व्यापारिक बिल बाजार कहतें है। व्यापारिक बिलों को हम विनिमय विपत्रश कहते हैं। विनिमया विपत्र एक पराक्राम्य विपत्र है जिसमें बिल को स्वीकार करने वाला जिसे आहारी कहते हैं, बिल को लिखने वाले के निर्देश पर एक निश्चित राशि एक निश्चित अवधि के बाद बिना शर्त भुगतान करना स्वीकार करता है। विनिमय विपत्र अनेक प्रकार के हो सकते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं

1. **हुण्डी (HUNDI):** हुण्डी एक प्रकार की देशी बिल्स है। हण्डी दो प्रकार की हो सकती है– दर्शनी हुण्डी तथा मुद्दती हुण्डी। दर्शनी हुण्डी 'मांग विनिमय विपत्र' के समान होती है, जिनका भुगतान उसी समय करना पड़ता है जबकि ये

भुगतान के लिए उपस्थित की जाती हैं मुद्दती हुण्डी समय विपत्र की तरह होती है जिसका भुगतान एक समयावधि के बाद होता है।

2. **अनुग्रह विपत्र (GRACE BILL):** जब बिना किसी प्रतिफल के एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के द्वारा पहले पर एक ही राशि का बिल लिखा जाय तथा दोनों ही बिल को कटौती कराके बैंक से रूपया प्राप्त कर लें इस प्रकार दोनों ही बिना किसी वास्तविक व्यवहार के लाभान्वित हो तो इस प्रकार के बिल को अनुग्रह विपत्र कहते हैं।
3. **वाणिज्यिक प्रपत्र (COMMERCIAL PAPER):** मूलतः यू0 एस0 ए0 तथा यूरोप के वित्तीय बाजार का प्रपत्र था। बाघुल समिति की संस्तुति पर मार्च 27, 1989 को भारत में जमा प्रमाणपत्र के साथ वाणिज्यिक प्रपत्र के निर्गमन की अनुमति प्रदान की गई। वाणिज्यिक प्रपत्र एक प्रतिज्ञापत्र युक्त अल्प अवधि का प्रपत्र है जिसकी सात दिन से 90 दिन की परिपक्वता अवधि होती है। वाणिज्यिक प्रपत्र का निर्गमन बट्टा आधार पर होता है।
4. **जमा प्रमाण पत्र (CERTIFICATE OF DEPOSIT):** जमा प्रमाण पत्र एक विपणन योग्य प्रपत्र है जो इस एक निश्चित समयावधि के लिए सावधि जमा के स्वामित्व को प्रदर्शित करता है। यह प्रदर्शित करता है कि प्रमाण पत्र के उल्लिखित धनराशि की सावधि जमा बैंक के पास है। जमा प्रमाण पत्र सावधि जमा प्रमाण पत्र से भिन्न है तथा उत्तम है क्योंकि यह विपणन योग्य होता है जबकि सावधि जमा प्रमाण पत्र विपणन योग्य नहीं होता है। जमा प्रमाण पत्र को अंकित मूल्य से कम बट्टे पर निर्गमित किया जाता है। बट्टे की दर का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है। सामान्यतया यह दर सावधि जमा की दर से ऊँची होती है।
5. **अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र (INTERBANK PARTICIPATION CERTIFICATE):** मुद्रा बाजार के तरलता के समस्या को समाप्त करने के लिए एक अतिरिक्त प्रपत्र अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र की शुरूआत की गयी यह दो प्रकार की हो सकती है। जोखिम भागिता के साथ तथा जोखिम भागिता रहित। जोखिम भागितायुक्त अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र 91 से 180 दिन के लिए उन अग्रिम के लिए निर्गत की जाती है जिनके अग्रिमों की सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो। जोखिम भागिताहीन अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र अधिक से अधिक 90 दिन के लिए निर्गत होती हैं।

14.4 प्रमुख बैंकिंग सेवा प्रणाली (MAJOR BANKING SERVICE SYSTEM)

भारत में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं द्वारा विभिन्न प्रकार की बैंकिंग सेवा प्रणाली प्रारम्भ की गयी है जिनमें से निम्न प्रमुख हैं

मर्चेन्ट बैंकिंग (MERCHANT BANKING): मर्चेन्ट बैंकर्स उद्यमियों तथा निवेशकों के बीच काम करने वाले वित्तीय मध्यस्थ है। ये नये निर्गमनों का अभिगोपन तथा प्रबन्धन करते हैं, ये संसाधनों के इकट्ठा करने तथा अन्य वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में निगमों को राय देते हैं, पर ये विदेशी मर्चेट बैंकर्स की तरह बैंकिंग क्रियाएं जैसे जमा प्राप्त करना, उधार देना तथा विदेशी विनिमय सम्बन्धी सेवाएं देना, नहीं करते। 1993 के शुरू में मर्चेन्ट बैंकिंग को सेबी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में ला दिया गया है जिससे उनकी कार्यप्रणाली अधिक

पारदर्शी हो। कोई भी व्यक्ति मर्चेन्ट बैंक तबतक नहीं हो सकता जबतक कि उसने सेबी से पंजीयन प्रमाण पत्र नहीं प्राप्त कर लिया हो।

म्युचुअल बैंकिग (MUTUAL BANKING): म्युचुअल फंड वितरण तथा रिटेल बैंकिंग सुविधा व्यापारिक बैंकों की सामान्य क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया है। आजकल म्युचुअल बैंकिंग की नई धारणा सामने आ रही है जिसमें बैंक ग्राहको को नये उत्पाद तथा नयी सेवाओं को प्रवर्तित कर रही है जिसमें ग्राहक बैंकों के माध्यम से म्युचुअल फंड की सेवाओं का लाभ प्राप्त कर रहे हैं इसके अन्तर्गत म्युचुअल फंड ग्राहकों को एक विशिष्ट क्रेडिट कार्ड दे देते हैं जिसके द्वारा ग्राहक किसी स्कीम के तहत म्युचुअल फंड की निर्धारित सीमा के भीतर बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है। ग्राहकों को बैंकों तथा म्युचुअल फंड की सुविधा को अधिकतम करना ही म्युचुअल बैंकिंग की आधारभूत मान्यता है।

रिटेल बैंकिंग या परसनल बैंकिंग (RETAIL BANKING OR PERSONAL BANKING): कुछ समय पहले बैंक केवल उत्पादक क्रियाओं की पूर्ति के लिए ही ऋण लेते थे, उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इनके द्वारा ऋण नहीं दिया जाता था पर उनके लाभ के सीमा में कमी, बढ़ती लागत औद्योगिक मन्दी में वृद्धि आदि के कारण बैंक अपने संसाधनों अब फुटकर उधारी में लगा रहे हैं। इस प्रकार की बैंकिंग क्रियाओं को रिटेल बैंकिंग या परसनल बैंकिंग कहते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी, इन्टरनेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, ए टी एम, डी मैट एकाउण्ट्स के कारण पिछले कुछ वर्षों में भारत में रिटेल बैंकिंग के क्षेत्र में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है।

एनीह्वेयर बैंकिंग (ANYWHERE BANKING): एनीह्वेयर बैंकिंग से आशय किसी भी स्थान से बैंकिंग सुविधा प्राप्त करने से है। यह सेवा ग्राहक की सुविधा के लिए टेक्नालॉजी पर आधारित सेवा है इसके अन्तर्गत ग्राहक, जिसका खाता बैंक की किसी शाखा में है, देश के भीतर बैंक की निर्दिष्ट किसी शाखा के साथ बैंकिंग व्यवहार कर सकता है। वह अपने खाता से रकम निकाल सकता है, उसमें जमा कर सकता है तथा अन्य बैंकिंग व्यवहार कर सकता है। इस प्रकार अब दूरी अर्थहीन है। तकनीकी विकास ने बैंकिंग दायरे को बहुत अधिक फैला दिया है।

ई–बैंकिंग या इन्टरनेट बैंकिंग (E-BANKING OR INTERNET BANKING): इन्टरनेट तथा वायरलेस तकनीक के विकास के फलस्वरूप बैंकिंग तथा वित्तीय सेवाओं के ढाँचे तथा स्वभाव में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। इन्टरनेट बैंकिंग के अन्तर्गत बैंकिंग क्रियाएं– किसी एक खाते से दूसरे खाते में जमा, किसी व्यक्ति को भुगतान करना आदि इन्टरनेट के ही माध्यम से हो जाती हैं। ई–बैंकिंग अभी भारत में बिलकुल शैशवास्था में है किन्तु धीरे–धीरे इसका विकास और विस्तार पूरे देश में हो रहा है।

14.5 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया (RESERVE BANK OF INDIA)

केन्द्रीय बैंक की स्थापना का प्रथम प्रयास 1914 में चैम्बरलीन आयोग को जाता है, जिसमें एक सदस्य लार्ड कीन्स थे, चेम्बरलीन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि तीन प्रेसीडेंसी बैंकों को मिलाकर एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाय जिसका नाम इम्पीरियर बैंक रखा जाय। इसकी संस्तुति पर 1921 में इम्पीरियर बैंक की स्थापना की गयी। पर यह मुख्यतया एक व्यापारिक बैंक था जो केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्य सरकारी बैंकर तथा बैंकों के बैंक का कार्य करता था। 1926 में **हिल्टन यंग आयोग** ने इस बात पर बल दिया कि केन्द्रीय बैंक की अलग से स्थापना की जाय जो केन्द्रीय बैंक के और कार्यों– नोट निर्गमन तथा विदेशी विनिमय कोष प्रबन्धन को भी सम्पादित करे। हिल्टन यंग आयोग पहला आयोग था जिसमें केन्द्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया नाम की

संस्तुति की। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बिल लेजिस्लेटिव असेम्बली में 1927 में रखा गया पर राजनैतिक मतभेदों के कारण पारित नहीं हो सका।

इण्डियन सेन्ट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी 1931 ने फिर इसकी संस्तुति की तथा RBI बिल 1934 में पारित हुआ। रिजर्व बैंक ने रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 के तहत 1 अप्रैल 1935 से कार्य करना शुरू कर दिया। इसकी अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रूपये रखी गयी। यह एक निजी क्षेत्रीय बैंक था। 1947 में देश के विभाजन के बाद जून 1948 तक इसने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में भी कार्य किया। 1 जुलाई 1948 से इसने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में कार्य करना बंद कर दिया और 1 जनवरी 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है 1 अप्रैल 1935 को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गयी उस समय यह निश्चित किया गया कि इसकी अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रूपये होगी। शुरू में इसकी लगभग सम्पूर्ण पूँजी निजी लोगों के हाथ में थी। 222000 रूपये के अंश ही सरकार के पास थे। सर आस्बोन स्मिथ RBI के प्रथम गवर्नर थे वर्तमान में डी0 सुब्बाराव RBI के गवर्नर हैं।

रिजर्व बैंक के प्रमुख कार्य– रिजर्व बैंक के **प्रमुख कार्य** निम्न है

1. **पत्र मुद्रा का निर्गमन (ISSUE OF CURRENCY):** रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 की धारा 22 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को पत्र मुद्रा के निर्गमन के सम्बन्ध में एकाधिकार प्राप्त है। एक रूपया को छोड़कर बाकी सभी मूल्यों की पत्र मुद्राओं का निर्गमन रिजर्व बैंक करता है। 1956 तक रिजर्व बैंक पत्र मुद्रा का निर्गमन आनुपातिक कोष प्रणाली के आधार पर करता था जिसके अनुसार पत्र मुद्रा के कुल मूल्य का कम से कम 40 प्रतिशत भाग सोने के रूप में या विदेशी प्रतिभूतियों के रूप में रखना रिजर्व बैंक के लिए अनिवार्य था। शेष 60 प्रतिशत रूपयें, भारत सरकार की प्रतिभूतियों तथा स्वीकृत विनिमय विपत्रों में रखना पड़ता था। 1956 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट में संशोधन के द्वारा आनुपातिक कोष प्रणाली के स्थान पर पत्र मुद्रा निर्गमन की न्यूनतम कोष प्रणाली को अपनाया गया। इसके अन्तर्गत नोटों के मूल्य के पीछे कम से कम 400 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियां 115 करोड़ रूपये का सोना रखना अनिवार्य है। 31 अक्टूबर 1957 के बाद रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट के संशोधन के अनुसार इसे घटाकर 200 करोड़ रूपया कर दिया गया। इसमें भी कम से कम 115 करोड़ रूपया का स्वर्ण होना अनिवार्य था।
2. **सरकार के बैंक के रूप में कार्य (ACT AS A GOVERNMENT BANK):** अन्य केन्द्रीय बैंकों की ही तरह रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया सरकार के बैंकर, एजेण्ट तथा परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है। रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार को अल्पकालीन ऋण प्रदान करता है जिससे सरकार अपने सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक प्राप्ति के बीच अस्थाई घाटे को पूरा कर सके।
3. **बैंकों के बैंक के रूप में कार्य (BANKER OF BANKS):** रिजर्व बैंक बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है। रिजर्व बैंक अनुसूचित बैंकों के निरीक्षण, नियन्त्रण से लेकर आवश्यकता पड़ने पर उनको आर्थिक सहायता देने तक कार्य करता है। अतः रिजर्व बैंक अन्तिम ऋणदाता के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. **साख नियन्त्रण कार्य (CREDIT CONTROL FUNCTION):** रिजर्व बैंक को व्यापरिक बैंकों द्वारा सृजित साख मुद्रा की मात्रा तथा प्रयोग को नियन्त्रित करने का

पूर्ण अधिकार है। देश में व्याप्त भयावह मुद्रा स्फीति की स्थिति में रिजर्व बैंक के कार्य का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

रिजर्व बैंक के पास साख नियन्त्रण के सम्बन्ध उपलब्ध अस्त्रों को निम्न चार्ट द्वारा दर्शाया जा सकता है

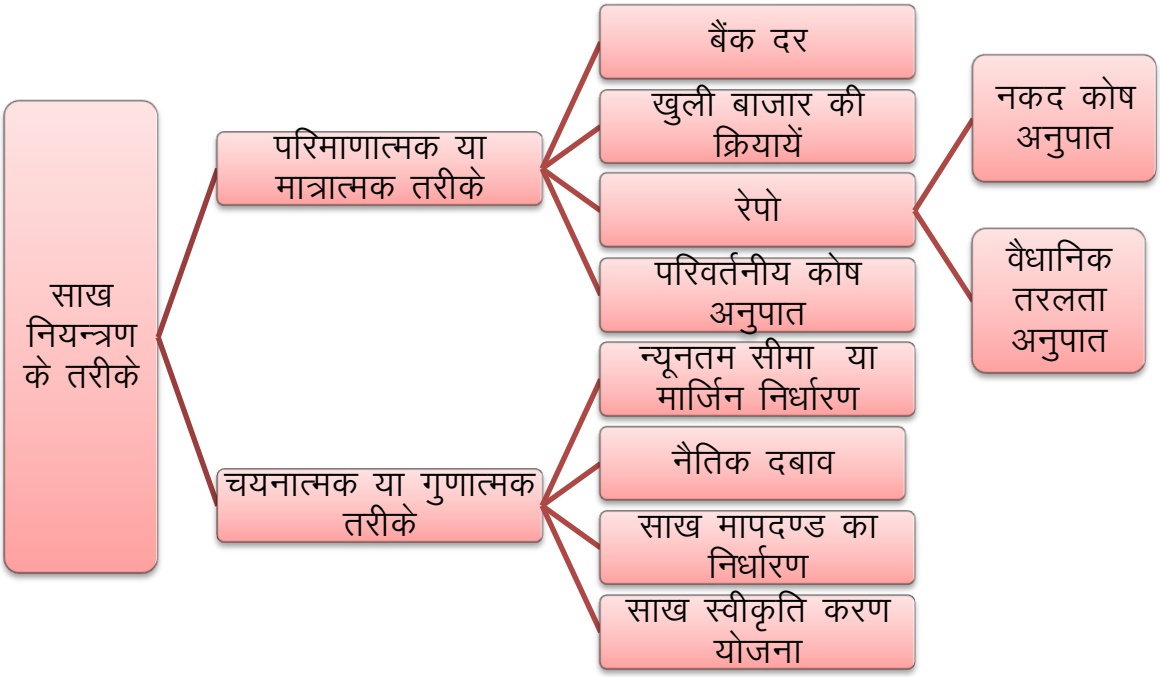

14.6 वाणिज्यिक या व्यापारिक बैंक (COMMERCIAL BANK)

व्यापारिक बैंक एक वित्तीय संस्था है जो मुद्रा तथा साख में व्यापार करती है, जो न केवल मुद्रा को लोगों से जमा के रूप में स्वीकार करती है तथा आवश्यकता पड़ने पर उद्यमियों तथा साहसियों को उधार देती है बल्कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य साख सृजन के रूप में करती है। व्यापारिक बैंक सामान्यतया चार प्रकार के जमा स्वीकार करते हैं

1. सावधि जमा खाता जिसमें एक निश्चित लम्बे समय के लिए जमा स्वीकार किया जाता है, जितनी ही इसकी अवधि लम्बी होगी, व्याजदर उतनी ही ऊँची होगी और तरलता उतनी ही कम होगी।
2. चालू खाता जिसमें जमाकर्ता अपनी जमा राशि में जब चाहे तब बैंक से धन निकाल सकता है। इस खाते पर निकासी पर कोई रोक नहीं होती। स्पष्ट है चालू खाते में रखे धन पर बैंक व्याज नहीं देता।
3. बचत बैंक जमा जिसमें व्याज की दर कम होती है, इसमें निकासी के लिए चेक का प्रयोग किया जा सकता है।
4. इन जमाओं के अतिरिक्त व्यापारिक बैंक आवर्ती जमा, गृह बचत जमा आदि जमा स्वीकार करते हैं।

बैंकों द्वारा प्राप्त सभी प्रकार के जमा बैंको की देयता होंगे। बैंक जो जमा स्वीकार करते हैं उसे कहीं न कहीं विनियोग करते हैं जिसमें वे जमा पर देय व्याज के अतिरिक्त लाभ अर्जित कर सकें। पर अपने धन को विनियोजित करते समय बैंक तरलता, लाभ देयता तथा सुरक्षा के सिद्धान्तों से निर्देशित होता है।वह केवल लाभदेयता को ही ध्यान में नहीं रखता है, बल्कि वह यह भी देखता है कि जहाँ निवेश कर रहा है वहां उसका धन सुरक्षित

है तथा साथ ही वह जब चाहे अति अल्प हानि पर उसे पुनः वापस प्राप्त कर सके। व्यापारिक बैंक सामान्यतया अल्पकालीन ऋण देते है। प्रायः ये निम्नांकित प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं।

1. **कालमुद्रा (CALL MONEY):** ये ऋण 1–2 दिन से 15 दिन के लिए दिये जाते हैं। तरलता की दृष्टि से यह सबसे अच्छा निवेश है।
2. **नकद साख (CASH CREDIT):** इसके अन्तर्गत निश्चित प्रतिभूति के बदले ऋण दिया जाता है। बैंक देय ऋण से ऋणी का खाता खोल देता है तथा ऋणी आवश्यकतानुसार चेक से निकासी करता है। व्याज सम्पूर्ण स्वीकृत राशि पर नहीं लगता है, बल्कि उस मात्रा पर लगता है जितनी निकाली जाती है।
3. **बैंक अधिविकर्ष (BANK OVERDRAFT):** इसके अन्तर्गत बैंक अपने विश्वसनीय ग्राहकों को उनके खाते में जमा की राशि से अधिक राशि की निकासी का अधिकार दे देता हैं। यह एक प्रकार का मांग जमा है जिसके द्वारा साख सृजन होगा।

बैंक द्वारा साख मुद्रा का सृजन (CREATION OF CREDIT CURRENCY BY THE BANK)

बैंक द्वारा साख मुद्रा का सृजन व्यपारिक बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। व्यापारिक बैंक जमा स्वीकार करने तथा ऋण देने की प्रक्रिया के दौरान साख मुद्रा का सृजन करतें हैं। मान लिजिए कोई व्यक्ति 10,000 रूपये से एक जमा खाता खोलता है। इस जमा को प्राथमिक जमा कहते हैं। बैंक अपने अनुभव के आधार पर मान लिजिए इस निष्कर्ष पर आता है कि एक बार में इसमें से निकासी 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। इस मांग को पूरा करने लिए जिससे इस व्यक्ति का कोई चेक पैसे के अभाव में वापस नहीं हो, वह पास $10000 * \frac{1}{10} = 1000$ नगद रूप में रख लेगा। अब वह इस स्थिति में है कि 10,000–1000 = 9000 रूपये किसी उद्यमी को उधार दे सके। यदि कोई बैंक के पास 9000 रूपये के ऋण के लिए जाए तो बैंक उसे इतनी राशि उधार दे सकता है पर वह उधार देने के सम्बन्ध में उस व्यक्ति के नाम भी एक खाता खोल देता है और उसे एक चेक बुक देता है, जिससे वह जब चाहे रूपया 9000 की सीमा के भीतर निकासी कर सकता है। बैंक फिर अपने अनुभव के आधार पर कि अधिक से अधिक से अधिक 10 प्रतिशत ही एक बार निकासी होगी, इस 9000 का 10 प्रतिशत अर्थात् 900 रूपये अपने पास नगद रखेगा और शेष 8100 फिर किसी को इसी प्रकार खाता खोलकर ऋण दे सकेगा तथा यह क्रिया तबतक चलती जायेगी जबतक यह शून्य नहीं हो जायेगा। यदि इस क्रिया को अन्त तक ले जाया जाय तो अतिरिक्त मांग जमा 90,000 रूपये के बराबर होगी। स्पष्ट है बैंक अपने प्राथमिक जमा के आधार पर बहुत अधिक अतिरिक्त मांग जमा का सृजन कर पाता है यह अतिरिक्त मांग जमा का सृजन ही साख सृजन हुआ। कितना साख सृजन बैंकिंग क्षेत्र द्वारा होगा यह बातों पर निर्भर करेगा– प्राथमिक जमा तथा जमा का वह भाग जो वाणिज्यिक बैंक को अपने को सुरक्षित रखने के लिए अपने पास नगद रूप में रखना पड़ता है या वांछित नगद जमा अनुपात तथा नगद शेष अनुपात जिसे उसे केन्द्रीय बैंक के पास वैधानिक रूप से रखना पड़ता है। जितनी ही प्राथमिक जमा की राशि अधिक होगी या नगद कोष अनुपात कम होगा उतना ही अधिक साख सृजन होगा। साख मुद्रा में जितनी गुनी वृद्धि होगी उसे हम साख गुणक कहते हैं जो परिवर्तनीय जमा अनुपात व्युत्क्रम होगा। उक्त उदाहरण के साख गुणक 1/10 प्रतिशत या $1/(1/100) = 10$।

14.7 गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं (NON-BANKING FINANCIAL INSTITUTIONS)

RBI एक्ट 1997 के अनुसार गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था एक संस्था या कम्पनी है जिसका प्रमुख व्यवसाय किसी भी योजना के तहत जमा स्वीकार करना तथा उसे किसी रूप तथा तरीके से उधार देना हैं। इस आधार पर वे सभी निवेश कम्पनियां जो कम्पनी एक्ट में पंजीकृत हों वे सभी NBFCs में सम्मिलित हो जाएंगी। रिजर्व बैंक निम्नांकित क्रियाओं में लगी कम्पनियों को NBFCS की श्रेणी में रखता है–

1. इक्विपमेंट लीजिंग कम्पनी
2. हायर पर्चेज फाइनेंस कम्पनी
3. हाउसिंग फाइनेंस कम्पनी
4. इन्वेस्टमेंट कम्पनी जो प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय का व्यापार कर रही है।
5. लोन कम्पनी
6. रेजीडुअरी नान बैंकिंग कम्पनी।
7. रिजर्व बैंक के नियन्त्रण में आते है कम्पनीज अधिनियम के तहत नहीं।

रिजर्व बैंक उन NBFCs के प्रति बहुत कड़ा रूख अपनाये है जो लोगों से जमा स्वीकार करती हैं। रिजर्व बैंक के अनुसार ऐसी NBFCS जिन्हें गैर सार्वजनिक जमा कम्पनी के रूप में पंजीकृत किया गया है, उन्हें जमा स्वीकार इकाई के रूप में पंजीकरण के लिए 2 करोड़ रूपये की न्यूनतम पूँजी रखना अनिवार्य होगा।

NBFCs के सम्बन्ध में पूँजी पर्याप्तता अनुपात मापदण्ड को 1998 में लागू किया गया जिसके अनुसार NBFCs को जोखिम भारित सम्पत्तियों तथा चिट्ठा के मदों के जोखिम समायोजित मूल्य का कम से कम 12 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत अकोटिबद्ध जमा स्वीकार करने वाली तथा उधार देने वाली कम्पनी के सम्बन्ध में रखना अनिवार्य होगा जो अन्य बैंकिंग कम्पनियों के सम्बन्ध में RBI द्वारा निर्धारित 9 प्रतिशत किसी भी बिन्दु पर टीयर ॥ की पूँजी किसी भी समग्र बिन्दु पर टीयर ॥ पूंजी के 100 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। उल्लेखनीय है कि वांछित कैपिटल टु रिस्क वेटेड असेट रेशियो (CRAR) जो प्रति इकाई जोखिम भारित सम्पत्ति पर पूँजी की मात्रा प्रदर्शित करता है, NBFCs जमा के सम्बन्ध में 12 प्रतिशत है। ऐसी NBFCs की संख्या, जिनकी CRAR 12 प्रतिशत से कम थी मार्च 2006 में 37 थी घटकर 2007 में 13 रह गयी।

14.8 अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं (ALL INDIA FINANCIAL INSTITUTIONS)

अखिल भारतीय वित्तीय संस्थायें वे संस्थायें है जो दीर्घकालीन विकासात्मक निवेश से सम्बन्धित हैं। आर्थिक समीक्षा 2003–04 के अनुसार इनके अन्तर्गत 5 अखिल भारतीय विकास, दो विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं तथा छः निवेश संस्थाओं को सम्मिलित करता है। 2002–03 तक ICICI तथा UTI को भी इसके अन्तर्गत रखते थे पर इससे बाहर हो गये हैं। इस प्राकर इनके अन्तर्गत आने वाली प्रमुख संस्थायें इस प्रकार हैं– IFCI, IIBI, IDFC, SIDBI, NABARD, LIC, IFCI बेंचर, ICI बेन्चर आदि। आर्थिक समीक्षा 2007–08 के अनुसार 2005–06 तथा 2006–07 के दौरान इन वित्तीय संस्थाओं द्वारा स्वीकृत ऋण में वृद्धि क्रमशः 41 प्रतिशत तथा 12.9 प्रतिशत रही। उल्लेखनीय है कि इनके सम्बन्ध में मार्च के अन्त 2007 में पूँजी पर्याप्तता अनुपात 9 प्रतिशत मानक स्तर बहुत ऊंचा

था। ज्ञातव्य है कि जमा के सम्बन्ध में पूँजी पर्याप्तता अनुपात का मानक स्तर 12 प्रतिशत है। भारत में विदेशी तथा वाणिज्यिक बैंकों को वर्तमान स्थिति 30 नवम्बर 2007 को भारत में विदेशी बैंकों की संख्या तथा उनकी भारत में संस्थाओं की संख्या 274 थी। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने यूनाइटेड ओवरशीज बैंक को मुम्बई में अपनी पहली शाखा खोलने की अनुमति दी है। रिजर्व बैंक ने बैंक आफ कनाडा को भी अपनी और शाखायें खोलने की अनुमति दी है। इस प्रकार केवल 1 नये बैंक को खोलने की स्वीकृति मिली है। इस प्रकार 31 मार्च 2008 को विदेशी बैंको की संख्या 29 + 1 = 30 है तथा इनकी भारत में स्थित शाखाओं की संख्या 274 है। उल्लेख्नीय है कि सर्वाधिक शाखाएं स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक की 83 है, दूसरे पर हांगकांग एण्ड शंघाई बैंकिंग कम्पनी लि0 की 47 तथा सिटी बैंक की 39 हैं। WTO की व्यवस्था के अनुसार यह आवश्यक है भारत प्रत्येक वर्ष में विदेशी बैंकों की 12 शाखाओं को खोलने की अनुमति प्रदान करे। रिजर्व बैंक ने इससे अधिक ही किया है।

14.9 कोर बैंकिंग (CORE BANKING)

कोर बैंकिंग का प्रयोग उन सेवाओं को व्यक्त करने के लिए करते हैं जो कुछ बैंकों की शाखाओं को एकदूसरे के साथ नेटवर्क से जुटने के कारण प्राप्त होती है। जब कुछ बैंको के बीच नेटवर्क हो तब ग्राहक का फण्ड किसी बैंक में हो तो वह किसी भी बैंक की शाखा में व्यवहार कर सकता है। इधर हाल के वर्षों में कोर बैंकिंग सेवाएं बहुत तेजी से बढ़ी है। इसके अन्तर्गत अनेक सेवाएं उपलब्ध करायी जाती है जैसे एनीवेयर बैंकिंग, प्रत्येक जगह पहुच तथा साधनों का तीव्रता से हस्तान्तरण। इस प्रकार इन्टरनेट बैंकिंग या ई–बैंकिंग एक ही बैंक की विभिन्न शाखाओं के बीच में नहीं हो बल्कि अलग–अलग बैंकों के बीच हो तो इसे कोर बैंकिंग कहते हैं।

14.10 स्व–मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS FOR SELF ASSESSMENT)

एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए

(1) मुद्रा बाजार को कितने क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जाता है?
(2) संगठित मुद्रा बाजार में किसे शीर्ष स्थिति प्राप्त है?
(3) असंगठित क्षेत्र के प्रमुख अंग कौन हैं?
(4) कालमनी मार्केट में उधार की अवधि कितनी होती है?
(5) भारत में टेजरी बिल्स पहली बार कब निर्गमित की गयी थी?
(6) अर्थोपाय अग्रिम योजना कब लागू की गयी?
(7) किसी भी स्थान से बैंकिंग सुविधा प्राप्त करने को क्या कहते हैं?
(8) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट कब बना?
(9) रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कब किया गया?
(10) रिजर्व बैंक के प्रथम गवर्नर कौन थे?
(11) देश में साख नियन्त्रण का कार्य कौन करता है?
(12) साख नियन्त्रण के कितने तरीके होते हैं?
(13) साख मुद्रा का सृजन कौन करता है?
(14) साख सृजन का आधार क्या है?
(15) दीर्घकालीन विकासात्मक निवेश से सम्बन्धित संस्थाओं को क्या कहते हैं?
(16) रिजर्व बैंक ने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में कब तक कार्य किया?

(17) रिजर्व बैंक के वर्तमान गवर्नर कौन हैं?
(18) प्राथमिक जमा में वृद्धि के कारण साख मुद्रा में जितनी गुनी वृद्धि होती है उसे क्या कहते हैं?

14.11 सारांश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारतीय मौद्रिक प्रणाली की संरचना मुद्रा बाजार से सम्बन्धित है। मुद्रा बाजार के दो क्षेत्र हैं– संगठित क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्र। संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को शीर्ष स्थान प्राप्त है, जो देश में मौद्रिक प्रणाली का नियन्त्रण एवं नियमन करता है। समस्त बैंकिंग संस्थाएं इसके नियन्त्रण में कार्य करती हैं। असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत प्रमुख रूप से देशी बैंकर एवं ग्रामीण साहूकार आते हैं। इसके अलावा कुछ अन्य अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं हैं जो मौद्रिक प्रणाली की संरचना के अंग हैं जैसे– IFCI, IIBI, IDFC, SIDBI, NABARD, LIC, IFCI बेंचर, ICI बेन्चर आदि। इस इकाई के अध्ययन से व्यापारिक बैंकों के कार्यों एवं उनके द्वारा साख सृजन की प्रक्रिया को भी समझा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के प्रपत्रों, बैंकिंग प्रणालियों को भी समझ सकते हैं। इस प्रकार इस इकाई का अध्ययन भारतीय मौद्रिक प्रणाली की संरचना के अन्तर्गत रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं आदि के क्रिया कलापों को समझने में अत्यन्त ही सहायक है।

14.12 शब्दावली (GLOSSARY)

- **बैंक दर (BANK RATE):** यह वह दर है जिस पर देश का केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य बैंकों की बिलों की पुनर्कटौती करता है अथवा प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों की आड़ में उधार देता है।
- **नकद कोष अनुपात (CASH RESERVE RATIO):** किसी व्यापारिक बैंक की कुल जमाओं का वह भाग जिसे रिजर्व बैंक के पास अनिवार्य रूप से जमा करना पड़ता है।
- **वैधानिक तरलता अनुपात (STATUTORY LIQUIDITY RATIO):** किसी व्यापारिक बैंक की कुल जमाओं का वह भाग जो नकद, स्वर्ण या विदेशी मुद्रा के रूप में उसे अपने पास अनिवार्य रूप से रखना पड़ता है।
- **खुले बाजार की क्रियाएं (OPEN MARKET OPERATIONS):** केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा बाजार में सरकारी तथा निजी संस्थाओं की प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय करना।
- **श्रेपो (REPO RATE):**ऐसा ब्याज दर जिस पर अल्पकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक से नकदी प्राप्त करते हैं।

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर– (1) दो
(2) रिजर्व बैंक
(3) देशी बैंकर्स एवं ग्रामीण साहूकार
(4) 1–15 दिन

(5) 1917
(6) 1997–98
(7) एनीह्वेयर बैंकिंग
(8) 1934
(9) 1 जनवरी, 1949
(10) सर आस्बोर्न स्मिथ
(11)रिजर्व बैंक
(12) दो– परिमाणात्मक एवं गुणात्मक
(13) व्यापारिक बैंक
(14) बैंकों की प्राथमिक जमा
(15) अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं
(16) 1948
(17) डी0 सुब्बाराव
(18) साख मुद्रा।

14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री (REFERENCES/BIBLIOGRAPHY AND USEFUL / HELPFUL TEXTS)

- B.C. Ghose: A Study of the Indian Money Market
- D.K. Malhotra: History and Problems of Indian Currency
- S.B. Gupta: Monetary Economics
- M.C. Vaishya: Monetary Economics
- M.L. Seth: Money and Banking
- K.N. Raj: Monetary Policy of the Reserve Bank of India
- Reserve Bank of India: RBI Bulletin
- Reserve Bank of India: Reports on Currency and Finance
- Govt. of India: Economic Survey

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1. भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्रों की संक्षिप्त विवेवना कीजिए।
2. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना किन उद्देश्यों से की गयी थी? रिजर्व बैंक के विभिन्न कार्यो पर प्रकाश डालिए।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए
   - मर्चेन्ट बैंकिंग
   - कोर बैंकिंग
   - व्यापारिक बैंकों द्वारा साख सृजन
   - गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था